जनार्दन ठाकुर

ये नये हुक्मरान!

ये नये हुक्मरान !

ये नये हुक्मरान !

जनार्दन ठाकुर

अनुवाद
आनंदस्वरूप वर्मा

राधाकृष्ण

Originally published by
VIKAS PUBLISHING HOUSE PVT LTD
5. Ansari Road, New Delhi-110002
in the English language under the title
ALL THE JANATA MEN

प्रथम हिंदी संस्करण : जून 1978

मूल्य
पेपरबैक संस्करण : 18 रुपये
सजिल्द संस्करण : 24 रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन,
2 अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-110002

मुद्रक
भारती प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

आमुख

मैंने अपनी पहली पुस्तक **सब दरबारी** पूरी भी नहीं की थी कि जनता पार्टी के नेताओं की बेवकूफ़ियाँ व कमज़ोरियाँ उभरकर सामने आने लगीं और मुझे इन नये हुक्मरानों के बारे में लिखने के लिए मजबूर करने लगीं। वायदों की वही अवहेलना, रहन-सहन का वही अंदाज़, सत्ता के लिए वही छल-कपट, वही तिकड़में और दाव-पेंच, संविधान की मर्यादा के प्रति वही उतावलापन, तथाकथित "क्रांति के पुत्रों व पुत्रियों" की वही बेशर्मी, और सत्ता के इर्द-गिर्द मँडराने वाले वही संदिग्ध चेहरे! लगता है कि कुछ भी नहीं बदला है। एक तानाशाह को हटाकर उसके स्थान पर तानाशाह बनने की प्रक्रिया में लगे दूसरे आदमी को बैठा दिया गया; पहले के स्थान पर नये दरबारी मसख़रे को जगह मिल गयी, फ़र्क यह है कि नया मसखरा भाण्ड कुछ ज्यादा गुणी है; एक संजय हटा और उसके स्थान पर एक कांति देसाई आ गया; बंसीलाल की जगह देवीलाल ने हासिल कर ली। और सारे चन्द्रास्वामियों, पी० एन० कपूरों और जय गुरुदेवों का धंधा बदस्तूर चलने लगा।

मार्च 1977 के अंतिम दिनों में मैंने रायबरेली का वह भीषण बवंडर देखा था, जिसने देश की सबसे ताक़तवर शख्सियत को उठाकर इतिहास के कूड़ाघर में डाल दिया। जून 1977 में मैंने देखा कि रायबरेली में उठी वह ज़बर्दस्त लहर अब जनता पार्टी का सफ़ाया करने के लिए बढ़ रही है। कुछ ही महीनों के अंदर लोगों का दिमाग़ इतना बदल जायेगा—यह सोचना भी मुश्किल था। यह सब हमारे युग के उस विचित्र 'हनुमान' की मूर्खताओं और भाण्डपन का नतीजा है, जिसे हम सबने रायबरेली का 'जायंट किलर' कहकर हाथों-हाथ ले लिया था। इससे भी निराशाजनक स्थिति विभिन्न राज्यों के प्रशासन की है—केवल मार्क्सवादियों द्वारा शासित पश्चिम बंगाल में लगता है कि कोई सरकार काम कर रही है। हरियाणा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार—इन सारे राज्यों में जहाँ कांग्रेस के ख़िलाफ़ विद्रोह हुआ था, ऐसी सरकारें हैं जिनका कोई चेहरा ही नहीं है, जिन्हें सरकार नाम भी नहीं दिया जा सकता। लगता है, राजनीतिक आदमखोरी का ज़माना वापस आ गया है। "सम्पूर्ण क्रांति" का कुछ बचा है तो केवल सपनों का एक मलबा।

सब एक ही सवाल पूछते हैं—"क्या वह फिर वापस आयेगी ?" जैसे-जैसे नये हुक्मरान एक के बाद एक भयंकर ग़लतियाँ करते जा रहे हैं, लोगों के अंदर

उस देवी की वापसी का डर बढ़ता जा रहा है। इन नये हुक्मरानों ने बुनियादी कामों के प्रति दिलचस्पी लेने की वजाय अपनी सारी ताक़त हास्यास्पद आडंबरों में गवाँ दी और हँसी के पात्र बन गये हैं। एक से वढ़कर एक शक्तिशाली लोग, जिनके नाम के साथ तमाम प्रशासनिक खूबियाँ और बुद्धिमत्ता जुड़ी हुई थी, एक-दम खोखले सावित हुए हैं।

इसमें तो कोई संदेह नहीं कि लिखने का समय आ गया है। लेकिन शुरू कहाँ से किया जाये ? कहते हैं, आज़ादी एक धमाके के साथ आयी थी। लेकिन दिमाग़ों में अभी तक डर बना हुआ है। मित्रों ने मुझे आगाह किया, "इन नये हुक्मरानों के बारे में लिखने का साहस कैसे कर रहे हो ? ये लोग सत्ता में हैं !" आज़ादी को कसौटी पर रखने का भी यही समय था।

आगामी पन्नों में जनता पार्टी से संबंधित सभी लोगों का व्यापक विवरण नहीं मिलेगा। निस्संदेह कई महत्वपूर्ण लोग छूट गये होंगे। यदि उन सबको लिया जाता तो यह एक मोटी पुस्तक बन जाती। लेकिन जिन लोगों को शामिल किया गया है वे सभी का प्रतिनिधित्व करते हैं। जनता-नेताओं के अतीत पर ज़ोर दिया गया है, लेकिन इसकी वजह यह है कि उनके 80 या 75 या 50 वर्षों की तुलना में पिछला एक वर्ष ज्यादा महत्वपूर्ण है। उनके वर्तमान या उनके भविष्य को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक उनके अतीत को न समझ लिया जाये। (मुख्य चरित्रों का जीवन-परिचय पुस्तक के अंत में दिया गया है।)

आपके हाथों में यह पुस्तक देने से पूर्व मैं अपने मित्रों और वरिष्ठ सहकर्मियों को धन्यवाद देना चाहूँगा, जिनके सहयोग और मार्ग-दर्शन के बिना यह पुस्तक पूरी नहीं हो सकती थी। ख़ास तौर से मैं निखिल चक्रवर्ती, गणेश शुक्ला, गिरीश माथुर, रंजीत राय, एच० के० दूआ और एम० पी० सिन्हा का उल्लेख करना चाहूँगा, जिन्होंने व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में अपने विस्तृत ज्ञान से मुझे हमेशा अवगत कराया। साथ ही मैं यह भी स्पष्ट करना चाहूँगा कि घटनाओं और तथ्यों के बारे में कोई ग़लती हुई हो तो जिम्मेदारी उनकी नहीं हैं।

मैं लखनऊ, अहमदाबाद, बंबई, बंगलौर तथा अन्य शहरों के अपने मित्रों को भी धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मुझे अपना बहुमूल्य समय और सुझाव दिये।

अपने भाई मधुसूदन ठाकुर का मैं विशेषरूप से आभारी हूँ—उनकी मौजूदगी को मैंने पुस्तक लिखने के दौरान उनकी गैरहाज़िरी में भी बराबर महसूस किया।

मैं अपने बच्चों का भी बहुत आभारी हूँ, जिन्होंने भरसक मेरी मदद की और जो हर क्षण मेरी मदद के लिए तैयार रहते थे। मेरी बिटिया ऋचा, जो पिछली किताब के लिखे जाने के समय से अब आठ महीने ज्यादा उम्र की हो चुकी है, केवल खेलने से ही संतुष्ट नहीं थी और वह टाइपराइटर पर भी काम करना चाहती थी और मुझे कोई शक नहीं कि उसने किया होता तो यह काम बेहतर ढंग से होता !

—जनार्दन ठाकुर

क्रम

1

पृष्ठभूमि : गँठजोड़ का पाप

18 जनवरी 1977 को जेल से रिहा होने के कुछ ही देर बाद मोरारजी देसाई ने राहत की साँस लेते हुए पीलू मोदी से कहा, "हम लोग गँठजोड़ के पाप से बच गये।" उसी दिन घोषणा हुई थी कि मार्च में चुनाव होंगे। विरोधी दलों का विलय अब असंभव लगता था। समय बेहद कम था। जो काम सालों में नहीं हो पाया वह भला हफ़्तों में कैसे हो सकता था! 'जो भी हुआ भले के लिए ही हुआ,' देसाई ने सोचा। अपनी इस 81 साल की उम्र में भी देसाई हमेशा की तरह अपनी बात पर ही अड़े रहते थे। राजनीतिक रंगमंच से वह लगभग अलोप हो चुके थे, उनकी पार्टी के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे, लेकिन वह सोच भी नहीं सकते थे कि वह कांग्रेस-जन के अलावा और कुछ हो सकते हैं। विपक्ष के दूसरे लोगों की निगाह में वह सब-कुछ हारकर भी अपने फटे-पुराने झंडे के लिए लड़ रहे थे। ख़ुद अपनी निगाह में उनकी यह लड़ाई उनका धार्मिक कर्त्तव्य था।

लेकिन दल-विहीन जनतंत्र के भूतपूर्व महारथी जयप्रकाश नारायण के लिए विरोधी दलों का विलय आज पहले से भी कहीं ज़्यादा निष्ठा का मुद्दा बन गया था। उनकी ख्याति, उनका अहंकार, इतिहास में उनका स्थान—सब-कुछ बस एक बुनियादी मुद्दे पर आकर टिक गया था और वह था विरोधी दलों का विलय। प्रतिपक्ष के इस धर्म-पिता ने साफ़ शब्दों में धमकी दी—"एक पार्टी के रूप में आप लोग चुनाव लड़ो, वरना मेरा आप लोगों से कोई सरोकार नहीं।" इस बार धमकी काम कर गयी।

ऐसा कोई भी दल बने जिसमें कुछ दम हो, तो उसका नेता बनने के लिए तैयार बैठे थे चौधरी चरणसिंह। उनकी महत्वाकांक्षा आकाश को चूम रही थी। वह दो बार उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री-पद पाने में कामयाबी हासिल कर चुके थे। अब उनकी निगाह दिल्ली की गद्दी पर लगी हुई थी। दोमुँही बातें करने वाले कुछ विरोधी नेताओं ने उनसे कह रखा था कि नेता तो अपने-आप उनको ही बनाया जायेगा। दरअसल यह एक चाल थी, ताकि चरणसिंह को इन्दिरा के गिरोह में शामिल होने से रोका जा सके, जिसके लिए वे कुछ दिनों से ललक रहे थे। उनके

वफ़ादार सिपहसालारों ने इस चाल को समझ लिया था और वे बार-बार चौधरी साहब को इन वायदों में न फँसने के लिए आगाह कर रहे थे।

20 जनवरी 1977 को जब मोरारजी देसाई के निवास-स्थान, 5 डूप्लेक्स रोड पर विरोधी दलों की पहली बैठक हुई तो चौधरी के समर्थकों ने उनसे आग्रह किया, "आप मत जाइये, वे लोग आपको कभी भी पार्टी-अध्यक्ष नहीं बनायेंगे।" देसाई को भी उस दिन एक संवाददाता-सम्मेलन में भाग लेना था। चरणसिंह के आदमियों ने कहा, "विरोधी दलों के असली नेता मोरारजी बनेंगे और अगर आप वहाँ मौजूद रहे तो आपको भी शर्माशर्मी अपनी मंज़ूरी देनी पड़ेगी।" चरणसिंह पशोपेश में पड़ गये, पर ऐन मौक़े पर जन संघ के दो नेता, अटलबिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी, भागते हुए यू० पी०-निवास पहुँचे और चरणसिंह को फुसलाया—"विरोधी दलों की कोई कारगर बैठक आपके बिना कैसे हो सकती है ? विरोधी दलों के विलय की दिशा में आज तक जितने प्रयास हुए हैं उनमें आप भी तो एक प्रेरणा-स्रोत थे।" भारतीय लोक दल के तीसमारखाँ किंतु भोले-भाले अध्यक्ष राज़ी हो गये। उनको बैठक में पहुँचा ही दिया गया। 5 डूप्लेक्स रोड पहुँचने पर चौधरी ने देखा कि मोरारजी पहले से ही इस तरह बर्ताव कर रहे हैं मानो वही विरोधी दलों के जमघट के अध्यक्ष हों।

बैठक से वापस आने पर चरणसिंह के समर्थकों ने कहा, "आप इस बेइज़्ज़ती को क़बूल न करें।" उनकी दलील थी कि जे० पी० कभी उन्हें पार्टी का नेता नहीं बनायेंगे। उन्होंने इसका कारण भी बताया—आपने हमेशा जे० पी० के आंदोलन का विरोध किया, उनके तरीक़ों से आपका मतभेद रहा, 'संपूर्ण क्रांति' के मखौल की असलियत आपने दिखलायी, और आप दोनों के नज़रिये में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। उन लोगों ने सुझाव दिया, "साफ़-साफ़ कह दीजिये कि आप इस तरह के विलय से सहमत नहीं हैं, केवल चुनाव-समझौता ही हो सकता है।"

चरणसिंह अपने समर्थकों की बात मानने को तैयार थे, लेकिन इससे जन-मत पर बुरा असर पड़ सकता था। यही सोचकर वह दुविधा में पड़े रहे। उन्होंने सोचा कि आज अगर मैं किनारा कर जाता हूँ तो सारे लोग मुझे थू-थू करने लगेंगे और बहुत मुमकिन है कि मेरे कुछ राजनीतिक साथी भी मेरा साथ न दें। लेकिन पार्टी के नेतृत्व का सवाल तो मैं उठाऊँगा ही—ऐसे ही नहीं छोड़ दिया जायेगा।

और अगली बैठक में उन्होंने यह सवाल उठा भी दिया, "पहले लीडरशिप का सवाल तय हो जाना चाहिए।" सोशलिस्ट नेता एस० एम० जोशी लपककर चरणसिंह के पास पहुँचे और उन्हें उठाकर बाहर लॉन में ले गये। चरणसिंह ने उनसे कहा कि यह तो बहुत ही अनुचित है कि लीडरशिप के सवाल को ऐसे ही लटकने दिया जाये,. मुझे इस बात में कोई ऐतराज़ नहीं होगा कि यह मसला जयप्रकाशजी पर छोड़ दिया जाये। उन्हें तब तक यह उम्मीद थी कि अंत में शायद सर्वोदयी नेता उनको ही पसंद कर लें। जोशी ने फ़ौरन जेब से एक चिट्ठी निकाली। यह जे० पी० की चिट्ठी थी, जिसमें लिखा था कि वह मोरारजी देसाई को नयी पार्टी का अध्यक्ष बनाना चाहते हैं।

दो-तीन दिन बाद ही, 23 जनवरी, 1977 को, मोरारजी देसाई के ड्राइंग-रूम में पत्रकारों और कैमरामैनों की भीड़ का शोर-गुल गूंज रहा था—वे इस अप्रत्याशित आज़ादी से फूले नहीं समा रहे थे और हँसी-मज़ाक में तल्लीन थे। आज जनता पार्टी के गठन का एलान किया जाना था। दीवान के बीचोंबीच जे० पी० बैठे थे, जो बीमार और कमज़ोर लग रहे थे। उनके चेहरे पर सूजन थी,

पर वे काफ़ी खुश नज़र आ रहे थे। उनके एक तरफ़ मोरारजी देसाई और दूसरी तरफ़ चौधरी चरणसिंह बैठे हुए थे, जो नयी पार्टी के क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष थे। बैठक के दौरान उत्तर प्रदेश के इस दिग्गज के मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। वह खिन्न मन से ख़ामोश बैठे रहे। केवल उनकी तीखी संदेह-भरी आँखें चारों तरफ़ घूम रही थीं। कोई भी महसूस कर सकता था कि यह सब-कुछ उनके गले नहीं उतर रहा था। उनके दुःखों का प्याला भरा हुआ लग रहा था।

यू० पी०-निवास लौटने पर वह रो पड़े और अपने समर्थकों की ओर मुख़ातिब होते हुए बोले, "सारी ज़िंदगी की कमाई बर्बाद हो गयी। अब मुझे सी० बी० गुप्ता जैसे लोगों के लिए वोट माँगना पड़ेगा।" ग़ुस्से से उनका चेहरा तमतमा रहा था।

चौधरी के समर्थकों ने एक नया तरीक़ा ढूँढ निकाला, "अच्छा तो सारे उत्तर भारत में टिकटों का बँटवारा आपके हाथों होना चाहिए।" यह बात चरणसिंह को जँच गयी। आख़िरकार चुनाव के बाद की स्थिति ही ज़्यादा मायने रखती है। वह अपने भरोसे के लोगों को टिकट न दे सकें और वे लोग चुनाव जीत न जायें तो महज़ पार्टी का अध्यक्ष बन जाने से कोई फ़ायदा नहीं। उनके पुराने राज-नीतिक साथी उड़ीसा के बीजू पटनायक ने चरणसिंह के इस नये फ़ार्मूले को मोरारजी देसाई तथा पार्टी की राष्ट्रीय समिति के सदस्यों तक पहुँचा दिया। उन लोगों ने इसे मंज़ूर कर लिया।

चरणसिंह को पूरी तरह तो नहीं लेकिन कुछ हद तक तसल्ली हुई। चौधरी को ख़ुश करने और साथ ही लोक-सभा का टिकट बाँटने वाले व्यक्ति की मेहर-बानी पाने के लिए जन संघ के दो वरिष्ठ नेताओं ने कहा, "मोरारजी भाई को तो डी० के० बरुआ बनाया है, इन्दिरा तो आप होंगे।"

जनता पार्टी को जन्म दिया इन्दिरा गांधी ने। भले ही यह उनकी इच्छा न रही हो। जनता नींद में बेसुध दानव की तरह एक साथ जाग उठी और उसने जनता पार्टी का झण्डा उठा लिया। आपात स्थिति की तकलीफ़ें और विपक्ष का दमन नहीं होते तो शायद जनता पार्टी का गठन एक सपना ही बना रहता। ऐसा लगता है, गोया भारत एक बंद कमरा हो जिसकी खिड़की अचानक खुल गयी हो और ताज़ा हवा का एक झोंका अंदर आ गया हो। देखते-देखते इस झोंके ने तेज़ हवा, फिर आँधी और अंत में बवंडर का रूप ले लिया और जब तक लोग होश संभालें, सारे दिग्गज महारथियों के पाँव ज़मीन से उखड़ गये। कुछ ही हफ़्तों के अंदर अँधेरे से घिरे हुए विरोधी नेता निराशा के दलदल से निकलकर अभूतपूर्व विजय के शिखर पर पहुँच गये। राजसत्ता उन्हें बिना माँगे ही मिल गयी। विजेता और पराजित, दोनों ही लोग समान रूप से चकित थे। विजय की उस घड़ी में जयप्रकाश नारायण ने कहा, "अगर जन-उभार नहीं होता तो एक हज़ार जे० पी० भी इस तरह की सफलता नहीं हासिल कर पाते।"

तत्कालीन विरोधी नेता वर्षों से प्रयत्नशील थे, उन्होंने हर तरह के जोड़-तोड़ आज़मा लिये थे—संयुक्त मोर्चा, महागँठबंधन, जनता मोर्चा, आधा तीतर आधा बटेर—लेकिन कोई दाव-पेंच नहीं चला। वे कभी-कभी कांग्रेसी सत्ता के इर्द-गिर्द चक्कर तो काट पाते, पर उसका एक अंश भी कभी न पा सके।

1967 के चुनाव में ग़ैर-कांग्रेसवाद को कुछ हद तक कामयाबी मिली, लेकिन साल ख़त्म होने से पहले ही एक-एक करके 9 राज्यों में सरकारें उनके हाथों से

निकलने लगीं। 1967 की संयुक्त मोर्चा सरकारों के गिरने की वजह इन्दिरा गांधी और उनके आदमियों की तरह-तरह की तिकड़मों से ज़्यादा इन दलों के अंतर्विरोध थे। अधिकतर सरकारें आपसी कटुता की वजह से टूटीं।

फिर भी कांग्रेस के ख़िलाफ़ मोर्चा बनाने की कोशिशें कभी छोड़ी नहीं गयीं। कई लोग अपने-अपने तरीक़े से प्रयत्न करते रहे। सबकी अपनी एक अलग निराशा की कहानी है कि किसने कितनी मेहनत की, किस तरह से इन प्रयासों को ध्वस्त किया गया। हर-एक के अपने विचार हैं, और विभिन्न विचारों के लोगों को एक मंच पर इकट्ठा करने में अपनी 'महत्वपूर्ण भूमिका' पर प्रकाश डालने से कोई नहीं चूकता।

1969 के शुरू के दिनों की बात है। पीलू मोदी ने एक दिन मोरारजी देसाई को टेलीफ़ोन किया। उस समय देसाई अविभाजित कांग्रेस सरकार के वित्त-मंत्री थे। मोरारजी काम के बोझ से लदे हुए थे, फिर भी उन्होंने टेलीफ़ोन उठा लिया। स्वतंत्र पार्टी के बातूनी और भारी-भरकम नेता मोदी ने मोरारजी से पूछा, "आपको कभी फ़ुरसत भी रहती है! थोड़ा समय निकालिये तो मुझे आपसे पूरा एक घंटा बातचीत करनी है। जब समय हो तो मुझे बता दीजिये।"

कुछ दिनों बाद पीलू ने मोरारजी से बातचीत करते हुए दाना फेंका। पीलू मोदी ने कहा कि इस तरह बहुत दिन नहीं चलेगा और नये सिरे से मोर्चेबंदी की ज़रूरत है। मोरारजी भी सुखद स्थिति में नहीं थे। संसद में उन पर लगातार हमले हो रहे थे। सोशलिस्ट नेता मधु लिमये ने मोरारजी के पुत्र कांतिलाल देसाई के ख़िलाफ़ जेहाद बोल रखा था। यहाँ तक कि खुद उनकी पार्टी के चन्द्रशेखर भी, जो उन दिनों 'युवा तुर्क' बनने की प्रक्रिया में थे, बार-बार यह आरोप लगा रहे थे कि बिड़ला के मामलों की जाँच में मोरारजी रुकावट बन रहे हैं। सबसे ज़्यादा चिढ़ उन्हें यह हो रही थी कि इन्दिरा गांधी एक अजीब 'दोतरफ़ा रवैया' अख़्तियार कर रही थीं। मोरारजी महसूस कर रहे थे कि इन्दिरा गांधी "अपने समर्थकों को इतने ओछे ढंग से खुलेआम मेरी आलोचना करने से नहीं रोक रही हैं।"[1] इन्दिरा गांधी तो उल्टे इस आलोचना को शह दे रही थीं।

पीलू मोदी ने कहा कि उनकी समझ में नहीं आता कि मोरारजी कैसे यह सब बर्दाश्त कर रहे हैं। उन्होंने मोरारजी पर आरोप लगाया कि आप इन्दिरा गांधी के साथ आँख-मिचौली खेल रहे हैं। ज़ाहिर था कि वह मोरारजी को इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ कोई कड़ा क़दम उठाने के लिए उकसा रहे थे, लेकिन उनकी चाल बेकार रही। मोरारजी ने बड़ी संजीदगी के साथ जवाब दिया, "मैं अब इतना बूढ़ा हो चुका हूँ कि किसी नयी पार्टी को बनाना मेरे वस का काम नहीं है। महात्मा गांधी यह कर सकते थे—मैं इस क़ाबिल नहीं हूँ।"

आगे चलकर हालात ऐसे पैदा हुए कि मोरारजी और उनके साथियों को अलग-अलग रास्ते अख़्तियार करने पड़े। 1971 के लोकसभा-चुनावों से पूर्व संगठन कांग्रेस, जन संघ और स्वतंत्र पार्टी के नेताओं की बैठक चण्डीगढ़ में हुई, जिसमें इन पार्टियों ने चुनाव लड़ने के लिए एक गँठबंधन किया। इसमें सोशलिस्टों को शामिल नहीं किया गया, लेकिन बाद में बिहार में संगठन कांग्रेस के कुछ लोगों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सोशलिस्टों को अलग रखकर कोई गँठजोड़ नहीं किया जाना चाहिए। कुछ लोगों ने तो संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष एस० निजलिंगप्पा को घेरकर सोशलिस्टों को शामिल करने के लिए मजबूर कर दिया। इस प्रकार अपना गँठबंधन 'प्रदूषित' किये जाने पर कई स्वतंत्र पार्टी वाले व जन संघ

के लोग आग-बबूला हो गये। उनके गँठबंधन को 'महान समझौता" (ग्रैण्ड अलॉयंस) कहा जाने लगा—जले-भुने अंदाज़ में जन संघ के एक भूतपूर्व अध्यक्ष बलराज मधोक ने, जो बाद में अपनी पार्टी से अलग हो गये, कहा कि यह गँठजोड़ "न महान है, न समझौता ही।"

चुनाव-परिणामों से देखा जाये तो सचमुच ही उसमें महान कुछ भी नहीं था। पार्टियों के आपसी समझौतों का बुरी तरह से उल्लंघन किया गया था। बात बढ़ायी-चढ़ायी न जाये तो भी कहना पड़ेगा कि सभी ने एक-दूसरे को धोखा दिया। बिलकुल रंग में भंग हो गया। 1971 में ऐसी हवा बँधी कि लगभग एक वर्ष तक विपक्ष की सारी राजनीति असमंजस की अवस्था में रही। जैसा कि पीलू मोदी ने कहा, "मैं एक सोफ़े पर पड़ा छत की ओर देखा करता था। मैं इस्तीफ़ा देने लगा था। फिर हममें से कुछ सदस्य संसद में संगतराशों की तरह हथौड़ियाँ व छैनियाँ लेकर उनकी (इन्दिरा की) भारी-भरकम नाक को दुरुस्त करने में लग गये...।"

उत्तर प्रदेश में चरणसिंह अपने घावों को सहलाने में लगे थे। उनकी पार्टी भारतीय क्रान्ति दल, 1971 के चुनाव में अकेले ही लड़ी थी और स्वयं चरणसिंह अपने गढ़ मुज़फ्फरनगर में—जो जाटों के इलाक़े का केन्द्र है—बुरी तरह हार गये थे। उनको अपने ठोस और अजेय क़िले पर गर्व था और उसका हाथ से निकल जाना उनके लिए भूल सकना मुश्किल था। वह अपने दल के भविष्य के बारे में हतोत्साहित, निराश और विक्षुब्ध थे।[2] दल-बदल और छल-बदल के ज़रिये, जो 1967 के बाद की विशेषता बन गये थे, चरणसिंह ने उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री-पद दो बार हथियाने में सफलता पा ली थी। 1969 के मध्यावधि चुनाव में उन्हें आशानुकूल काफ़ी सफलता मिली थी और भारतीय क्रांति दल को विधान-सभा में 99 सीटें हासिल हुई थीं। लेकिन 1973 तक खुद उनके ही द्वारा शुरू की गयी प्रक्रिया का नतीजा यह हुआ कि उनकी पार्टी के सदस्य घटकर केवल 42 रह गये और इस प्रकार विपक्षी दल के रूप में मान्यता पाने के लिए भी एक सीट की कमी रह गयी। एक निर्दलीय सदस्य भानुप्रतापसिंह की मदद से वह अपने को एक बिना पार्टी का नेता बन जाने की शर्म से बचा सके।

1974 के विधान-सभा-चुनाव नज़दीक आने पर चरणसिंह संयुक्त विरोधी दल बनाने के लिए चिंतित हुए। बीजू पटनायक, जो एक रंगीन हस्ती हैं, उनकी मदद के लिए लखनऊ पहुँचे ताकि चरणसिंह और संगठन कांग्रेस के राज्य-नेता चन्द्रभानु गुप्ता के बीच कोई तालमेल बिठा सकें। दिल्ली से अशोक मेहता पहुँचे, जो पी० एस० पी० से इन्दिरा गांधी के मोह-जाल से होते हुए संगठन कांग्रेस की अध्यक्षता तक का लम्बा सफ़र तय कर चुके थे। समझौते की बड़ी कोशिशें की गयीं, लेकिन उत्तर प्रदेश के दो दिग्गजों—चरणसिंह और चन्द्रभानु गुप्ता के अक्खड़पन और आपसी वैमनस्य के बीच कोई कमी नहीं आ सकी। दोनों के मिलने की कोई सूरत ही नहीं बन पायी। दोनों में से कोई भी दूसरे के नीचे काम करने को तैयार नहीं था। सी० बी० गुप्ता से पूछा गया कि यदि राज्य में संयुक्त विरोधी दल के नेता के रूप में और इस दल के चुनाव में जीत जाने की हालत में मुख्यमंत्री के रूप में चरणसिंह को नियुक्त किया जाये तो उन्हें कोई एतराज़ होगा? सी० बी० गुप्ता ने संवाददाताओं को जवाब दिया, "चरणसिंह और उनके साथी सबसे पहले संगठन कांग्रेस में शामिल हों, बाद में हमारी पार्टी तय करेगी कि नेता किसे बनाया जाये।"[3] उनका ख़याल था कि

'बाहरी' लोगों को समझौते की कोशिश में लगने की कोई ज़रूरत नहीं है, क्योंकि इससे कोई फ़ायदा नहीं होगा। "हम कोई शर्मीले नव-विवाहित दम्पत्ति नहीं हैं, जिन्हें एक-दूसरे के नज़दीक आने के लिए औरों की मदद की ज़रूरत हो। किसी तरह की कारगर बातचीत तभी हो सकती है जब श्री अशोक मेहता और श्री बीजू पटनायक जैसे दोस्त चले जायें।" काफ़ी निराश होकर बीजू पटनायक वापस लौट गये।

फ़रवरी 1973 में बीजू पटनायक ने जयप्रकाश नारायण से भेंट की और उनसे अनुरोध किया कि वह एक अखिल भारतीय मोर्चे का नेतृत्व करें जो कांग्रेस का विकल्प बन सके। लेकिन जे० पी० ने फ़ौरन ही उनके उत्साह को ठंडा कर दिया। वह इस बात से सहमत थे कि मनुष्य की स्वतंत्रता और जनतंत्र के प्रति चिंतित कोई भी व्यक्ति देश की मौजूदा राजनीतिक हालत को देखकर खुश नहीं हो सकता। फिर भी वह बीजू पटनायक के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सके, क्योंकि उनका विश्वास था कि जब तक "सिद्धांतों के आधार पर और अवसरवाद से मुक्त होकर" कोई मोर्चा नहीं बनता, उसे सफलता नहीं मिल सकती। उन्होंने ज़ोर दिया कि इस तरह के मोर्चे को "इन्दिरा हटाओ-जैसे नकारात्मक उद्देश्यों तक सीमित नहीं रहना होगा—जनता के सामने उसे ठोस नीति और कार्यक्रम पेश करने होंगे।"[1] घटनाओं का प्रवाह कुछ ऐसा रहा कि बाद में जयप्रकाश को एक ऐसे मिले-जुले विरोधी मोर्चे की अगुवाई करनी पड़ी जिसका एकमात्र उद्देश्य था—इन्दिरा हटाओ। जनता के सामने कोई ठोस कार्यक्रम पेश करने का मौक़ा यदि जनता पार्टी को मिला तो वह इन्दिरा गांधी के कुकर्मों के कारण ही मिल सका।

जे० पी० बहुतों के लिए, और शायद अपने लिए भी, एक पहेली रहे हैं। वे कई रास्तों पर चले हैं, लेकिन लगभग हर बार वह एक बंद गली में ही पहुँच गये हैं। लेनिनवाद और मार्क्सवाद से लेकर समाजवाद होते हुए विनोबा के भूदान और जीवनदान तक जे० पी० ने बड़े बीहड़ रास्तों को तय किया, जिसका औचित्य उनके समर्थकों और अनुयायियों तक की समझ में भी आसानी से नहीं आता। 1975 में जेल में लिखी एक कविता में उन्होंने कहा :

> सफलताएँ जब कभी आयीं निकट,
> दूर ठेला है उन्हें निजी मार्ग से।
> तो क्या वह मूर्खता थी ?
> नहीं।
> जग जिन्हें कहता विफलता
> थीं शोध की वे मंज़िलें।

जे० पी० एक ऐसे भिन्न-मतावलम्बी व्यक्ति हैं, जिनके बारे में यह कह सकना मुश्किल लगता है कि वह क्या चाहते हैं। हारे हुए पक्षों का झंडा उठाने में मानो उनको विचित्र आनन्द प्राप्त होता है। 1930 वाले दशक में कांग्रेस से संबंध टूटने के बाद जयप्रकाश नारायण देश की राजनीति की मुख्य धारा से ही नहीं बल्कि आज़ादी-बाद के भारत की वास्तविकताओं से भी लगातार अलग-थलग पड़ते गये थे। प्रायः वह बादलों और पपीहों की धरती के यात्री लगते थे।

'भारत छोड़ो'-आंदोलन के चमचमाते सितारों में से एक तथा युवकों के आदर्श जे० पी० का सत्ता पर कभी अधिकार नहीं रहा। लेकिन अपने जीवन में वह कभी सत्ता के खेल से बाहर भी नहीं रहे, हालांकि उनका एक दूसरी तरह की राजनीति में विश्वास रहा। काफ़ी पहले, 1963 में उन्होंने एक अमेरिकी पत्रकार से कहा भी था कि "पार्टी और राजनीति" से रिटायर होने की घोषणा के बावजूद वह "सर से पाँव तक" राजनीति से सराबोर हैं और इसके "समूचे स्वरूप को बदलने की कोशिश में लगे हैं।"[5] यह बहुत स्वाभाविक था कि जे० पी० धीरे-धीरे जवाहरलाल नेहरू से दूर होते गये, जो एक ऐसी घटिया राजनीति में सर से पाँव तक डूबे थे जिससे जे० पी० को ज़ाहिरा तौर पर नफ़रत थी। 1948 में, जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें 'भारत का भावी प्रधानमंत्री' कहा था, पर 1955 तक जे० पी० को नेहरू एक बवालेजान समझने लगे थे। इसके अलावा उस समय तक नेहरू अपने उत्तराधिकारी के रूप में दूसरे लोगों के बारे में सोचने लगे थे—उन लोगों के बारे में जो उनके ज़्यादा नज़दीक थे। उन्होंने जे० पी० पर आरोप लगाना शुरू किया कि वह "राजनीति और भूदान के खंभों के पीछे लुका-छिपी खेल रहे हैं।"

दोनों नेताओं के बीच कभी प्यार और कभी नफ़रत वाला विचित्र संबंध था, जो कम-से-कम एक हद तक राजनीति की मुख्य धारा से जे० पी० के अलगाव पर तो रोशनी डालता ही है, आज़ादी-बाद के वर्षों में जे० पी० ने जो कुछ कहा और किया, उस पर भी प्रकाश डालता है। इस नेता के व्यक्तित्व को पूरी तरह समझने के लिए—जिसको आज कुछ लोग भारत का 'दूसरा गांधी' कहकर जयजयकार करते हैं—हमें आज़ादी के आंदोलन के दिनों पर ग़ौर करना पड़ेगा, जब जे०पी० उग्र युवा-क्रांतिकारी थे और ज़वाहरलाल नेहरू के बाद दूसरे स्थान पर समझे जाते थे। नेहरू-परिवार के संदर्भ से अलग करके जे० पी० को समझना मुश्किल है और यह सच्चाई भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि आज़ादी के आंदोलन के काफ़ी शुरू के वर्षों में ही नेहरू महात्मा गांधी के काफ़ी 'चहेते' बन गये थे। जे० पी० के राजनीतिक जीवन के अधिकांश भाग की रचना में इतिहास की इस सच्चाई की महत्वपूर्ण भूमिका है।

जे० पी० ने महात्मा गांधी के आह्वान पर तीसरे दशक के शुरू के वर्षों में कॉलेज छोड़ दिया था। जवाहरलाल उनसे तेरह साल बड़े ही नहीं थे, एक अति समृद्ध घराने में पैदा भी हुए थे जिसका उन्हें लाभ मिलता रहा। उनकी देखभाल के लिए एक पढ़ी-लिखी अँग्रेज़ आया थी और उनकी शिक्षा हैरो तथा कैम्ब्रिज में हुई थी। वह अच्छी अँग्रेज़ी लिख-बोल सकते थे और शुरू से ही उन्हें नेतृत्व की अगली क़तार में डाल दिया गया था। जयप्रकाश भी काफ़ी आकर्षक और ख़ूबसूरत थे—इतने ख़ूबसूरत कि आज भी बिहार के बुज़ुर्ग लोग उनके आकर्षक व्यक्तित्व की चर्चा करते हैं। लेकिन वह सभ्यता की होड़ में पिछड़े हुए बिहार-यू० पी०-सीमा के एक गाँव सिताबदियारा के एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुए थे। फिर भी जे० पी० इन विषम स्थितियों में जकड़े जाने वाले नहीं थे। उन्होंने विभिन्न स्रोतों से कुछ पैसा इकट्ठा किया, अपनी जवान पत्नी को कस्तूरबा के ज़िम्मे छोड़ा और अमेरिका के लिए रवाना हो गये, जहाँ उन्होंने आठ वर्ष तक भीषण संघर्ष किया और शिक्षा प्राप्त की। उनकी पत्नी प्रभावती महात्मा गांधी के ज़बर्दस्त अनुयायी डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के एक बहुत नज़दीकी मित्र की पुत्री थीं। लेकिन चमकती आँखों वाले पथिक जे० पी० उग्र मार्क्सवादी बन चुके थे

और उन्होंने एक मौक़े पर गांधी को "कमज़ोर आर्थिक विश्लेषण, अच्छे इरादों और फ़ालतू नसीहतों के दलदल में फँसा बुर्जुवा सुधारवादी" बताया था।

गांधी के आलोचक होने के बावजूद जे० पी० हमेशा झुककर गांधी के पाँव छूते थे—जे० पी० के मित्र मीनू मसानी इस आदत पर अक्सर उन्हें चिढ़ाते भी थे। मसानी उन्हें 'हिंदू मार्क्सवादी' कहते थे—यह जे० पी० के व्यक्तित्व में समाये तमाम परस्पर-विरोधी तत्वों में से महज़ एक तत्व था। उस समय भी उनके अंदर भावी गांधीवादी होने के बीज मौजूद थे। बुद्धिमान लोगों की निगाह से जे० पी० और गांधी के विसंयुक्त संबंध छिपे नहीं थे। गांधी और कस्तूरबा के लिए प्रभावती बेटी की तरह थीं और इसीलिए जे० पी० को वे अपने दामाद-जैसा मानते थे। फिर भी उनके संबंधों में एक तरह की मनोवैज्ञानिक अड़चन थी और यह शायद जवाहरलाल के साथ गांधी के विशेष संबंधों की वजह से थी। शायद महात्मा गांधी भी नेहरू-परिवार की चमक-दमक से चौंधिया गये थे।

जवाहरलाल की मृत्यु होने तक जे०पी० प्रधानमंत्री बनने की मंज़िल से गुज़र चुके थे। अब यह पद उनकी तुलना में बहुत छोटे लोगों के हाथों में पहुँच चुका था (इनमें इन्दिरा गांधी भी शामिल हैं जो अपने मंत्रिमंडल में एकमात्र 'मर्द' थीं)। अब उन्हें इस पद की ख़्वाहिश भी नहीं थी। इस पद के लिए कोशिश करना भी शायद उनकी शान के ख़िलाफ़ था। उन्होंने 'भारत-रत्न' पाने की इच्छा भी नहीं ज़ाहिर की; 'छोटे लोगों' द्वारा दी जाने वाली उपाधियाँ भी उनके लिए नहीं थीं। अब उन्हें कोई और ऊँची चीज़ चाहिए थी और उसी तलाश में वह कभी एक धर्म-कार्य हाथ में लेते, कभी दूसरा। 1970 का दशक आते-आते वह काफ़ी थकान और ऊब महसूस करने लगे थे। वह नहीं समझ पा रहे थे कि उनके कामों से कुछ हासिल होगा या नहीं। वह कुछ देर के लिए हर काम से छुट्टी पाना चाहते थे—शायद इसलिए कि वह अपने भावी कार्यक्रमों की रूपरेखा बना सकें। अक्तूबर 1972 में उन्होंने घोषणा की, "मैं चाहता हूँ कि मुझे एकदम अकेला छोड़ दिया जाये ताकि मैं आराम कर सकूँ, कुछ सोच सकूँ और लिख-पढ़ सकूँ।"

इसी एक साल के 'एकांतवास' के दौरान बीजू पटनायक ने जे० पी० को इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ खुली मुठभेड़ में खींच लाने की कोशिश की। जे० पी० का विचार था कि अभी वह समय नहीं आया था।

फ़रवरी 1974 में उत्तर प्रदेश के चुनाव आ गये, जिनसे देश की हाल की राजनीति का इतिहास बदल गया। तब तक संसद में प्रतिपक्ष के नेताओं ने अपनी छोटी हथौड़ी और छैनी से धीरे-धीरे, किंतु मज़बूती के साथ, उस 'भारी-भरकम नाक' पर प्रहार करके उसे थोड़ा बेडौल कर दिया था। 1971 के चुनाव के बाद इन्दिरा को जो ताक़त मिली थी उसमें तेज़ी से कमी आती जा रही थी। उनके 'ग़रीबी हटाओ' नारे का खोखलापन जग-ज़ाहिर हो रहा था। हर तरफ़ से उनकी लोकप्रियता कम होती नज़र आ रही थी। दूसरी ओर, ऐसा लगता था कि विरोधी दल 1971 की अपनी करारी हार भूल गये थे। उनके अंदर उम्मीद की एक नयी लहर दौड़ रही थी। उन्होंने इन्दिरा के ख़िलाफ़ व्यापक और खुल्लमखुल्ला संघर्ष छेड़ देने के लिए अपनी आस्तीनें चढ़ा ली थीं और उत्तर प्रदेश को अपनी पहली रण-भूमि बनाने पर तुले हुए थे।

अप्रैल 1973 में मोरारजी देसाई जनता से जोशीले लफ़्ज़ों में अपील कर रहे

थे कि इन्दिरा गांधी का तख़्ता पलट दें। उन्होंने भविष्यवाणी की कि उत्तर प्रदेश के चुनाव में इन्दिरा गांधी के भाग्य का फ़ैसला हो जायेगा। इन्दिरा गांधी की हार होगी, और एक राष्ट्रीय सरकार का, ज़्यादा बेहतर सरकार का, गठन होगा।[6]

लगभग उन्हीं दिनों पीलू मोदी मद्रास की जनता को बता रहे थे कि उनकी पार्टी ने यू० पी० के चुनावों को "ज़ोरदार ढंग" से लड़ने का फ़ैसला किया है, क्योंकि "हम मानते हैं कि दिल्ली की चाबी यू० पी० ही है।"[7]

सबसे ज़्यादा शोर जन संघ मचा रहा था और दावा कर रहा था कि वह कांग्रेस से सीधी मुठभेड़ के लिए अब तैयार है। पार्टी के अध्यक्ष एल० के० आडवाणी ने कानपुर में हिम्मत के साथ कहा कि उत्तर प्रदेश के अगले चुनाव जन संघ के लिए परीक्षा की घड़ी होंगे।[8]

चौधरी चरणसिंह कब पीछे रहने वाले थे! संगठन कांग्रेस के साथ उन्हें नाकामयाबी मिली थी, क्योंकि सी० बी० गुप्ता उनके गुप्त किंतु स्पष्ट इरादों को मानने वाले नहीं थे—चौधरी साहब चाहते थे कि उत्तर प्रदेश के अगले मुख्यमंत्री वह ख़ुद बनें और संयुक्त दल के नेता भी वही रहें। व्यक्तित्व पर आधारित पार्टी में उनका विश्वास था और वह सोच भी नहीं पाते थे कि पार्टी और सरकार की रहनुमाई करने के लिए उनसे भी ज़्यादा क़ाबिल कोई हो सकता है। संगठन कांग्रेस से नाकामयाब होने के बाद उन्होंने भारतीय क्रांति दल, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और मुस्लिम मजलिस के साथ एक और चुनाव-गँठबंधन किया। और इसको कोई औपचारिक रूप दिये जाने से पहले ही उन्होंने इस गँठबंधन में शामिल सभी विपक्षी नेताओं का हस्ताक्षर किया हुआ एक संयुक्त बयान हासिल कर लिया। इस बयान से साफ़ पता चल जाता है कि सी० बी० गुप्ता के साथ समझौता क्यों नहीं हो सका था। भारतीय क्रांति दल, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और मुस्लिम मजलिस की संयुक्त घोषणा में कहा गया था—'ऊपर उल्लिखित पार्टियाँ चौधरी चरणसिंह के नेतृत्व में चुनाव लड़ेंगी और उनके नेतृत्व में ही सरकार का गठन करेंगी। एक ही चुनाव-चिह्न, हलधर, पर चुनाव लड़ेंगी।"

उत्तर प्रदेश में मार्च 1977 के लोकसभा-चुनावों की तुलना में 1974 में हलधर चुनाव-चिह्न वाले झण्डे और पोस्टर ज़्यादा और हर जगह दिखायी दे रहे थे। बलिया के धूल-भरे छोटे-से क़स्बे में हल और किसान की झाँकी के नीचे बैठकर कुछ हट्टे-कट्टे किसान गा रहे थे—"मैं दिल्ली चला जाऊँगा, तुम देखते रहियो।" यह उस समय की एक बहु-प्रचलित हिन्दी फ़िल्म के गाने की पैरोडी थी। उन दिनों भी चौधरी चरणसिंह की निगाहें दिल्ली पर लगी हुई थीं।

इस चुनाव से पहले या इसके बाद कभी भी इतना भीषण पोस्टर-युद्ध देखने को नहीं मिला। शहरों से लेकर छोटे क़स्बों और गाँवों तक समूचे उत्तर प्रदेश में दीवारें रंग-बिरंगे पोस्टरों से भरी पड़ी थीं—इनमें से अधिकांश पोस्टर ऑफ़सेट मशीनों पर छपे थे। दीवारों पर लगे बड़े-बड़े पोस्टरों में कांग्रेस सरकार द्वारा शुरू की गयी योजनाओं और राज्य में डाली गयी असंख्य आधारशिलाओं का वर्णन था—यह राज्य के क्रियाशील नेता हेमवतीनंदन बहुगुणा की कलाकारी का नमूना थी। उन्हें इन्दिरा गांधी ने उत्तर प्रदेश-चुनाव में कामयाबी हासिल कराने के लिए भेजा था। बड़े-बड़े पोस्टर लगे थे जिनमें कहा गया था—"कांग्रेस को विजयी बनाइये और उत्तर प्रदेश का विकास कीजिये।" हर जगह इन पोस्टरों के सामने जन संघ के पोस्टर चिपके थे, जिसमें एक दुबला-पतला ग्रामीण कह रहा

था—"26 साल तक हमने इंतज़ार किया, जिसका कोई नतीजा नहीं निकला—लेकिन अब जन संघ आया है।" इन्दिरा गांधी के चमकते, मुस्कराते चेहरों वाले हर पोस्टर के बराबर में एक नाटकीय पोस्टर लगा होता था जिसमें अटलविहारी वाजपेयी को मुट्ठी ताने दिखाया गया था और उसके नीचे एक संदेश लिखा था—"उत्तर प्रदेश की सरकार अटलजी के सबल हाथों में।" इनके बीच में भारतीय क्रांति दल का नारा घिसट रहा था—"चरणसिंह को विजयी बनायें।" चारों तरफ़ इन्हीं बेसुरे नारों का शोर था।

अपने ज़बर्दस्त अभियान के बावजूद विरोधी दलों को धूल चाटनी पड़ गयी। कांग्रेस विजयी रही, यद्यपि उसे कुल 32 प्रतिशत वोट मिले। चुनाव ने एक बार फिर अति-नाटकीय ढंग से यह दिखला दिया कि टुकड़ों-टुकड़ों में बँटे विपक्ष के लिए कांग्रेस के धुरंधरों का तख़्ता पलटने की कोशिश करना कितनी बेकार है।

हालाँकि मिले-जुले विरोधी दल की बात अभी भी पहले ही जितनी दुर्ग्राह्य थी, पर 1974 के परिणामों ने एक बार फिर नेताओं को इस दिशा में सोचने के लिए मजबूर कर दिया। इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण बात यह थी कि विरोधी दलों के, और ख़ासतौर से जन संघ के, कुछ नेताओं को मजबूरन इस नतीजे पर पहुँचना पड़ा कि वे अकेले इन्दिरा गांधी को हरा नहीं सकते। इसके लिए उन्हें किसी और का सहारा लेना पड़ेगा। वे ऐसी किसी ताक़त की चारों ओर तलाश करने लगे।

जे० पी० एक बार फिर क्षितिज में उभरने लगे थे। उनकी प्रिय पत्नी प्रभावती की मृत्यु ऐसे समय हुई जब गुजरात व बिहार में आन्दोलन लोगों को, ख़ास तौर से नौजवानों को, झकझोर रहे थे। उन्होंने जयप्रकाश को आकर्षित कर लिया। जे० पी० को "अधिक गहराई तक जाने वाली, अधिक व्यापक" राजनीति पसंद है।[9] दिसम्बर 1973 में उन्होंने वह पत्र-व्यवहार, जो उस वर्ष के शुरू में इन्दिरा गांधी से हुआ था, प्रकाशित कर दिया। वह पत्र-व्यवहार जे० पी० द्वारा दिल्ली की भद्रा की रुखाई पर "बेहद निराश व दुख" प्रकट करते हुए समाप्त हुआ था। इसके बाद उन्होंने संसद-सदस्यों के नाम एक खुला पत्र अपने अख़बार **ऐवरीमैन्स** में प्रकाशित किया। इस अख़बार का प्रकाशन उन्हीं दिनों शुरू किया गया था, जो जे० पी० की उन दिनों की बेचैनी का मापदण्ड था।

1974 के शुरू होने तक जे० पी० को विश्वास हो गया था कि देश में तबदीली का समय आ गया है। 3 फ़रवरी 1974 को उन्होंने कहा, "इतिहास की धारा को बदलने के लिए 1942-जैसा एक और आंदोलन शुरू होता नज़र आता है।" हालाँकि अधिकांश लोग जे० पी० की इस बात से सहमत नहीं होंगे कि 1942 का आंदोलन और 1974 में बिहार तथा गुजरात की घटनाएँ समानांतर थीं, पर उन्होंने निश्चय ही नौजवानों के तेवर समझ लिये थे—और युवा-शक्ति पर उनको बहुत विश्वास तो था ही।

गुजरात की उथल-पुथल में उनकी लगभग नहीं के बराबर भूमिका थी और कभी-कभी तो वे यह भी समझने लगे थे कि उन्हें इस आंदोलन से किनारे कर दिया गया है। फिर भी स्थिति का स्वयं जायज़ा लेने के लिए उन्होंने गुजरात की यात्रा की। इस यात्रा से उनकी यह धारणा और पुष्ट हो गयी कि परिवर्तन का समय आ गया है—ऐसे परिवर्तन का नहीं जिसमें नागनाथ की जगह साँपनाथ को बिठा दिया जाये, बल्कि एक 'गहरे परिवर्तन' की ज़रूरत है जो राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक धरातल पर चौतरफ़ा पुनरोत्थान कर सके। इस तरह के

परिवर्तन को उन्होंने कुछ ही दिनों बाद एक नाम दे दिया—'संपूर्ण क्रांति'।

गुजरात से लौटते समय इन्दिरा गांधी से मिलने के लिए जे० पी० दिल्ली में रुके। उन्होंने तीन क्षेत्रों में अपने सहयोग का प्रस्ताव किया—भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष, भूमि सुधार और ग्रामीण-विकास में। इन्दिरा गांधी ने कोई उत्साह नहीं दिखाया। जे० पी० के बारे में वे हमेशा संदिग्ध रहीं और, ऐसा लगता है कि उन्होंने यह सोच रखा था कि यह बूढ़ा आदमी अब किसी काम का नहीं है, इससे न तो कोई मदद मिल सकती है और न यह कोई नुक़सान पहुँचा सकता है। अपने व्यवहार में इन्दिरा गांधी काफ़ी ठीक-ठाक ही रहीं, लेकिन जे० पी० को लगा, जैसे उनकी कुछ उपेक्षा हुई है।

बिहार आंदोलन में जब वह कूदे तो ऐसा नहीं था कि उनका इरादा इन्दिरा गांधी से मुठभेड़ करने का हो, हालाँकि दूरदर्शी लोगों को दिखायी दे रहा था कि घटनाओं का रुख़ आसानी से मुठभेड़ की ओर मुड़ सकता है। आंदोलन के प्रारंभिक दिनों में जे० पी० को यह उम्मीद थी कि इन्दिरा गांधी की पार्टी के अंदर से ही इतना सशक्त दबाव उन पर पड़ेगा कि वह सही दिशा में काम करने लगेंगी। शायद उन्होंने उस समय तक यह महसूस नहीं किया था कि कांग्रेस-जन का मनोबल किस क़दर टूट चुका था। बहुत कम लोग ऐसे थे जिनके अंदर यह साहस था कि वे उस निरंकुश महिला के सामने खड़े हो सकें। चन्द्रशेखर एक ऐसे व्यक्ति साबित हुए जिन्होंने जे० पी० और इन्दिरा के बीच बातचीत शुरू किये जाने की ज़रूरत पर लगातार ज़ोर दिया, लेकिन इससे तिहाड़ की यात्रा का ही उनका टिकट पक्का हो सका। लगभग अंत तक जे० पी० ने यह सतर्कता बरती कि इन्दिरा गांधी को अपने क़दम पीछे हटाने का मौक़ा रहे। लेकिन वह इतनी अहंकारी थीं कि कभी पीछे हटने का नाम नहीं लिया। इन्दिरा गांधी के अंदर पल रही नफ़रत को भड़काने में लगे थे कांग्रेस के अंदर व बाहर के कम्युनिस्ट, जो लगातार 'फ़ासिस्ट ख़तरे' को कुचलने की बात करते रहे।

जे० पी० के आंदोलन को यदि किसी ने तेज़ किया तो वह इन्दिरा गांधी ही थीं। आंदोलन के एकदम शुरू के दिनों में भुवनेश्वर में एक भाषण के दौरान उन्होंने बिना किसी का नाम लिये जयप्रकाश नारायण पर ज़बर्दस्त प्रहार किये और कहा कि जो लोग भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ लड़ाई छेड़ने की बात करते हैं वे ख़ुद भ्रष्ट व्यापारियों के अतिथि बनकर रहते हैं। हालाँकि बाद में उन्होंने कहा कि उनका मतलब जे० पी० से नहीं था और इस तरह अपने वक्तव्य से मुकरने की कोशिश की, लेकिन दोनों के बीच सम्बन्ध अब काफ़ी ख़राब हो चुके थे। इन्दिरा गांधी के साथ दूसरी मुलाक़ात के बाद जे० पी० के सम्बन्ध पूरी तरह टूट गये—इस मुलाक़ात में इन्दिरा गांधी ने सत्ता के मद का परिचय दिया और यह दिखाने की कोशिश की गोया जे० पी० किसी व्यक्तिगत रिआयत के लिए उनके पास गये हों। बिहार विधान-सभा को भंग करने की जे० पी० की माँग को उन्होंने बड़ी बेरुख़ी से नामंज़ूर कर दिया। लड़ाई की मोर्चे-बंदी अब पूरी हो गयी थी।

पटना वापस पहुँचते ही जयप्रकाश नारायण ने एलान किया, "हमें एक बहुत लम्बी और कठिन लड़ाई लड़नी है।" आंदोलन बिना किसी उल्लेखनीय प्रगति के सात महीनों से घिसट रहा था। जे० पी० को शायद यह उम्मीद थी कि गुजरात के आंदोलन की तरह यहाँ भी जल्दी ही नतीजे सामने आ जायेंगे। ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन ठीक उस समय जब आंदोलन की आग लगभग बुझने लगी थी, सरकार ने उसमें घी डाल दिया। 4 नवंबर 1974 को जनता और पुलिस के

बीच तीन घंटे तक संघर्ष होता रहा और इससे भी बड़ी बात यह हुई कि जे० पी० के कंधों पर पुलिस की हलकी लाठी पड़ गयी। इससे आंदोलन की आग एक बार फिर तेज़ हो गयी। लेकिन उसके बाद?

"मुझे कोई जल्दी नहीं है," जे० पी० ने कुछ ही दिनों बाद पटना की एक आम सभा में कहा, "हमारी लड़ाई का फ़ैसला अगले चुनाव में हो जायेगा। मैं प्रधानमंत्री की चुनौती को स्वीकार करता हूँ। चुनाव में मैं ख़ुद उम्मीदवार नहीं रहूँगा, लेकिन मैं इस लड़ाई का नेतृत्व करूँगा और इस बार लड़ाई में केवल दो पक्ष होंगे—एक तरफ़ कांग्रेस और सी० पी० आई० तथा दूसरी तरफ़ अन्य सभी दल।"

'अन्य सभी दलों' ने 'एक पक्ष' बन जाने का कोई संकेत नहीं दिया था। शुरू में जे० पी० स्वयं विरोधी पार्टियों के बारे में संदेह रखते थे। आंदोलन का नेतृत्व स्वीकार करने से पूर्व उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि छात्र संघर्ष समिति के सदस्यों को अपने मूल राजनीतिक दलों से संबंध तोड़ लेने चाहिए। वह यह भी नहीं चाहते थे कि विरोधी पार्टियाँ आंदोलन में हिस्सा लें, लेकिन संघर्ष की रण-नीतिक ज़रूरतों को देखते हुए वह मजबूर थे—पार्टियों के संगठनात्मक समर्थन के बिना वह कुछ नहीं कर सकते थे। जन संघ ख़ास तौर से आंदोलन में पूरी ताक़त के साथ कूद पड़ा था। चाहे नुक्कड़ों पर भूख-हड़ताल करनी हो, चाहे विधान-सभा के बाहर धरना देना हो—सभी के लिए अधिकतर कार्यकर्ता आर० एस० एस० ही जुटाता था। आंदोलन शुरू होने के फ़ौरन बाद ही इसका संगठन लगभग पूरी तरह नानाजी देशमुख के हाथ में चला गया। संगठन कांग्रेस और सोशलिस्ट भी आंदोलन में शामिल हो गये थे। विरोधी दलों को संघर्ष से जितना ही बाहर रखने के लिए जे० पी० प्रयत्नशील थे, उतना ही यह आंदोलन विरोधी दलों के लिए विरोधी दलों द्वारा संचालित, विरोधी दलों का आंदोलन बन गया। दल-विहीन जनतंत्र और 'संपूर्ण क्रांति' के इस मसीहा ने आंदोलन को अपनी मौजूदगी से वह सम्मान प्रदान कर दिया जो अन्यथा उसे न मिलता।

जे० पी० की चिढ़ और नाराज़गी भी समय-समय पर सामने आने लगी। वाराणसी में एक भाषण के दौरान उन्होंने कहा, "जन संघ के लिए यह तभी संपूर्ण क्रांति होगी जब श्री एल० के० आडवाणी या श्री अटलबिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री बना दिया जाये और यदि श्री चरणसिंह का सत्ता पर क़ब्ज़ा हो जाये तो बी० एल० डी० के लिए भी यह संपूर्ण क्रांति बन जायेगी...।" जन संघ के नेता इस तरह की टिप्पणियों पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने में हमेशा सतर्क रहते थे, लेकिन चरणसिंह तुरंत भड़क उठते थे।

सच्चाई यह थी कि जे० पी० ने उनकी दुखती रग को दबा दिया था। चरणसिंह ने कभी किसी ऐसे प्रदर्शन या आंदोलन में दिलचस्पी नहीं ली जिससे उनका मतलब न पूरा होता हो। वे किसी ऐसी पार्टी के गठन के भी इच्छुक नहीं थे जिसके मुखिया वे ख़ुद न बन सकें। जे० पी० का आंदोलन भी पूरी तरह उनके गले नहीं उतर सका। एक बार तो ऐसा भी हुआ कि उन्होंने आंदोलन वापस लेने की सलाह देते हुए जे० पी० को पत्र लिखा। ज़िंदगी-भर घटिया क़िस्म की क़स्बाई राजनीति के अभ्यस्त चरणसिंह को जे० पी० के 'ऊँचे विचारों' में कोई दिलचस्पी नहीं थी। जे० पी० ने जब राजनीति में फँसे बग़ैर वर्तमान व्यवस्था में बुनियादी परिवर्तन की बातें कीं तो चरणसिंह समझ ही नहीं सके। 'संपूर्ण क्रांति' के बारे में जे० पी० के विचार उन्हें एकदम बकवास लगते थे।

जे० पी० की योजनाओं में यदि चरणसिंह को अपने हित की बात दिखायी देती तो शायद वह एक दूसरा ही नज़रिया अपनाते। लखनऊ में अपनी पार्टी की एक बैठक में चरणसिंह ने कहा कि जे० पी० के आंदोलन के साथ वह सहयोग कर सकते हैं बशर्ते इससे "पार्टी के हितों को कोई चोट न पहुँचे।" चरणसिंह और उनकी राजनीति को जो लोग जानते हैं उनके लिए इस वाक्य का एक ही अर्थ था—वह जे० पी० के आंदोलन को सही मान लेंगे यदि आंदोलन सफल होने पर ताज उन्हें पहनने का मौक़ा दिया जाये।

1974 के चुनाव में ज़बर्दस्त नाकामयाबी के बाद चरणसिंह ने एक बार फिर विभिन्न दलों के ज़्यादा मज़बूत और बड़े गँठबंधन के विषय में सोचना शुरू कर दिया था। अपने दोस्त बीजू पटनायक और बलराज मधोक के साथ उन्होंने एक नयी पार्टी के गठन के बारे में बातचीत शुरू कर दी थी। पीलू मोदी उस समय गुजरात में थे। जब उन्हें पता चला कि चरणसिंह, बीजू पटनायक और कुछ अन्य नेता दिल्ली में इकट्ठे हुए हैं, मोदी फ़ौरन गुजरात से दिल्ली के लिए रवाना हुए, ताकि बातचीत में हिस्सा ले सकें। इस बैठक में मोटे तौर पर यह फ़ैसला किया गया कि इन पार्टियों के विलय की कोशिश की जाये। इस बैठक के फलस्वरूप भारतीय लोक दल का जन्म हुआ जो भारतीय क्रांति दल, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, स्वतंत्र पार्टी, उत्कल कांग्रेस तथा तीन अन्य छोटे-मोटे गुटों के विलय से बनी थी। यह नयी पार्टी किसी भी अर्थ में राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस का विकल्प नहीं हो सकती थी। इसका प्रभाव-क्षेत्र कमोबेश उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और हरियाणा के कुछ इलाक़ों तक सीमित था। भारतीय क्रांति दल की तरह यह भी एक व्यक्ति के इर्द-गिर्द टिकी पार्टी थी। हालांकि 29 अगस्त 1974 को इसका विधिवत गठन कर दिया गया था, फिर भी इमरजेंसी की घोषणा होने तक पार्टी-सदस्यों की सूची नहीं तैयार की गयी थी। इसकी सारी समितियाँ तदर्थ-समिति के रूप में काम कर रही थीं।

मई 1975 में गुजरात में हुए चुनाव में विरोधी दलों के बीच केवल एक बात पर सहमति हो सकी थी और वह थी मोर्चा बनाने की बात। मोरारजी देसाई का रुतबा कुछ बढ़ गया था, क्योंकि उनके अनशन से मजबूर होकर इन्दिरा गांधी ने गुजरात में चुनाव कराने का आदेश जारी किया था। उनकी आवाज़ में थोड़े अधिकार की बू आने लगी थी। गुजरात में चुनाव-संबंधी बातचीत से जे० पी० को हमेशा अलग रखा गया। इससे वह इतने दुखी थे कि सिर्फ़ चुनाव-प्रचार के अंतिम दिनों में वह थोड़ी देर के लिए अहमदाबाद गये। वहीं पहली बार उन्होंने मोर्चों के बजाय 'एक पार्टी' का विचार लोगों के सामने रखा।

जिस दिन इलाहाबाद हाईकोर्ट का फ़ैसला आया उसी दिन गुजरात के चुनाव-परिणाम भी आने लगे थे। विपक्षी नेताओं को नये सिरे से कुछ उम्मीद होने लगी थी। इन्दिरा गांधी से इस्तीफ़े की माँग का उनका अभियान तेज़ हो गया था और साथ ही उसी दिन चार प्रमुख विरोधी दलों—बी० एल० डी०, संगठन कांग्रेस, जन संघ और सोशलिस्ट पार्टी—की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की संयुक्त बैठक नयी दिल्ली में वाई० एम० सी० ए० में शुरू हुई, जो कई दिनों तक चली। चरणसिंह ने एक नयी पार्टी बनाने के लिए ज़ोरदार वकालत की। उनका दिमाग़ अनेक दिशाओं में काम कर रहा था। उन्होंने विरोधी नेताओं के प्रस्तावित धरने की भी आलोचना की थी और आकाशवाणी से एक प्रसारण में उन्होंने कहा था कि वैधानिक तौर पर इन्दिरा गांधी इस्तीफ़ा देने के लिए बाध्य नहीं हैं।

उन्होंने हमेशा यह एहतियात वरता था कि कभी भी कोई रास्ता अख्तियार कर सकें।

चरणसिंह की दलीलों से दूसरी कोई विरोधी पार्टी सहमत नहीं हुई। मोरारजी देसाई ने कहा कि वह गुजरात-जैसे मोर्चे के पक्ष में हैं। जन संघ ने दल के विघटन के प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। यदि बहुत हुआ तो वह एक संघीय ढाँचे में शामिल हो सकता है। उग्र मज़दूर नेता और सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष जॉर्ज फ़र्नांडीज़ ने ज़ोरदार शब्दों में अपना फ़ैसला सुना दिया—"विभिन्न विचार-धाराओं का आपस में विलय नहीं हो सकता।"

कुछ ही दिनों वाद इन्दिरा गांधी ने इन दलों पर हमला वोल दिया।

21 जुलाई 1975 को जे० पी० ने अपनी जेल डायरी में लिखा—"मेरी दुनिया के खण्डहर मेरे चारों ओर पड़े हैं।" उनके सारे अनुमान ग़लत साबित हो गये थे। अंत तक इन्दिरा गांधी के बारे में उनका भ्रम बना रहा। वह इन्दिरा गांधी को ऐसा नहीं समझते थे जैसी वह साबित हुईं। अगर उन्हें पहले पता चल गया होता तो वे दूसरे ढंग से काम करते। इंग्लैंड से प्रकाशित एक पत्रिका से भेंट में जे० पी० ने बताया, "मैं कभी यह सोच नहीं सकता था कि इतनी आसानी से देश का जनतंत्र तानाशाही में तवदील हो सकता है। यदि मुझे इसका तनिक भी अंदाज़ा होता और अगर मैं इस ख़तरे को पहले भाँप पाता तो निश्चय ही मैं और अधिक सोच-विचार कर आंदोलन का नेतृत्व करने की कोशिश करता, कोई और तरीक़ा ढूँढ़ने की ओर ध्यान देता। मेरा ख़याल है कि तब मैं सीधी कार्रवाई की वजाय राजनीतिक कार्रवाई और जनतांत्रिक कार्रवाई पर अपनी शक्ति केन्द्रित करता... मैं ख़ुद किसी पार्टी में शामिल नहीं होता, लेकिन चुनाव पर और चुनाव की तैयारी के लिए विरोधी दलों को एकजुट करने पर ज़्यादा ध्यान देता। मैं इस बात की निगरानी रखता कि किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र में विपक्ष से केवल एक उम्मीदवार खड़ा हो। थोड़े में कहें तो, मैं इस तरह की राजनीति पर ज़्यादा ध्यान देता और इस पर ही ज़ोर देता...।"[10]

क्या यह चरणसिंह की राजनीति की जीत नहीं होती?

जेल में भी चरणसिंह इसी दिशा में सोच रहे थे। उन्होंने विभिन्न राजनीतिक दलों के बंदियों की बैठकों की अध्यक्षता की और जेल-जीवन के सामूहिक कष्ट के दौरान ऐसा लगा कि विपक्ष के रूप में महज़ एक पार्टी की ज़रूरत पर अब ज़्यादा लोग सहमत थे। लेकिन कुछ ही महीनों के अंदर इन्दिरा गांधी के साथ समझौते के लिए चोरी-छिपे कोशिशें भी चलने लगीं। अशोक मेहता, एच० एम० पटेल तथा कई अनेक विरोधी नेताओं ने प्रधानमंत्री को जी-हज़ूरी-भरे ख़त भेजने शुरू कर दिये। मार्च 1976 में जब अचानक चरणसिंह को रिहा किया गया तो सबको थोड़ी हैरानी हुई। उस समय बहुत कम लोगों को यह पता था कि वीजू पटनायक अपने परम मित्र मोहम्मद यूनुस से, जो प्रधानमंत्री के विशेष दूत थे, तथा ओम मेहता से, जो एक तरह से असली गृह-मंत्री थे, बराबर सम्पर्क बनाये हुए थे। इससे पहले चरणसिंह के एक सिपहसालार को पैरोल पर रिहा करके तिहाड़ जेल भेजा गया था, ताकि वह पता लगा सके कि चरणसिंह आजकल क्या सोच रहे हैं और यदि मुमकिन हो तो उन्हें सरकार की ओर मिलाने की कोशिश करे।

अपनी रिहाई के फ़ौरन बाद चरणसिंह ने उत्तर प्रदेश विधान-सभा में एक ज़ोरदार भाषण दिया जिसमें इमरजेंसी का विरोध किया। लेकिन इसके साथ ही

उन्होंने भारतीय लोक दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की एक बैठक बुलायी जिसमें फ़ैसला किया गया कि वह "जनमत को शिक्षित करे और लोक संघर्ष समिति से अपने को अलग कर ले।"

जेल में कुछ ही महीने गुज़ारने के बाद जयप्रकाश नारायण महसूस करने लगे थे कि "डूबती हुई नाव को छोड़कर चूहे भागने लगे हैं।"[11] लेकिन उन्होंने आशा नहीं छोड़ी थी।

26 मई 1976 को बंबई में जयप्रकाश ने भारतीय लोक दल, संगठन कांग्रेस, जन संघ और सोशलिस्ट पार्टी को लेकर एक नयी राष्ट्रीय पार्टी का ऐलान किया। यह घोषणा की गयी कि जून 1976 के अंतिम हफ़्ते में बंबई में विरोधी दलों के एक सम्मेलन के अवसर पर नयी पार्टी के गठन का बाक़ायदा एलान किया जायेगा।

यह ज़ाहिर था कि घोषणा का मक़सद विरोधी दलों पर विलय के पक्ष में मनोवैज्ञानिक असर डालना था। जे० पी० से एस०एम० जोशी तथा अन्य नेताओं ने कहा था कि अगर उन्होंने एक बार किसी नयी पार्टी की घोषणा कर दी तो विरोधी नेताओं के लिए बच निकलना मुश्किल होगा। कुछ भी हो, वे जे० पी० की अंतिम इच्छा की अवहेलना नहीं कर सकेंगे। जब वे देखेंगे कि एक पार्टी बन ही गयी है तो उनके लिए इसमें शामिल होने से इंकार करना मुश्किल हो जायेगा।

दरअसल वे अपने ढुलमुल दोस्तों को पहचान नहीं सके थे। नयी पार्टी की घोषणा से सबसे पहले चरणसिंह चौकन्ने हुए। यह नयी पार्टी क्या चीज़ है? क्या यह चारों पार्टियों के अलावा एक पाँचवीं पार्टी है? 30 मई 1976 को भारतीय लोक दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की बैठक बुलायी गयी, ताकि जे० पी० की घोषणा पर विचार किया जा सके। बैठक में एक प्रस्ताव पास हुआ जिसमें कहा गया था कि भारतीय लोक दल की कार्यकारिणी जे० पी० के विचार का स्वागत करती है, पर साथ ही "जिस ढंग से नयी पार्टी बनाने की कोशिश की गयी है उस पर चिंता व्यक्त करती है।"

बात यह हुई कि जे० पी० के कुछ नज़दीकी लोगों से अनजाने में ही यह ख़बर निकल गयी कि प्रस्तावित नयी पार्टी का अध्यक्ष एस० एम० जोशी को बनाया जायेगा और चरणसिंह के नाम पर विचार नहीं हुआ।

नयी पार्टी की घोषणा किये जाने से कुछ ही दिनों पहले चरणसिंह ने जे० पी० से भेंट की थी और बहुत गुस्से में वापस आये थे। उन्होंने जे० पी० के नाम एक ख़त लिखा—"22 मई, 1976 को बातचीत के दौरान आपकी कही गयी बात मुझे अच्छी तरह याद है। आपने कहा था कि मैं एक नयी पार्टी के गठन के लिए इसलिए इतना उत्सुक हूँ कि मैं उसका नेता बनना चाहता हूँ।" पत्र के अंत में अपने हस्ताक्षर से पूर्व उन्होंने एक पंक्ति लिखी थी—"दुख से बोझिल।"

जे० पी० की 'इकतरफ़ा घोषणा' से भड़क कर भारतीय लोक दल ने अब एक नया पैंतरा लिया कि सबसे पहले नयी पार्टी की नीति के बारे में चारों दलों की सहमति ज़रूरी है; और दूसरे, नयी पार्टी के उद्घाटन से पूर्व वर्तमान पार्टियों का विघटन हो जाना चाहिए। विलय के प्रस्ताव को खटाई में डालने के लिए इन दोनों में से कोई भी एक शर्त ही काफ़ी थी।

और बात खटाई में पड़ गयी। 8 जुलाई 1976 को एक बार फिर चारों विरोधी दलों की दिल्ली में बैठक हुई। यहाँ चरणसिंह ने राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का मसला उठाया। उन्होंने कहा कि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि आर० एस०

एस॰ के किसी भी स्वयं-सेवक को नयी पार्टी में नहीं आने दिया जाना चाहिए और नयी पार्टी के किसी भी सदस्य का आर॰ एस॰ एस॰ से संबंध नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो इसे 'दोहरी सदस्यता' माना जायेगा और इस बात की इजाज़त नहीं दी जा सकती।

8 अक्तूबर 1976 को भारतीय लोक दल और संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष श्री अशोक मेहता के बीच एक समझौता हुआ, जिसके अनुसार यह तय हुआ कि दोनों पार्टियों का विलय करके 'जनता कांग्रेस' के नाम से एक पार्टी बनायी जायेगी, उसका संविधान संगठन कांग्रेस का रहेगा और उसका अध्यक्ष चौधरी चरणसिंह को बनाया जायेगा। लेकिन अशोक मेहता के प्रस्ताव का सी॰ बी॰ गुप्ता और पश्चिम बंगाल के पी॰ सी॰ सेन ने डटकर विरोध किया। अगले महीने फिर बी॰ एल॰ डी॰ के नेताओं और अशोक मेहता के बीच पत्राचार हुआ। संगठन कांग्रेस ने अब यह रवैया अख्तियार किया कि वह किसी नयी पार्टी के गठन के लिए अपना अस्तित्व समाप्त नहीं करेगी। उसका पुराना इतिहास है, जिसके पीछे एक परम्परा है, साथ ही देश-भर में इसकी काफ़ी संपत्ति पड़ी हुई है। संगठन कांग्रेस इन चीज़ों से हाथ धोने की स्थिति में नहीं थी। क्या बी॰ एल॰ डी॰ के लिए यह ज़्यादा आसान नहीं होगा कि वह अपने को भंग कर दे और संगठन कांग्रेस के साथ मिल जाये? यह प्रस्ताव कहीं चौधरी चरणसिंह के सामने रखने लायक था!

जयप्रकाश नारायण को इन बातों से बहुत क्षोभ हुआ और 14 नवंबर 1976 को उन्होंने कुछ विरोधी नेताओं से कहा, "मैं विलय के काम से अपने को अलग ही रखना चाहता हूँ।"

प्रसंगवश, भारतीय लोक दल की राष्ट्रीय कार्यकारिणी को बताया गया कि जन संघ के नेता ओ॰ पी॰ त्यागी ने जे॰ पी॰ के सचिव सच्चिदानंद से कहा था कि उनकी पार्टी कभी भी चरणसिंह को नये दल का नेता नहीं स्वीकार करेगी।

तब तक चरणसिंह के दो दूत—ब्रह्मदत्त और सतपाल मलिक ने इन्दिरा गांधी से बातचीत कर ली थी। नाटे क़द के ब्रह्मदत्त देहरादून के रहने वाले हैं। वे पहले एम॰ एन॰ राय के समर्थक थे और बाद में सोशलिस्ट पार्टी से होते हुए बी॰ के॰ डी॰ और बी॰ एल॰ डी॰ तक पहुँचे थे। कुछ समय तक उन्होंने चरणसिंह की पत्रिका नव-क्रांति में काम किया था और वहीं से पार्टी के एक नेता ने उन्हें भारतीय लोक दल की राष्ट्रीय कार्य-समिति का सदस्य बना दिया। उत्तर प्रदेश विधान-परिषद में वह विपक्ष के नेता भी रह चुके थे। 31-वर्षीय सतपाल मलिक मेरठ के एक सुसंस्कृत और मृदुभाषी जाट हैं, जो समाजवादी युवजन सभा से होते हुए चरणसिंह तक पहुँचे थे। मलिक मेरठ विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष रह चुके थे और 1974 में भारतीय क्रांति दल के टिकट पर उत्तर प्रदेश विधान-सभा का चुनाव भी उन्होंने जीता था। चरणसिंह ने उन्हें अपने निर्वाचन-क्षेत्र छपरौली के बग़ल वाला निर्वाचन-क्षेत्र बागपत सौंपा था। मलिक चरणसिंह के प्रति अंधी निष्ठा रखते थे और जल्दी ही पार्टी के अखिल भारतीय मंत्री बना दिये गये थे।

इमरजेंसी की घोषणा के बाद सतपाल मलिक भूमिगत हो गये और जन संघ के नेता नानाजी देशमुख से उनकी कई मुलाक़ातें हुईं। देशमुख उभी न दिनों छिपकर रह रहे थे। मलिक उनसे विचार-विमर्श करके कोई कार्य-पद्धति तय करने के लिए उत्सुक थे। लेकिन जब दरियागंज के एक मकान में नानाजी से उनकी

मुलाक़ात हुई तो उन्होंने महसूस किया कि जन संघ के इस नेता की चिंता आर० एस० एस० के कल्याण तक ही सीमित है। उसी दिन से मलिक ने तय कर लिया कि जन संघ के साथ किसी भी तरह का ताल-मेल संभव नहीं है।

नवंबर 1975 में मलिक ने मेरठ के पास गढ़मुक्तेश्वर में सत्याग्रह करके अपने को गिरफ़्तार करा दिया। उन्हें फ़तेहगढ़ जेल भेज दिया गया। वहाँ उनकी संघ-विरोधी और आर० एस० एस०-विरोधी भावनाओं को और भी बल मिला। उन्होंने देखा कि आर० एस० एस० के लोग दूसरों के साथ खाना तक नहीं खाते।

एक रात आर० एस० एस० के एक बंदी के तकिये के नीचे मलिक को कुछ पत्र मिले जो आर० एस० एस० के सरसंघचालक बालासाहब देवरस ने इन्दिरा गांधी को लिखे थे, जिनमें उन्होंने सरकार को अपनी अनुशासन-बद्ध सेना (आर० एस० एस०) का सहयोग प्रदान करने का वायदा किया था। बाद में मलिक को तिहाड़ जेल भेज दिया गया। कहा जाता है कि ओम मेहता के इशारे पर ऐसा किया गया था, ताकि वह वहाँ जाकर यह पता करें कि चरणसिंह इन दिनों क्या सोच रहे हैं।

तिहाड़ में सतपाल मलिक ने देवरस की चिट्ठियाँ चरणसिंह को दीं। उन्होंने इन्दिरा गांधी के साथ समझौते की संभावना पर भी अपने नेता से विचार-विमर्श किया। मलिक को पैरोल पर रिहा कर दिया गया। ब्रह्मदत्त दूसरी जेल में थे, उन्हें भी पैरोल पर रिहा कर दिया गया।

ओम मेहता ने चरणसिंह के इन दोनों दूतों से प्रधानमंत्री की मुलाक़ात का इंतज़ाम किया। 4 नवंबर 1976 को यह मुलाक़ात हुई। दोनों लोगों को यह महसूस हुआ कि इन्दिरा गांधी अपनी स्थिति को वैधानिक बनाने के लिए चिंतित हैं और यदि ऐसे मौक़े पर चरणसिंह ने उनकी मदद कर दी तो वे खुश होंगी। मलिक और दत्त ने इन्दिरा गांधी को बताया कि उनके और चरणसिंह के मिल जाने का समय आ गया है। इस पर इन्दिरा गांधी का जवाब था—"वही हमेशा हाथ पीछे करते हैं।"

कांग्रेस के साथ भारतीय लोक दल के विलय की संभावनाओं पर बातचीत करते हुए दोनों दूतों ने प्रस्ताव रखा कि मंत्रिमंडल में चौधरी साहब को दूसरे नम्बर पर रखने की बात करनी चाहिए। यदि ऐसा हुआ और उन्हें गृह-मंत्रालय दिया गया तो सारी चीज़ें एकदम ठीक हो जायेंगी। चौधरी के पक्ष में दलील देते हुए उन्होंने कहा कि चरणसिंह खुद ही बहुत अनुशासन-प्रिय हैं। इन्दिरा गांधी को उन्होंने याद दिलाया कि चरणसिंह ने जे० पी० से अपना आंदोलन वापस लेने के लिए कहा था। उन्होंने हमेशा जे० पी० के आंदोलनात्मक रवैये को नामंज़ूर किया है।

इन्दिरा गांधी ने इन बातों को ध्यान से सुना, लेकिन किसी तरह का आश्वासन नहीं दिया।

इसके एक ही महीने बाद बीजू पटनायक ने, चरणसिंह तथा इंदिरा के दो आदमियों—मोहम्मद यूनुस और ओम मेहता के बीच बातचीत का इंतज़ाम किया। उन्हीं दिनों बीजू पटनायक ने ओम मेहता को एक चिट्ठी लिखी थी जो 'माई डियर ओम' वाली चिट्ठी के नाम से मशहूर है। बातचीत के हर स्तर पर जो लोग सक्रिय थे उनके अनुसार इस मुलाक़ात का उद्देश्य 'चरणसिंह—इन्दिरा धुरी' क़ायम करना था।

लोक-सभा के चुनावों की घोषणा से महज़ दस दिन पूर्व, 8 जनवरी 1977 को चरणसिंह ने इन्दिरा गांधी के नाम एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने बताया था कि वे इन्दिरा के प्रति कितने वफ़ादार रहे हैं और इन्दिरा गांधी ने बिना किसी कसूर के इनको हमेशा ग़लत समझा।

उन्होंने लिखा—"आपको याद होगा कि 3 जनवरी 1968 को आपको वाराणसी में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करनी थी। उस समय संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का काफ़ी मज़बूत संगठन था। उसकी स्थानीय इकाई ने आपको गिरफ़्तार करने तथा आपके ऊपर मुक़दमा चलाने के लिए आपको जन-अदालत में पेश करने का फ़ैसला किया था। उन लोगों ने अपने इस इरादे को एक सार्वजनिक सभा में और प्रेस-वक्तव्यों में ज़ाहिर कर दिया था। हालांकि उस समय संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी मेरी सरकार में शामिल थी और विधान-सभा में उसके सदस्यों की संख्या 45 थी और हालांकि मैं एक ग़ैर-कांग्रेसी सरकार का नेता था, फिर भी मैंने आपकी वाराणसी-यात्रा के लिए विशेष दिलचस्पी लेकर इंतज़ाम कराये तथा वाराणसी तक आपके साथ गया। मेरे आदेशों से संसद-सदस्य श्री राजनारायण तथा संसोपा के अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ता और विधायक जेल में डाल दिये गये। विज्ञान कांग्रेस में आपके भाषण के समय वहाँ एक विशाल प्रदर्शन आपके विरुद्ध होने वाला था। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों को पण्डाल तक पहुँचने से रोक दिया और तितर-बितर कर दिया ...।

"संसोपा के लोग बहुत गुस्से में थे। मैं शुरू से ही जानता था कि मैं जो कुछ करने जा रहा हूँ उसका क्या नतीजा होगा ? और 17 फ़रवरी को विधान-सभा का अधिवेशन शुरू होने से एक दिन पहले ही मैंने इस्तीफ़ा दे दिया—कांग्रेस से मैंने इसलिए इस्तीफ़ा दिया था, क्योंकि आपने सही काम करने में या सही काम करवाने में असफलता का परिचय दिया था। लेकिन आपके लिए एक सही काम करने की वजह से मुझे मुख्यमंत्री-पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा...।"

इन्दिरा गांधी के साथ हाथ मिलाने की होड़ में आर० एस० एस० के सर्वेसर्वा बालासाहब देवरस अकेले ही नहीं थे !

नवम्बर 1975 में जे० पी० को जसलोक अस्पताल पहुँचाया गया। वह अब मौत की कगार पर खड़े थे। उनके गुर्दों ने काम करना बंद कर दिया था और किसी को पता नहीं था कि उनकी ज़िन्दगी अब कितने दिन और चलेगी। जे० पी० इमरजेंसी के बारे में अपने दृष्टिकोण को साफ़-साफ़ और बिना किसी लाग-लपेट के व्यक्त करना चाहते थे ताकि उनकी मृत्यु के बाद कोई उनके विचारों को ग़लत ढंग से पेश न कर सके। यह इतिहास में अपने स्थान के बारे में उनकी चिंता का प्रमाण था—यह चिंता हमेशा उनके साथ लगी रही।

उनके दोस्त मीनू मसानी ने "अंतिम वसीयतनामा" का मसौदा तैयार किया। बम्बई के प्रमुख वकील सोली सोराबजी एक लेख्य-प्रमाणक के साथ अपने क्लर्क, रजिस्टर और अपनी मोहर लेकर आये तथा उन्होंने मसौदे को औपचारिक रूप दिया। 5 दिसम्बर 1975 को लिखे गये इस दस्तावेज़ में कहा गया था, "अगर मैं इस दुनिया से हटा दिया गया तो देश और विदेश के अपने मित्रों को और विशेष रूप से भारतीय जनता को मैं यह बताना चाहूँगा कि भारत की स्थिति के बारे में मेरे विचार आज भी बिलकुल वही हैं जो 25 जून 1975 को थे और जो जुलाई 1975 में मैंने प्रधानमंत्री को अपने पत्र में लिखे थे। दरअसल उस समय से आज तक जितनी

भी अशोभनीय घटनाएँ हुई हैं उनसे मेरी आशंकाओं को ही बल मिला है...मैं उम्मीद करता हूँ कि भारत की जनता अपने को वर्तमान अत्याचारी शासन से अहिंसात्मक ढंग से मुक्त करने में शीघ्र ही सफल होगी।"

लेकिन जे० पी० को अपनी आशाएँ फलीभूत होती और अपनी दुनिया को एक बार फिर बसा हुआ देखने के लिए अभी जीवित रहना था।

23 मार्च 1977 को जनता पार्टी का प्रधानमंत्री बनाने के लिए वह दिल्ली पहुँचे। उन्हें जनता पार्टी के गठन के लिए की गयी बैठक की अध्यक्षता किये ठीक दो महीने हुए थे। इन दो महीनों में देश की राजनीति का पूरी तरह कायाकल्प हो चुका था।

लोग साँस रोककर उस व्यक्ति का इंतज़ार कर रहे थे—उस बीमार और कमज़ोर व्यक्ति का, जिसने मौत के दरवाज़े से वापस आकर यह सब शुरू किया था। आज भी वह किसी पद पर नहीं था, फिर भी अचानक उसे इतनी शक्ति मिल गयी थी जितनी शायद दिल्ली की उस महारानी के पास भी कभी नहीं थी जिसकी अपनी खूबसूरत भौहों की महज़ एक शिकन से न जाने कितने ही मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों का वारा-न्यारा हो जाता था। सचमुच उस दिन जे०पी० 'लोकनायक' की गरिमा से युक्त लग रहे थे। अपनी व्हील-चेयर पर हवाई जहाज़ से जब वह नीचे आये तो ऐसा लगता था कि हर आदमी एक-दूसरे से यही सवाल कर रहा हो कि वह किसे प्रधानमंत्री बनायेंगे!

प्रधानमंत्री के चयन का काम जे० पी० के लिए भी आसान नहीं था। बिहार के आंदोलन के दिनों में उनके साथ हुई काफ़ी लम्बी बातचीत को याद किया जा सकता था। पटना-स्थित कदमकुआँ के अपने निवास-स्थान से दूर बसे एक क़स्बे की तरफ़ कार से जाते समय हर एक-दो मील पर लोगों की भीड़ उन्हें रोक लेती थी और वह थोड़ी देर ठहर कर कुछ-न-कुछ बातचीत कर लेते थे। तभी उनके सामने यह सवाल आया कि अगला प्रधानमंत्री कौन होगा? उस समय ऐसा लगा कि यह सवाल बहुत बेतुका है। लेकिन जे० पी० ने ऐसा महसूस नहीं किया। वह काफ़ी दूर तक की बात सोच रहे थे। उनके चेहरे पर अचानक तनाव आ गया। थोड़ा रुक-रुक कर उन्होंने कहा, "ढेर सारे लोग हैं जो प्रधानमंत्री के पद के लिए दावा करेंगे...मोरारजी भाई भी दावा करेंगे और चरणसिंह भी... वाजपेयी भी इस पद के दावेदार होंगे...मैं नहीं जानता कि क्या होगा...मुझे यह सोचते हुए भी डर लगता है।" जे० पी० का डर बहुत उचित था।

उस समय ज़ाहिर है कि जगजीवनराम चर्चा में कहीं नहीं थे। लड़ाई में वह दूसरी तरफ़ थे। लेकिन उनके न होने से भी ऐसा नहीं लगता था कि प्रधानमंत्री के चुनाव का काम आसान होगा।

और अब, जब फ़ैसले की घड़ी अचानक आ गयी थी, ऐसा लगता था कि यह काम और भी कठिन हो गया है। इंतज़ार करती हुई भीड़ अटकलें लगा रही थी। किसी ने कहा कि जे० पी० जगजीवनराम को ही प्रधानमंत्री बनायेंगे। चाहे जो हो, जगजीवनराम की ही वजह से इतनी बड़ी कामयाबी हासिल हो सकी है। लेकिन जे० पी० के एक घनिष्ठ सहयोगी नौजवान ने कहा कि "जे० पी० मोरारजी देसाई के पक्ष में हैं।" किसी ने सवाल किया—क्यों? और उसने जवाब दिया, "क्यों नहीं? 19 महीने तक जेल में कौन पड़ा रहा? मोरारजी या बाबूजी? कौन ज़्यादा बेदाग़ है।"

लोगों की धारणा थी कि जे० पी० जगजीवनराम को काफ़ी मानते हैं।

1942 में दोनों एक साथ हज़ारीबाग जेल में थे और बिहार-आंदोलन के दिनों में जगजीवनराम एक मात्र बुज़ुर्ग कांग्रेस-नेता थे जिनके बारे में समझा जाता था कि वह अंदर से जे० पी०के संघर्ष के प्रति सहानुभूति रखते हैं। हालाँकि उन्होंने सार्वजनिक भाषणों में आंदोलन की आलोचना की थी जिसका मक़सद स्पष्ट ही अपनी नेता इन्दिरा गांधी को खुश करना था, लेकिन औरों की तरह उन्होंने कभी जयप्रकाश नारायण के ख़िलाफ़ कुछ नहीं कहा। लेकिन वह भी इमरजेंसी की हवा में बह गये थे। और एक मौक़े पर जे० पी० ने अपनी जेल डायरी में लिखा है—ट्रिब्यून ने जगजीवनराम के भाषण को तीन कॉलमों की हेड-लाइन दी है, जिसमें उन्होंने बहुत ज़ोर देकर कहा है कि वे बीस-सूत्री कार्यक्रम को लागू करने के लिए प्रधानमंत्री का नेतृत्व बहुत ज़रूरी है। मुझे हैरानी हो रही है कि वफ़ादारी का इस ज़ोर-शोर से एलान करने की कौन-सी ज़रूरत आ गयी! क्या इसके पीछे कोई कारण छिपा है, या थोड़े-थोड़े समय बाद अपनी वफ़ादारी ज़ाहिर करने का ही यह सिलसिला है? यक़ीन नहीं होता कि जगजीवन बाबू जैसा आदमी इतने खुले ढंग से इस तरह की जी-हुज़ूरी करे! कितना पतन हो गया है!"

प्रधानमंत्री-पद के लिए जगजीवनराम अब एक प्रमुख दावेदार थे। 2 फ़रवरी 1977 को उनके कांग्रेस छोड़ने के बाद से ही सारे लोगों का ध्यान उनके निवास-स्थान, 6 कृष्ण मेनन मार्ग,पर केन्द्रित हो गया था। ऐसा लगता था कि प्रचार-साधनों ने भी मोरारजी के 5 डूप्लेक्स रोड को भुला दिया था। रोज़ाना चार बजे जगजीवनराम के यहाँ संवाददाता-सम्मेलन होता था, जिसमें दुनिया-भर के पत्रकार हिस्सा लेते थे। उस रोमहर्षक रविवार के बाद से तो जब शाम को आकाशवाणी ने श्रोताओं के मन-पसंद कार्यक्रम में अँग्रेज़ी गाने— "ब्यूटीफुल सण्डे, वी आर फ्री" (सुन्दर इतवार है, हम आज़ाद हैं)—का रिकार्ड दो बार बजाया, जगजीवनराम के यहाँ के पत्रकार-सम्मेलन ऐसे हो गये मानो कोई प्रधानमंत्री वहाँ बोल रहा हो। जगजीवनराम ने कुछ ऐसा ही आभास भी दिया। उनके बिगड़ने के बावजूद दो दिन तक लगातार एक विदेशी पत्रकार उनसे सवाल करता रहा कि क्या वह प्रधानमंत्री-पद के लिए दावा करेंगे? लेकिन उस पत्रकार की धुन के पक्केपन की दाद देनी चाहिए कि तीसरे दिन उसी प्रश्न के उत्तर में जगजीवनराम ने कह दिया, "जब कभी देश ने मेरे कंधे पर कोई ज़िम्मेदारी डालनी चाही है, ज़िंदगी में आज तक मैंने उसे टाला नहीं है।" वहाँ के वातावरण से कोई भी यह महसूस कर सकता था कि जगजीवनराम के समर्थकों ने यह पूरी तरह मान लिया है कि बाबूजी के कंधों पर देश की ज़िम्मेदारी डाल दी जायेगी। इसमें कोई शक नही कि वह तो ज़िम्मेदारी को लेने के लिए पूरी तरह तैयार थे।

इस ऐतिहासिक विजय में जगजीवनराम और कांग्रेस फ़ॉर डेमोक्रेसी (सी० एफ़० डी०) के उनके सहयोगियों ने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी उस पर कोई उँगली नहीं उठा सकता था। उनके टाइम-बम ने कांग्रेस को उठाकर अलग फेंक दिया था। इससे भी बड़ी बात यह थी कि उसने देश के मिजाज़ और माहौल में एक गुणात्मक तबदीली पैदा करदी थी। मार्टिन वुलकाट ने विस्फोट के दूसरे दिन गार्डियन में लिखा—"जनतंत्र एक धमाके के साथ वापस आ गया है।" एक ही क्षण में जनता का डर ग़ायब हो गया। एक साथ ही जनता की भावनाओं का का बाँध टूट गया। आज़ादी मिलने के समय ही लोगों ने ऐसे दृश्य देखे थे, उसके बाद कभी नहीं। अपने साथ जगजीवनराम व बहुगुणा हरिजनों को तो लाये ही, मुसलमानों को भी ले आये, और मतदाताओं के यही दो वर्ग अभी तक कांग्रेस का

सहारा बने हुए थे। राष्ट्रपति फ़खरुद्दीन अली अहमद के निधन से कांग्रेस को एक और झटका लगा। इन्दिरा गांधी की जो दुर्दशा हुई उसका वर्णन कलकत्ता के एक मतदाता ने बड़े दिलचस्प शब्दों में किया। उसने कहा कि फ़खरुद्दीन अली अहमद के निधन के बाद अब इन्दिरा गांधी 'राम और रहीम" दोनों को खो चुकी हैं।[12]

'राम' की भूमिका को सबने सराहा, लेकिन किसी ने यह नहीं सोचा था कि वह और उनके साथी इसकी क़ीमत चाहेंगे। कांग्रेस को विरोधी दलों की कमज़ोरी पता थी। चुनाव-अभियान में बराबर कांग्रेस विरोधी नेताओं को अपने नेता का एलान करने के लिए चुनौती देती रही। विरोधी लोग बड़ी चालाकी से इस सवाल को टालते रहे, लेकिन अब वे इसे नहीं टाल सकते थे।

अंतिम परिणाम आने के फ़ौरन बाद जनता पार्टी के प्रवक्ताओं ने संवाददाताओं से कहा कि इस खेल में अब चाल कांग्रेस फ़ॉर डेमोक्रेसी के हाथ में है। उसे पहले जनता पार्टी के साथ विलयन का फ़ैसला करना है, तभी वह साथ मिलकर नेता के चुनाव में भाग लेगी। जनता और सी० एफ़० डी० के लोगों ने एक झण्डे और एक चुनाव-चिह्न के तहत चुनाव लड़ा था और देश आस लगाये था कि दोनों कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करेंगे। सी० एफ़० डी० के रवैये पर टिप्पणी करने में जनता पार्टी के प्रवक्ता काफ़ी सतर्कता बरत रहे थे। जनता पार्टी को पूर्ण बहुमत मिल गया था और सी० एफ़० डी० की मदद के बग़ैर भी वह सरकार बना सकती थी। लेकिन वह ऐसा करना नहीं चाहती थी, क्योंकि उससे नयी सरकार की विश्वसनीयता पर आँच आती।

जे० पी० के पहुँचने के साथ ही घटनाओं का केंद्र-बिंदु गांधी पीस फ़ाउंडेशन के अहाते का वह छोटा-सा बँगला बन गया, जहाँ से 26 जून 1975 की भोर में जे० पी० को गिरफ़्तार किया गया था। उस शाम जे० पी० से मिलने जाने से पहले जगजीवनराम ने उन्हें एक खत लिखा कि दोनों पार्टियों में हुई बातचीत के अनुसार वह जनता पार्टी में सी० एफ़० डी० के विलय के लिए राज़ी हैं। उस समय तक जगजीवनराम को पूरा यक़ीन था कि उनको ही प्रधानमंत्री बनाया जायेगा।

यदि जनता और सी० एफ़० डी० के नव-निर्वाचित संसद-सदस्यों पर चुनाव छोड़ा गया होता तो जगजीवनराम को बहुमत मिल सकता था। जनता पार्टी के कुल 302 संसद-सदस्य थे (इनमें तीन निर्दलीय शामिल थे जिन्होंने बाद में जनता पार्टी की सदस्यता ले ली थी)। उनमें अलग-अलग दलों के सदस्यों की संख्या मोटे तौर पर इस प्रकार थी—जन संघ—93, बी० एल० डी०—71, संगठन कांग्रेस—51, सोशलिस्ट—28, चन्द्रशेखर-गुट—6, सी० एफ़० डी—28, असंबद्ध या क्षेत्रीय दल—25। बी० एल० डी० के पास कोई ठोस संख्या नहीं थी। उसके 71 सदस्यों में से लगभग 26 राजनारायण के और लगभग 14 बीजू पटनायक के समर्थक थे और शेष ऐसे लोग थे जो चौधरी चरणसिंह के प्रति पूरी तरह वफ़ादार थे।

चरणसिंह को जन संघ के नेताओं ने आश्वासन दे दिया था कि उन्हें "इन्दिरा गांधी बनाया जायेगा।" उन्होंने यह समझ लिया था कि जनता पार्टी में जितनी पार्टियाँ शामिल हैं उनमें जन संघ ही ऐसी है जो उनके लिए सबसे ज़्यादा उपयोगी साबित होगी। यदि वह जनसंघ से बनाये रहे तो ताज उनके सर पर ही रखा जायेगा। लेकिन वह देख रहे थे कि सतपाल मलिक और ब्रह्मदत्त नामक उनके

दोनों सिपहसालार बेहद वफ़ादार होने के बावजूद जन संघ के साथ उनके संबंधों में रोड़ा रहेंगे। मलिक ने ही देवरस की चिट्ठियों को जेल से उड़ाया था, जिसके लिए आर० एस० एस० उन्हें कभी माफ़ नहीं कर सकता था। इसके अलावा चरणसिंह के दूत बनकर वे दोनों इन्दिरा गांधी से भी मिल चुके थे और दोनों पक्षों के बीच चल रही गुपचुप बातचीत का उन्हें अंदर से पता था। थोड़े में कहें तो उन्हें ज़रूरत से ज़्यादा जानकारी थी और वे आसानी के साथ जन संघ और चरणसिंह के दरमियान बन रहे संबंधों को मटियामेट कर सकते थे। चरणसिंह के कुछ दरबारियों ने उनसे कहा कि ये दोनों लोग ऐसी बातें कह सकते हैं जिनसे चरणसिंह को नुक़सान होगा। इससे पहले कि वे कोई शरारत करें, उनके खिलाफ़ कार्रवाई करना ही समझदारी का काम होगा। चरणसिंह ने उन दोनों को फ़ौरन बी० एल० डी० से मुअत्तिल कर दिया। चरणसिंह ने सोचा कि इससे जन संघ खुश हो जायेगा और पुरानी बातों को भुला देगा।

लेकिन जब मौक़ा आया तो चरणसिंह रह गये ठनठन गोपाल। किसी ने प्रधानमंत्री-पद के लिए उनका नाम भी प्रस्तावित नहीं किया।

जन संघ जगजीवनराम के पक्ष में हो गया था। अगर चुनाव होता तो कँवरलाल गुप्ता और उनके एक-दो साथी ही जगजीवनराम का विरोध करते, बाक़ी लोग जगजीवनराम के लिए वोट देते। इसकी वजह यह थी कि प्रधानमंत्री के पद पर किसी हरिजन को बैठाने से जनता पार्टी की एक "शानदार नयी तसवीर" उभरती। इसके अलावा जगजीवनराम की सी० एफ़० डी० को काफ़ी तादाद में अल्पसंख्यकों और तथाकथित प्रगतिशील तत्वों का समर्थन प्राप्त था, इसलिए उनके नेतृत्व से, उनके समर्थन से जनता पार्टी को मज़बूत बनाया जा सकता था। यदि जगजीवन बाबू के पीछे जन संघ रहता तो मुसलमानों और हरिजनों के बीच भी इसकी साख बन जाती। जन संघ के कुछ ऐसे आलोचक भी थे जिनका कहना था कि उनके जगजीवनराम का समर्थन करने का एक दूसरा ही कारण है। उनका कहना था कि जन संघ सोचता है कि ऐसे प्रधानमंत्री पर क़ाबू रखना आसान होगा जिसके समर्थकों की संख्या बहुत कम हो। लेकिन सी० एफ़० डी० के 28 सदस्य ही जगजीवनराम के एकमात्र समर्थक नहीं थे। उन्हें सोशलिस्टों और चन्द्रशेखर के गुट का भी समर्थन हासिल था।

मोरारजी देसाई के समर्थकों को साफ़ नज़र आ रहा था कि चुनाव का क्या नतीजा हो सकता है। उनकी तरफ़ के उस्ताद लोगों में थे कुछ सर्वोदयी नेता तथा राजनीतिक जोड़-तोड़ में माहिर उत्तर प्रदेश के चन्द्रभानु गुप्ता। गुप्ता की मदद कर रहे थे उनके पुराने आश्रित और ढोलकिये राजनारायण, जो अभी पूरी तरह चरणसिंह के 'हनुमान' नहीं बने थे। सी० बी० गुप्ता राजनारायण की नस-नस पहचानते हैं, इसलिए नाटक के ख़त्म होने तक वह राजनारायण की हरकतों पर पूरी तरह नज़र रख रहे थे।

लोक-सभा के परिणामों की घोषणा होने के फ़ौरन बाद सर्वोदय के लोगों की एक गुप्त सभा आगे की रणनीति तय करने के लिए हुई। जे० पी० की तरह सत्ता के खेल से बाहर रहते हुए भी उसमें सराबोर सर्वोदय के लोग सजग थे कि प्रधान-मंत्री के चुनाव में वे कोई ग़लत पक्ष न ले लें। वे जे० पी० के विचार जानना चाहते थे, ताकि सही आदमी की पीठ पर हाथ रख सकें। सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष सिद्धराज ढड्डा दौड़ते हुए पटना गये और यह ख़बर लेकर लौटे कि जे० पी० मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री बनाना चाहते हैं। यह महत्वपूर्ण सूचना चुपचाप

देसाई तक पहुँचा दी गयी—इसलिए नहीं कि जे० पी० ऐसा चाहते थे, बल्कि इसके पीछे वही खुशामदी प्रवृत्ति काम कर रही थी जिससे लोग उभरते हुए सितारे का कृपापात्र वनने का प्रयास करते हैं।

दूसरे खेमे के लोग भी जे० पी० के विचार से पूरी तरह अनभिज्ञ नहीं थे। इसलिए जगजीवनराम और वहुगुणा ज़ोर दे रहे थे कि सामान्य जनतांत्रिक ढंग से नेता का चुनाव होना चाहिए। लेकिन उनसे कहा गया कि मौजूदा हालत में चुनाव कराने से पार्टी के अंदर अनावश्यक तनाव पैदा हो जायेंगे और जिस जनता ने पार्टी को इतना वड़ा बहुमत दिया है उसी की नज़रों में पार्टी गिर जायेगी। आखिर में एक वीच का रास्ता निकाला गया जिसे जगजीवनराम व वहुगुणा ने मान लिया—कांग्रेस की परम्परा के अनुसार सहमति से चुनाव किया जाये। जे० पी० संसद-सदस्यों से एक-एक कर मिलें, उनके विचार जान लें और फिर "सर्व-सम्मति से घोषणा कर दें।" जे० पी० मान गये। यद्यपि वहाँ एकत्र सर्वोदयी नेताओं को यह तरीक़ा पसंद नहीं था, पर वे वीच में बोल ही नहीं सकते थे। उस समय तो वे यही कर सकते थे कि मत-संग्रह की प्रक्रिया में जे० बी० कृपालानी को शामिल करा दें। किसी ने जे० पी० के कान में यह सुझाव रखा और बात बन गयी। जे० पी० ने कहा कि यह तो अच्छा होगा कि कृपालानी उनको सदस्यों के विचार जानने में मदद करें। जगजीवनराम के लोगों को यह पसंद नहीं आया, लेकिन इस बात पर एतराज़ करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। और 23 मार्च 1977 की शाम को गांधी शांति प्रतिष्ठान के सचिव राधाकृष्ण ने जे० पी० की तरफ़ से संवाददाताओं को वताया कि मत-संग्रह का काम अगले दिन सवेरे शुरू होगा। दोनों वूढ़े व्यक्ति—जे० पी० और जे० बी०—दो अलग-अलग कुर्सियों पर वैठेंगे और एक-एक कर संसद-सदस्य एक चिट पर अपनी पसन्द लिखकर उन्हें देंगे।

मोरारजी के समर्थकों को लगा कि वे लड़ाई हार गये—दूसरे दिन सवेरे एक तमाशा होगा जिसका नतीजा पहले से ही मालूम है। वे जानते थे कि जे० पी० और जे० बी० दोनों मोरारजी देसाई के पक्ष में हैं, लेकिन कुछ कर सकने की स्थिति में नहीं हैं। जो पद्धति तय की गयी थी उसमें ये दोनों बुज़ुर्ग महज़ क्लर्क बनकर रह गये थे! सर्वोदयी लोगों को बेहद चिंता हो रही थी, लेकिन वे समझ नहीं पा रहे थे कि क्या करें। काफ़ी रात गये, भीड़ के छँट जाने के बाद, चार सर्वोदयी—राधाकृष्ण, सिद्धराज ढड्ढा, नारायण देसाई और गोविन्दराव देशपांडे गांधी शांति प्रतिष्ठान की लॉन में बैठकर विचार-विमर्श करने लगे। जो कुछ हो रहा है वहुत अनुचित है—यह उनकी राय थी। नाम की घोषणा जे० पी० करेंगे, सब लोग समझेंगे कि वही नाम जे० पी० को पसंद था, और लोगों को जे० पी० की पसंद की झलक भी नहीं मिलेगी। उनका कहना था कि जे० पी० को इस तरह बाँध देना अच्छा नहीं है। यही समय है जब कुछ किया जाना चाहिए।

उनमें से एक ने चन्द्रशेखर को फ़ोन किया, लेकिन पता चला कि वह जगजीवनराम के यहाँ हैं। रात के ग्यारह बज रहे थे, लेकिन चारों लोग वेहद वेचैन थे। उन्होंने तय किया कि आज सो कर गुज़ारने वाली रात नहीं है। वे फ़ौरन जगजीवनराम के घर पहुँचे। वहाँ कोई बड़ी-सी बैठक चल रही थी। लगता था कि जगजीवनराम के सारे समर्थक जमा हैं। जॉर्ज फ़र्नांडीज़, नंदिनी सतपथी और एच० एन० वहुगुणा। चारों लोगों ने चन्द्रशेखर के पास खबर भिजवायी। चन्द्रशेखर उन लोगों में से थे जो जे० पी० के वहुत ही क़रीब थे,

लेकिन वह मोरारजी देसाई के प्रशंसक नहीं थे और जो तरीक़ा अपनाया गया था उसमें उन्हें कोई आपत्तिजनक वात नहीं दिखायी दे रही थी।

फिर चारों लोग अपनी कार से मोरारजी देसाई के यहाँ पहुँचे और वहाँ से एल० के० आडवाणी के पास गये। आडवाणी ने कहा कि जन संघ जगजीवनराम का समर्थन करेगा, क्योंकि उनसे वताया गया है कि जे० पी० ऐसा ही चाहते हैं। राधाकृष्ण ने कहा कि यह विलकुल ग़लत है, जे० पी० तो मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री वनाना चाहते हैं।

आडवाणी को बड़ी हैरत हुई। बोले, "आपने पहले क्यों नहीं वताया?" उनकी पार्टी ने एक ही दिन पहले फ़ैसला किया है और अब कुछ करना बहुत कठिन होगा। फिर भी, अगले दिन सवेरे राजघाट पर गांधी की समाधि पर शपथ लेने के लिए जब सब लोग इकट्ठे होंगे तो इस विषय पर जन संघ के सदस्यों से बात की जायेगी।

जब चारों गांधी शांति प्रतिष्ठान वापस पहुँचे तो रात के ढाई बज रहे थे। सवेरे पाँच बजे वे फिर निकल पड़े। राधाकृष्ण और नारायण देसाई मोरारजी के पास और गोविन्दराव तथा सिद्धराज ढड्डा नानाजी देशमुख के पास गये।

"आपको पता है कि क्या हो रहा है?" राधाकृष्ण ने मोरारजी से पूछा। उन्होंने मोरारजी को बताया कि मत-संग्रह का तरीक़ा अपनाया जायेगा तो वह बाज़ी हार जायेंगे। लेकिन मोरारजी उनसे सहमत नहीं थे। राधाकृष्ण ने महसूस किया कि वह तो अपनी 'ख़याली दुनिया' में पड़े हुए हैं। "जब हमने मोरारजी को सारी स्थिति बतायी तो उन्होंने हर बार की तरह इसे भी ईश्वर पर छोड़ दिया।"[13]

मोरारजी के घर से दोनों बीजू पटनायक के यहाँ गये। उनका विचार था कि वहाँ से चरणसिंह के नज़रिये का अंदाज़ा मिलेगा। उन दिनों चरणसिंह मूत्र-रोग से पीड़ित विलिंगडन अस्पताल में पड़े थे, लेकिन पटनायक तथा बी० एल० डी० के अन्य नेताओं के साथ उनका संपर्क बना हुआ था। पटनायक ने राधाकृष्ण और नारायण देसाई को बताया कि चरणसिंह ने धमकी दी है कि अगर जगजीवनराम को प्रधानमंत्री बना दिया गया तो वह जनता पार्टी से अपने को अलग कर लेंगे। पटनायक ने यह भी बताया कि चरणसिंह इस आशय का एक पत्र जे० पी० को लिख रहे हैं।

दोनों गांधी शांति प्रतिष्ठान वापस आ गये और उन्होंने जे० पी० से बातचीत की। उन्होंने पूछा कि आप वस्तुतः चाहते क्या हैं? जे० पी० ने बताया कि मेरे दिमाग़ में यह बात बहुत साफ़ है कि देसाई को प्रधानमंत्री-पद मिलना चाहिए। मैं यह भी चाहता हूँ कि जगजीवनराम और चरणसिंह भी मंत्रिमंडल में रहें।

फिर मत-संग्रह का ढोंग करने की क्या तुक है? वह ख़ुद को ख़्वाहमख़्वाह तनाव में क्यों डाल रहे हैं? दोनों व्यक्तियों ने जे० पी० को इस बात पर राज़ी कर लिया कि मत-संग्रह का काम एकदम फ़िज़ूल है। जे० पी० ने कहा, "दूसरों से भी आप बात करिये।"

राजघाट पर उन्होंने अटलबिहारी वाजपेयी से बातचीत की। वाजपेयी ने बताया कि उन्हें नहीं पता था कि जे० पी० मोरारजी देसाई को चाहते हैं। यदि ऐसा है तो जन संघ उनका साथ देगा। इससे पहले नानाजी देशमुख भी मान चुके थे कि जयप्रकाश नारायण की इच्छा के विपरीत जाने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता। जन संघ किसी तरह का संकट पैदा करना नहीं चाहता और उसने फ़ैसला

किया है कि वह सब से कम अड़चन के रास्ते पर चलेगा।

इस बीच गांधी शांति प्रतिष्ठान में एकत्रित संसद-सदस्यों की भीड़ में काफ़ी बेचैनी फैल रही थी। नेता के विधिवत चुनाव का समय और स्थान तय हो चुका था और दोपहर में बारह बजे पार्लियामेंट के सेंट्रल हॉल में चुनाव होना था। हर पल उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

सवेरे नौ बजे के आस-पास जे० बी० कृपालानी पहुँचे और उन्हें राधाकृष्ण तथा अन्य लोगों ने बताया कि रात में जो तरीक़ा तय किया गया था उसे अब खत्म कर देने का फ़ैसला किया गया है। कृपालानी इसके पीछे निहित उद्देश्य से सहमत थे, लेकिन वर्षों की तपस्या से पैनी हुई राजनीतिक दृष्टि से आगे देखते हुए उन्होंने कहा कि एकतरफ़ा फ़ैसला नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे उनकी बड़ी आलोचना होगी। अगर इस तरीक़े को बदलना ही है तो खुद संसद-सदस्यों को ही ऐसा करने दीजिये। यह बहुत उचित और व्यावहारिक सलाह थी।

तब तक सी० बी० गुप्ता और राजनारायण अपना तुरुप का पत्ता चल चुके थे। चालाक सी० बी० गुप्ता ने चरणसिंह को पटाने के लिए राजनारायण को विलिंगडन अस्पताल भेज दिया था। वहाँ पहुँचते ही राजनारायण ने बिस्तर पर लेटे चरणसिंह से कहा, "जगजीवन बाबू प्रधानमंत्री बनने जा रहे हैं।" चरणसिंह की भौहें नफ़रत से तन गयीं। जगजीवनराम के प्रति चरणसिंह की अरुचि किसी से छिपी नहीं है। राजनारायण ने अब दूसरा पत्ता फेंका, "बाबूजी तो नाममात्र के प्रधानमंत्री रहेंगे, असली प्रधानमंत्री तो आपका दोस्त बहुगुणा होगा।"[14] राजनारायण के चेहरे पर एक व्यंग्य-भरी मुसकान थी।

तीर निशाने पर लगा। चरणसिंह कुछ भी बर्दाश्त कर सकते थे, लेकिन उत्तर प्रदेश की राजनीति में अपने सबसे बड़े दुश्मन हेमवतीनंदन बहुगुणा को वह फूटी आँखों नहीं देख सकते थे। वह बौखलाकर बोले, "इन लोगों के नीचे काम करने की बजाय मैं दोबारा जेल जाना पसन्द करूँगा।"

राजनारायण अपने साथ समस्या का समाधान भी लाये थे। उन्होंने कहा, "बेहतर हो कि आप अपनी भावना को जयप्रकाशजी तक पहुँचा दीजिये, वरना बहुत देर हो जायेगी।"

चरणसिंह ने महज़ चार पंक्तियों का एक पत्र जे० पी० के नाम लिखा कि वह जगजीवनराम के प्रधानमंत्री होने पर उनके साथ काम नहीं कर सकेंगे, लेकिन वह मोरारजी देसाई के पक्ष में प्रधानमंत्री-पद के लिए अपना नाम वापस लेने के लिए तैयार हैं।

यह पत्र लेकर राजनारायण तेज़ी से रवाना हुए—आगे-आगे वह खुद, पीछे-पीछे उनके नौजवान चमचे। कुछ चमचों को उन्होंने गांधी शांति प्रतिष्ठान में जगजीवनराम के खिलाफ़ हवा बनाने के लिए पहले ही छोड़ रखा था। ये लोग गुस्से में कह रहे थे, "चमार कैसे प्रधानमंत्री बनेगा? कल तक हमें जेल में बंद किया और आज प्रधानमंत्री बनेगा!"

मोरारजी देसाई अपने निवास-स्थान, 5 डूप्लेक्स रोड, पर संवाददाताओं से बातचीत में मशगूल थे। कुछ नौजवानों ने उनके हाथ में एक पर्चा देकर कहा, "चौधरी साहब ने यह पत्र जयप्रकाश जी के नाम लिखा है।" जाहिर है कि यह वही खत था जिसे राजनारायण ने लिखवाया था। चरणसिंह ने इसे जे० पी० के नाम लिखा था और मोरारजी देसाई के पास उसे ले जाने की कोई ज़रूरत नहीं थी। लेकिन राजनारायण मोरारजी के प्रति वफ़ादारी दिखाने का कोई मौक़ा

हाथ से नहीं जाने देना चाहते थे। मोरारजी ने लापरवाह ढंग से पत्र को पढ़ा। लेकिन जो लोग वहाँ मौजूद थे उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि पत्र में कोई बहुत ज़रूरी बात कही गयी है, क्योंकि उन्होंने नौजवानों से कहा, "इसे फ़ौरन जयप्रकाशजी के पास ले जाओ।" वह फिर संवाददाताओं से बातचीत में लग गये। बातचीत भावी प्रधानमंत्री के बारे में हो रही थी। मोरारजी बोले कि वह सोच भी नहीं सकते कि एक 'भ्रष्ट आदमी' कैसे प्रधानमंत्री बन सकता है। उन्होंने उसका नाम भी ले दिया और इस बात की चिंता नहीं की कि टेप-रिकॉर्डर उनकी बातों को दर्ज कर रहा है। उन्होंने उस पद के प्रति बेहद अलगाव दिखाने का नाटक किया जो कुछ ही घंटों के अन्दर उन्हें प्राप्त होने वाला था। अपने छोटे-छोटे बालों पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा, "मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो जोड़-तोड़ में यक़ीन रखते हैं।"

उधर गांधी शांति प्रतिष्ठान में अपनी राय का इंदराज कराने के लिए संसद-सदस्यों ने मेला लगा रखा था। इनमें से अधिकांश को अभी तक यह नहीं पता चला था कि मत-संग्रह की योजना छोड़ दी गयी थी। खुद जगजीवनराम राधाकृष्ण के मकान में थे और उन्हें कुछ पता नहीं था कि क्या हो रहा है। जिस समय राजनारायण पत्र लेकर वापस पहुँचे, सी० बी० गुप्ता ने वहाँ जमा भीड़ को एक अनौपचारिक बैठक का रूप दे दिया, और ख़ुद इसकी अध्यक्षता करने लगे। बड़ी ऐंठ के साथ राजनारायण उठे और चरणसिंह का पत्र पढ़ने लगे, मानो कोई बम फेंक रहे हों। उसके बाद उन्होंने प्रस्ताव किया कि मत-संग्रह की अनावश्यक प्रक्रिया की बजाय दोनों नेताओं अर्थात जे० पी० और कृपालानी को अधिकार दे दिया जाये कि वे प्रधानमंत्री के लिए नाम की घोषणा कर दें। प्रस्ताव का तुरंत अनुमोदन हो गया, लेकिन अनेक सदस्य विरोध में उठ खड़े हुए। विरोध प्रकट करने वालों में प्रमुख थे, रामधन जो चन्द्रशेखर के घनिष्ठ मित्र हैं। लेकिन अब वे केवल आग ही उगल सकते थे, और कुछ नहीं कर सकते थे। जगजीवनराम को पता चला तो वह चुपचाप वहाँ से खिसक लिये।

पार्लियामेंट के सेंट्रल हॉल में सदस्यों के इकट्ठा होने तक यह संकट खुलकर सामने आ गया था। प्रसन्नचित्त मोरारजी देसाई बड़े शांत भाव से मंच के नीचे जगमगाती बत्तियों के बीच बैठे थे। जगजीवनराम और बहुगुणा का कहीं पता नहीं था। सी० एफ़० डी० के सदस्यों को एक-एक कर चुपचाप हॉल से बाहर बुला लिया गया। कुछ देर बाद आचार्य कृपालानी अंदर पहुँचे और उनके पीछे एक व्हील-चेयर में जे० पी०। जे० पी० इतने कमज़ोर और उत्तेजित थे कि वह कुछ बोल नहीं सकते थे। इसलिए कृपालानी के ज़िम्मे मोरारजी के नाम की घोषणा का काम छोड़ दिया गया। अभी लोगों की हर्ष-ध्वनि समाप्त भी नहीं हुई थी कि कृपालानी ने बड़े उदास लहज़े में कहा, "संविधान में दो प्रधानमंत्री बनाने की गुंजाइश नहीं है।"

आख़िरकार मोरारजी को मन की मुराद मिल गयी। उन्होंने भी सोचा कि ज़िंदगी में एक बार तो अपनी भावनाओं को जग-ज़ाहिर किया जा सकता है। उन्होंने कहा, "आम तौर से मैं कभी भावुक नहीं होता। लेकिन मेरे कंधों पर जो भार सौंपा गया है उससे मैं अभिभूत हो गया हूँ।" अपने संक्षिप्त अभिवचन में जे० पी० ने चेतावनी दी कि ज़रूरत पड़ने पर सरकार की आलोचना करने के लिए वह आज़ाद रहना चाहेंगे, लेकिन तुरंत ही देसाई ने उनको वचन दिया कि वह "जे० पी० की सलाह के अनुसार काम करेंगे।" जे० पी० बहुत भावुक हो

गये। अपने आँसू पोंछने के लिए उन्होंने चश्मा उतार लिया : आखिरकार एक तो ऐसा प्रधानमंत्री बना जो उनकी सलाह पर चलने का वायदा कर रहा है। नेहरू-युग का अंत देखने के लिए ही वह जीवित थे। अपने लम्बे कार्यकाल से मानो विदा लेते हुए उन्होंने कहा, "मैं बीमार हूँ और शायद अधिक दिन तक ज़िंदा न रह सकूँ। लेकिन आज मैं इस आश्वासन के साथ जाते हुए बहुत खुश हूँ।"

समारोह के खत्म होने पर दादा कृपालानी ने मोरारजी से कान में कहा, "आपको जाकर बाबूजी से मिल लेना चाहिए।" देसाई ने बड़ी बेरुखी से जवाब दिया, "मैं क्यों उनके पास जाऊँ ?"

जगजीवनराम के खेमे में ग़ुस्से की लहर दौड़ गयी थी। 'क्रांति' कड़वी लगने लगी थी। 6 कृष्ण मेनन मार्ग के बाहर और भीतर लोग बौखलाये हुए थे। हरिजनों की भीड़ ने जनता पार्टी के झण्डों को फाड़ दिया और पैरों तले रौंद दिया। जगजीवनराम एक कमरे से दूसरे कमरे में मेज़-कुर्सियों को लात मारते हुए बेचैनी से घूम रहे थे और अपने नौकरों पर बरस रहे थे। बीच-बीच में वह चीख़ पड़ते कि यह विश्वासघात किया गया है। जनता पार्टी के कई नेता उन्हें शांत करने उनके घर पहुँचे और उनसे बताया गया कि जे० पी० ने कहा है कि जो भी पद वह लेना चाहें ले सकते हैं। जगजीवनराम ग़ुस्से से चिल्ला उठे, "जयप्रकाश नारायण कौन होते हैं मुझे कुछ देने वाले ?"

चार दिन के इस सनसनीखेज़ नाटक के बाद जगजीवनराम राज़ी हो गये कि देसाई जो भी मंत्रालय उन्हें सौंपेंगे वह सहर्ष स्वीकार करेंगे। बस, वह इतना ही चाहते थे कि कुछ ऐसा हो जिससे उनकी इज़्ज़त बनी रहे और जे० पी० ने ऐसा कर भी दिया। पटना से उन्होंने टेलीफ़ोन पर एक संदेश भेजा, "आपके सहयोग के बिना नये भारत का निर्माण संभव नहीं है।"

और इस प्रकार वे "नये भारत के निर्माण" में लग गये।

टिप्पणियाँ

1. मोरारजी देसाई, द स्टोरी ऑफ़ माइ लाइफ़।
2. चरणसिंह के एक सिपहसालार से लेखक की बातचीत।
3. द स्टेट्समैन, 8 अगस्त 1973
4. मीनू मसानी, द इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इंडिया, 19 मई 1974
5. वेलेस हैंगेन, आफ़्टर नेहरू हू ?
6. द स्टेट्समैन, 3 अप्रैल, 1973
7. इंडियन एक्सप्रेस, 14 अप्रैल 1974
8. द स्टेट्समैन, 11 फ़रवरी 1973
9. वेलेस हैंगेन द्वारा आफ़्टर नेहरू हू ? में उद्धृत।
10. स्वराज, सरे, इंग्लैण्ड, 12 फ़रवरी 1976
11. जे० पी०, जेल डायरी, 12 सितम्बर 1975
12. एम० जे० अकबर, आनन्द बाज़ार पत्रिका, 11 फ़रवरी 1977
13. चरणसिंह के एक समर्थक से लेखक की बातचीत।

2

मोरारजी देसाई--हमेशा सही

रूखी और भारी आवाज़ में किसी ने शिकायत की, "यह आदमी कभी खादी नहीं पहनता। महज़ यहाँ आने के लिए उसने खादी के कपड़े ख़रीदे हैं।"

मोरारजी देसाई ने अपने सामने खड़े उस नौजवान की ओर घूरकर देखा और बरस पड़े. "अपनी बनियान दिखाओ।"

नौजवान हिचकिचाया लेकिन हुक्म-उदूली की हिम्मत नहीं पड़ी। वह आगे बढ़ा। देसाई ने उसकी कमीज का कॉलर खिसकाते हुए अंदर झाँक कर देखा। उसने मिल की बनी बनियान पहन रखी थी। जहाँ तक देसाई की बात थी, उसका नाम ख़ारिज कर दिया गया। वह दूसरी अर्ज़ी देखने लगे।

यह घटना नवम्बर 1956 की है। 1957 के आम चुनावों में उम्मीदवारों का चयन करने के लिए देसाई को कांग्रेस-प्रेक्षक बनाकर पटना भेजा गया था। बेहद ईमानदार और कर्त्तव्यनिष्ठ मोरारजी ने निश्चय कर लिया था कि वह "किसी से भी प्रभावित हुए बिना सर्वोत्तम पुरुषों और महिलाओं का चयन करेंगे।" उम्मीदवारों के चयन में उन्होंने पूरी तरह से हर-एक की छानबीन की।

पटना से रवाना होने से पूर्व एक खूबसूरत नवयुवती देसाई के पास आयीं और उनसे बड़ी इज़्ज़त के साथ कहा, "मोरारजी भाई, आप बिहार के कांग्रेस-जन को कुछ सलाह देंगे?" राज्य में कांग्रेस दो प्रमुख नेताओं डॉक्टर श्रीकृष्ण सिन्हा और डॉक्टर अनुग्रहनारायण सिन्हा की आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण जातिवाद के दलदल में बुरी तरफ फँसी थी और इस महिला ने सोचा कि शायद देसाई कांग्रेस-जन को इस संबंध में कोई सलाह दें। उन दिनों मोरारजी का बहुत रौब था। वह बंबई के सबसे शक्तिशाली व्यक्ति थे। उनकी शोहरत थी कि वह खरे व बेलाग आदमी हैं। जवाहरलाल नेहरू ने उनको अभी हाल में दिल्ली बुला लिया था और वह शीघ्र ही केन्द्रीय मंत्री बनने वाले थे।

देसाई ने तीख़ी नज़रों से उस महिला की ओर देखा। वह मोहकता की जीती-जागती तस्वीर थी। घुंघराले बाल, चमकती चूड़ियाँ और पालिश किये नाख़ून। बेशक उन्होंने खादी पहन रखी थी, लेकिन उनकी साड़ी पर ज़री का भड़कीला

काम किया हुआ था। उन्हें पता था कि यह बिहार की संसद-सदस्या तारकेश्वरी सिन्हा हैं, जिन्हें कई लोग 'संसद की सुंदरी' कहा करते हैं।

देसाई ने नाख़ुशी ज़ाहिर करते हुए कहा, "आप बहुत मँहगे कपड़े पहनती हो।" और इसके साथ ही उन्होंने क़िफ़ायतशारी और सादा जीवन पर एक छोटा-सा लेक्चर दे डाला। कांग्रेस में महिलाओं को ऐसा कपड़ा नहीं पहनना चाहिए; दिखावा करना अच्छा नहीं है।

जब देसाई ने चूड़ियों पर छींटाकशी की तो तारकेश्वरी सिन्हा ने फ़ौरन विरोध किया, "यह बिहार का रिवाज़ है। कोई शादीशुदा औरत अगर चूड़ी नहीं पहनती तो इसे बुरा माना जाता है।" लेकिन जवाब में देसाई को एक और लेक्चर झाड़ने का मौक़ा मिल गया।

प्रगतिशील ख़यालों की महिला तारकेश्वरी अपनी व्यक्तिगत ज़िंदगी के तौर-तरीक़े में किसी के दख़ल देने की आदी नहीं थी। उनको मोरारजी की बातों में मिथ्या दंभ की गंध आयी। अपनी निगाह में देसाई कितने ही उचित और विनीत हों, पर किसी की साड़ी और चूड़ियों से उन्हें कोई सरोकार नहीं हो सकता। उसी दिन तारकेश्वरी ने जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र लिखा, जिसमें देसाई द्वारा की गयी व्यक्तिगत टिप्पणियों पर विरोध प्रकट करते हुए हैरानी ज़ाहिर की कि कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने राज्यों में ऐसे प्रेक्षक क्यों नहीं भेजे जिनको सही और ग़लत की ज़्यादा समझ हो। नेहरू ने पत्र पर अपनी टिप्पणी लिखकर उसे तत्कालीन कांग्रेस-अध्यक्ष यू० एन० ढेबर को भेज दिया।

अख़बारों में भी इस सनकी कांग्रेस-प्रेक्षक के बारे में छोटी-छोटी ख़बरें छपी थीं। बिहार कांग्रेस के सदर-दफ़्तर सदाक़त आश्रम में एक उम्मीदवार की बनियान देखने वाली घटना को पटना के एक दैनिक अख़बार ने बॉक्स-आइटम बनाकर छापा था और यह क़िस्सा दिल्ली तक पहुँच गया था।

पटना से वापस पहुँचते ही मज़ाकिया स्वभाव वाले फ़ीरोज़ गांधी ने तारकेश्वरी को पार्लियामेंट के सेंट्रल हॉल में बुलाया और पूछा, "तारकेश्वरी, ज़रा यह बताना कि क्या मोरारजी ने महिला-उम्मीदवारों के पेटीकोटों का भी मुआयना किया?" फ़ीरोज़ गांधी की इस फबती से सभी हँस पड़े। तारकेश्वरी ने लाख विरोध किया, लेकिन किसी को क्या परवाह? कई दिन तक सेंट्रल हॉल में बनियान और पेटीकोट के मज़ाक पर ठहाके लगते रहे।

आख़िरकार मोरारजी तक यह मज़ाक पहुँचा। इस पर उन्हें ग़ुस्सा आना स्वाभाविक था, लेकिन मोरारजी का तो दावा है कि उन्होंने तमाम मनोभावों पर क़ाबू पा लिया है जिसमें क्रोध भी शामिल है। इसलिए वह ग़ुस्सा भी नहीं कर सके, हालाँकि वह इस बात को भूल नहीं पाये।

मार्च 1958 में देसाई को केन्द्रीय वित्त-मंत्री के पद पर नियुक्त करने के बाद नेहरू ने तारकेश्वरी सिन्हा को बुलाया और कहा कि वह उन्हें उप-मंत्री बनाना चाहते हैं और मोरारजी देसाई के तहत रखना चाहते हैं। तारकेश्वरी ने कहा कि एक बार मोरारजी के साथ नाख़ुशगवार टक्कर हो चुकी है, इसलिए उनके साथ उप-मंत्री नियुक्त होने से दोनों के लिए नाज़ुक स्थिति पैदा हो सकती है। लेकिन नेहरू अड़े रहे—शायद उन्हें एक घोर परहेज़गार व्यक्ति के साथ तड़क-भड़क-पसंद सुंदरी को रखने में मज़ा आ रहा था।

तारकेश्वरी सिन्हा देसाई से मिलने गयीं और उनसे बोलीं, "नेहरूजी मुझे आपका डिप्टी-मिनिस्टर बनाना चाहते हैं, लेकिन हम लोगों के बीच तनाव पैदा

हो चुका है, इसलिए मैंने उनसे कहा कि शायद आपको कुछ बुरा लगे। लेकिन वह इस पर अड़े हुए हैं, इसलिए मैं आपके पास आयी हूँ। यदि आपको मेरे बारे में कोई एतराज़ हो तो...।"

"तुमने लोगों से यह क्यों कहा कि मैंने पटना में महिला-उम्मीदवारों के पेटीकोटों की छानबीन की ?" देसाई ने पूछा।

"एकदम ग़लत," तारकेश्वरी ने जवाब दिया, "मैंने किसी से ऐसा नहीं कहा। सही बात तो यह है कि जब किसी ने ऐसा कहा तो मैंने ज़ोरदार विरोध किया !"

"लेकिन तुमने मेरे ख़िलाफ़ नेहरूजी को ख़त लिखा था।" मोरारजी को यू० एन० ढेबर ने वह ख़त दिखाया था।

"हाँ, मैंने लिखा था। आपकी व्यक्तिगत टीकाओं से मुझे ग़ुस्सा आ गया था।"

"तुमने मेरी सलाह चाही थी और मैंने अपनी सलाह दे दी थी। यदि तुम्हें मेरी सलाह पसंद नहीं थी तो दूसरों को लिखने की बजाय तुम्हें मुझसे कहना चाहिए था।"

तारकेश्वरी ने बताया कि उन्हें यह पसंद नहीं है कि वह क्या पहनती हैं और कैसे रहती हैं, इसमें कोई दख़ल दे। ये व्यक्तिगत मामले हैं और वह अपना रास्ता तय करने में किसी की दख़लंदाज़ी नहीं पसंद करतीं। यदि उनके डिप्टी-मिनिस्टर होने में देसाई को कोई एतराज़ हो तो उन्हें बता देना चाहिए।

"मुझे कोई एतराज़ नहीं है," मोरारजी ने शांत लहज़े में कहा, "तुम्हारा स्वागत है—तुम मेरे साथ आ सकती हो।"

तारकेश्वरी मोरारजी के मंत्रालय में उप-मंत्री हो गयीं और जल्दी ही उनके बीच काफ़ी आपसी सद्‌भाव पैदा हो गया।

मोरारजी देसाई यह आरोप सुनना कभी पसंद नहीं करते कि बदले की भावना उनकी एक कमज़ोरी है, या यह कि उनके मन में नफ़रत के लिए भी कोई जगह है। उन्होंने जीवन-भर परिश्रम करके घृणा की भावना का विश्लेषण किया है और उसे अपने मन से निकाल दिया है। वह मानवीय दुर्बलताओं के विरुद्ध इतने दिन व इतनी मुस्तैदी से लड़े हैं कि उनके लिए सदाचार अपने में स्वयं पूजनीय बन गया है।

बात तब की है जब वे केन्द्रीय वाणिज्य और उद्योग-मंत्री (नवंबर 1956-मार्च 1958) थे। एक दिन बम्बई के उद्योगपति, स्वर्गीय के० सी० महिन्द्रा उनसे मिलने गये। महिन्द्रा तीन औद्योगिक यूनिटें क़ायम करने के लिए लाइसेंस चाहते थे और इसके लिए उन्होंने मंत्रालय में दरख़्वास्त दी थी। लेकिन उनकी मोरारजी से इस विषय पर बातचीत नहीं हुई। महिन्द्रा इतिहासकार भी थे। किसी तरह बात शिवाजी व अफ़ज़लख़ाँ के बारे में होने लगी और फिर इसी विषय पर होती रही। महिन्द्रा ने शिवाजी के ख़िलाफ़ राय ज़ाहिर की तो मोरारजी बिगड़ गये। बहस में गर्मी आ गयी और मोरारजी ने महिन्द्रा को अँग्रेज़ों का पिट्ठू कह दिया। जब तक बातचीत ख़त्म हुई काफ़ी कड़वाहट पैदा हो गयी थी।

उसी दिन महिन्द्रा मनुभाई शाह से मिलने गये। वह मोरारजी के मंत्रालय में राज्य-मंत्री थे। अपने व्यापार के सिलसिले में बातचीत करने से पहले महिन्द्रा ने शाह को मोरारजी के साथ हुई झड़प के बारे में बताया। बाद में मोरारजी ने

भी इस बारे में मनुभाई को बताया और महिन्द्रा के ख़िलाफ़ काफ़ी सख़्त-सुस्त बातें कीं।

उसी रात जब मोरारजी ने दिन-भर की फ़ाइलें देखनी शुरू कीं तो उन्हें महिन्द्रा की दरख़्वास्त से संबंधित तीनों फ़ाइलें मिलीं। मनुभाई ने इन फ़ाइलों को उनके पास भेज दिया था। ग़ुस्से में वह उन फ़ाइलों को देखते रहे। फिर उन्होंने मनुभाई को फ़ोन मिलाया।

"आप समझते हैं कि मैं बहुत ओछा और छोटे दिमाग़ का आदमी हूँ ?" उन्होंने मनुभाई से सवाल किया।

एक क्षण के लिए मनुभाई समझ नहीं पाये कि मोरारजी का इशारा किस तरफ़ है।

मोरारजी कहने लगे, "आपने महिन्द्रा की तीनों फ़ाइलें मेरे पास यह जानते हुए भी भेज दी हैं कि उनसे मेरी लड़ाई हो चुकी है। क्या आप सोचते हैं कि मैं इतना नीच हूँ ?आप सोचते हैं कि मैं बदला लूंगा ?आपने सोचा होगा कि ग़ुस्से में मैं तीनों दरख़्वास्तें नामंजूर कर दूंगा। आपकी ज़ानकारी के लिए मैं बता दूं कि मैंने तीनों दरख़्वास्तें मंजूर कर ली हैं।"

मुमकिन है कि अगर उस दिन इस तरह की बहस नहीं हुई होती तो मोरारजी को महिन्द्रा की दरख़्वास्तों में कोई ख़ामी मिल जाती और वे उन्हें नामंजूर कर देते। लेकिन यह उनके लिए अब एक चुनौती बन गयी थी। उन्हें साबित करना था कि वह इस तरह की मानवीय कमज़ोरियों के शिकार नहीं हैं।

मोरारजी का दिमाग़ बहुत ही विचित्र जटिलताओं का पुलिंदा है। वह बहुत अड़ियल, रूखे, नुकीले, काँटेदार स्वभाव के हैं जो समझते हैं कि उनसे कभी ग़लती हो ही नहीं सकती। "मेरे दिमाग़ में तनिक भी संदेह नहीं है"—यह जुमला मोरारजी के भाषणों का ऐसा अभिन्न हिस्सा बन चुका था कि उन दिनों गुजरात और बम्बई के राजनीतिज्ञों और पत्रकारों के बीच इस पर ख़ासा मज़ाक चल पड़ा था। बहस में वह आपसे सहमत हो सकते हैं, पर उनका ही मुद्दा हमेशा ऊपर रहेगा, क्योंकि उन्हें अपने पक्ष के सही होने में कभी संदेह नहीं रहता। बहस सैक्स पर हो रही हो या नशाबंदी पर, गोआ पर हो या सिक्किम पर, या इस विषय पर कि आदमी को क्या खाना चाहिए—उन्हें अपने तर्क हमेशा सही लगते हैं।

इस दिमाग़ी बनावट का एक अंश तो उन्हें अपने पूर्वजों से—जो अनाविल ब्राह्मण थे—विरासत में मिला है, जो "साफ़गोई, एक हद तक गर्म-मिजाज़ और आज़ाद खयालों के लिए जाने जाते थे।"[1] एक अंश उन्हें अपने परिवार के बेहद धार्मिक माहौल से तथा 'रामायण', 'महाभारत' तथा 'पंचतंत्र' के अध्ययन से मिला था। वह कहा करते हैं, "नैतिकता के बारे में मेरे विचार इन्हीं पुस्तकों के ज़रिये बने थे।" ज़िंदगी के शुरू के दिनों की आर्थिक तंगी और लड़कपन में ही लगे झटकों का निश्चय ही उनके व्यक्तित्व के निर्माण में हाथ रहा है। मोरारजी केवल 15 वर्ष के थे तो उनके पिता ने कुएँ में कूदकर आत्महत्या कर ली थी। इसका उन पर मनोवैज्ञानिक असर तो पड़ा ही, साथ में उनके युवा कंधों पर एक बड़े परिवार का बोझ आ गया, जिसमें शामिल थीं उनकी दादी, माँ, तीन छोटे भाई, दो बहनें और वह छोटी लड़की जिससे पिता की मौत के तीन दिन बाद ही उनकी शादी हुई थी।

इसके साथ-साथ उनके मन में हमेशा ही यह काँटा रहा है कि ज़िंदगी में बार बार उनके साथ अन्याय किया गया है। 1920 वाले दशक के उत्तरार्द्ध में, उनकी

जवानी के दिनों में जब वह डिप्टी-कलेक्टर थे, उनके अँग्रेज़ कलेक्टर ने उनके साथ अन्याय किया। उनके खिलाफ़ उसने रिपोर्ट की, जिसकी वजह से उन्होंने नौकरी छोड़ने का फ़ैसला कर लिया। सबसे ज़्यादा तकलीफ़ उन्हें इस बात से होती थी कि हमेशा सही काम करने के कारण ही उन्हें सज़ा भुगतनी पड़ी। अँग्रेज़ कलेक्टर के साथ अपने झगड़े के बारे में मोरारजी ने द स्टोरी ऑफ़ माइ लाइफ़ में लिखा है, "गोधरा में अपना पद संभालने के बाद से ही डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट और मेरे बीच किसी-न-किसी बात पर कहा-सुनी हो जाती थी। ज्यों ही वह स्टेशन पर उतरा, उसने मुझसे कहा कि मैं उसका सामान बँगले तक पहुँचाने का इंतज़ाम कर दूं। मैंने ऐसा कर दिया और जो ख़र्च आया उसका बिल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के पास भेज दिया। मुझे लगा कि उसने यह पसन्द नहीं किया। मेरे बिल देने पर उसने भुगतान कर दिया। फिर मुझसे कहा कि मैं एक भैंस का इंतज़ाम कर दूं जो उसके बँगले के अहाते में रहेगी, ताकि नियमित रूप से दूध मिल सके। सच पूछिये तो इस तरह के काम के लिए उसे मुझसे नहीं कहना चाहिए था, लेकिन उसके कहने पर मैंने जवाब दिया कि अगर वह भैंस की क़ीमत दे तो वह इंतज़ाम हो सकता है। यह बात भी उसे पसंद नहीं आयी। नतीजा यह हुआ कि उसने मुझसे भैंस का इंतज़ाम कराने के बजाय किसी और से करा लिया। उसने मुझे आदेश दिया कि कलेक्टर के बँगले की सफ़ाई आदि का ख़र्च फुटकर ख़र्चों की मद से किया जाये। मैंने कहा कि यह उचित नहीं है और उसे यह ख़र्चे खुद ही बर्दाश्त करना होंगे। यह बात भी उसे पसंद नहीं आयी। मैं उनका व्यक्तिगत सहायक था और मैंने उसे शिकायत करने का कोई वाजिब मौक़ा नहीं दिया। लेकिन मैंने यह महसूस किया कि वह मुझसे खुश नहीं है...।"

मोरारजी को ज़िंदगी-भर यह महसूस होता रहा है कि उन्हें धोखा दिया जा रहा है, या उनके ख़िलाफ़ साज़िश हो रही है। 1959 में जब जवाहरलाल और इन्दिरा गांधी ने द्विभाषी बंबई राज्य के विभाजन का फ़ैसला किया तो उन्हें बेहद तकलीफ़ हुई। तत्कालीन गृह-मंत्री गोविंदवल्लभ पंत के निवास-स्थान पर एक बैठक हुई जिसमें नेहरू, इन्दिरा गांधी और बम्बई राज्य के मुख्य-मंत्री वाई० बी० चह्वाण शामिल थे। पंतजी ने ज्यों ही बहस शुरू की, मोरारजी ने कहा, "कांग्रेस कार्य-समिति और केंद्र सरकार ने जब बंबई राज्य बाँट कर तीन अलग-अलग राज्य बनाने का फ़ैसला किया तो आपने बृहत बंबई राज्य के निर्माण का निश्चय किया था। उस समय मैं आपके प्रस्ताव से सहमत हो गया। आप अब इस राज्य का बँटवारा करने की योजना बना रहे हैं। क्या आप इसे उचित समझते हैं?" उन्हें बहुत साफ़-साफ़ लगा कि अन्य लोगों ने उनकी ग़ैर-मौजूदगी में पहले ही फ़ैसला कर लिया है।

देसाई का कहना है कि "यह फ़ैसला लिये जाने के बाद मैं जवाहरलालजी से मिला और कहा कि क्या यह उचित है कि कांग्रेस कार्य-समिति और केंद्र सरकार ने पहले एक फ़ैसला लिया, उस फ़ैसले के लिए मुझे बलि का बकरा बना दिया तथा महाराष्ट्र की जनता की नज़रों में मुझे गिरा दिया, अब उस फ़ैसले को बदला जा रहा है? मैंने उनसे यह भी पूछा कि उन दिनों मेरे ऊपर हमले हो रहे थे तो उन्होंने मेरे बचाव के लिए कुछ कहा क्यों नहीं? जवाहरलालजी ने बड़े शांत भाव से समझाया कि उनके और देश के लिए बड़ी कठिनाइयाँ खड़ी हो गयी हैं, जिनकी वजह से उन्हें मजबूरन पहला फ़ैसला बदलने का समर्थन करना पड़ रहा है। जब नेहरू ने मेरी भावनाओं को समझ लिया तो मैंने उनसे कहा कि मुझे इस

बात से ही काफ़ी तसल्ली है कि आप मेरी दुर्दशा को समझ रहे हैं, अब मुझे कोई शिकायत नहीं है।"

लेकिन इन सारी बातों से उनके अंदर एक कसक बनी रही। बाद में वाई० बी० चह्वाण से मुलाक़ात होने पर उन्होंने पूछा, "जब आप लोगों ने पहले ही इस विषय पर विचार-विमर्श कर लिया था तो इसके बारे में मुझे बताया क्यों नहीं?" देसाई का कहना है कि चह्वाण ने इस बात पर अफ़सोस ज़ाहिर किया कि उन्हें अँधेरे में रखा गया। मोरारजी ने लिखा है कि "फिर इस विषय पर मैंने कुछ नहीं कहा।"

1961 में गोविन्दवल्लभ पंत की मृत्यु के बाद कांग्रेस संसदीय दल के उप-नेता का सवाल पैदा हुआ। देसाई को ज़रा भी शक नहीं है कि नेहरू ने पहले ही से उनको इस पद से अलग रखने की सारी जोड़-तोड़ कर रखी थी। जब तक मोरारजी बंबई में थे उन्हें नेहरू का पूरा विश्वास प्राप्त था और खुद को वे प्रधानमंत्री का सबसे ज़्यादा 'गोपनीय सलाहकार' समझते थे। यहाँ तक कि गोविन्दवल्लभ पंत को कौन-सा पद दिया जाना चाहिए जैसे विषय पर भी नेहरू ने उनकी सलाह ली थी और देसाई का दावा है कि उन्होंने ही प्रधानमंत्री को राज़ी किया था कि पंतजी को गृह-मंत्रालय दिया जाये। लेकिन धीरे-धीरे देसाई के प्रति नेहरू का रवैया बदलता गया। मोरारजी ने इस तबदीली पर ग़ौर किया और इसका विश्लेषण किया। अंत में वे इस नतीजे पर पहुँचे कि "जवाहरलालजी की यह आदत है कि किसी को तीन साल से अधिक समय तक अपना सलाहकार नहीं रखते हैं।"

देसाई की धारणा है कि नेहरू के साथ उनके संबंधों में असली अड़चन यह थी कि वह हमेशा सिद्धांतों के लिए लड़ते थे। "जवाहरलालजी जानते थे कि मैं उनकी इच्छा के अनुकूल हर काम करने के लिए राज़ी नहीं होऊँगा।" देसाई का कहना है कि नेहरू के साथ गड़बड़ी यह थी कि उनका "ईश्वर में विश्वास नहीं था और सामान्यत: सत्य का पालन करते समय कभी-कभी असत्य का सहारा ले लेने में उन्हें कोई एतराज़ नहीं होता था।" मोरारजी नेहरू को इस बात का श्रेय देते हैं कि वह स्वयं असत्य से अलग रहने की कोशिश करते थे, लेकिन अपनी सारी खूबियों के बावजूद "जब उनके साथियों में से कोई उनको खुश करने के लिए अपनी मर्ज़ी से, या उनके इशारे पर झूठ का सहारा लेता था तो नेहरूजी आँख मूँद लेते थे।" मोरारजी ने लिखा है, "दिल्ली आने के बाद मैंने महसूस किया कि इस तरह के मामलों में मैं नेहरू के लिए उपयोगी नहीं हूँ। इसीलिए उन्होंने यह फ़ैसला किया होगा कि मुझे उप-नेता न बनने दिया जाये।"

देसाई को जब यह पता चला कि जगजीवनराम को इस पद के लिए उम्मीदवार बनाया गया है तो वे नेहरू के पास गये और विरोध प्रकट किया। मौलाना आज़ाद और गोविन्दवल्लभ पंत की मृत्यु के बाद मोरारजी देसाई मंत्रि-मंडल में दूसरे स्थान पर पहुँच गये थे और उन्होंने नेहरू को याद दिलाया कि यह सर्वमान्य रिवाज़ है कि दूसरे स्थान पर जो व्यक्ति हो उसे ही उप-नेता बनाया जाये। तब नेहरू ने दो उप-नेताओं के चयन का प्रस्ताव रखा—एक लोक-सभा से और एक राज्य-सभा से।

यह सुनकर देसाई ग़ुस्से से उबल पड़े, "अगर आपने यह प्रस्ताव सरदार पटेल के सामने रखा होता तो वे मंत्रिमंडल से इस्तीफ़ा देकर अलग हो जाते। मैंने अब तक इस नियम को स्वीकार किया है कि अगर सर्वसम्मति से मेरा चुनाव हो तभी

मैं पार्टी में किसी पद को लूंगा। इसलिए यदि उप-नेता के पद के लिए कई उम्मीदवार खड़े होते हैं और चुनाव होता है तो मैं अपने को अलग कर लूंगा और ऐसी हालत में मैं समझता हूं कि मुझे मंत्रिमंडल से भी इस्तीफ़ा दे देना चाहिए।"

नेहरूजी ने उन्हें बताया कि जगजीवनराम को चुनाव में खड़ा होने से रोकना बड़ा कठिन है। मोरारजी उलझन में पड़े थे। वह समझ रहे थे कि इन लोगों ने चुनाव कराने का फ़ैसला कर लिया है, क्योंकि उन्हें पता है कि अगर सर्वसम्मति से मोरारजी को नहीं चुना गया तो वह मैदान से हट जाना ज़्यादा पसंद करेंगे। लेकिन उनका यह सोचना ग़लत था। मोरारजी इतनी आसानी से हार मानने वाले नहीं थे। उन्होंने नेहरू से कहा कि तब तो वह चुनाव लड़ना ही पसंद करेंगे। "सामान्य तौर पर ऐसा वातावरण था कि मैं चुनाव जीत जाता। लेकिन जवाहरलालजी ने अपनी रणनीति बदल दी और मुझसे पूछा कि यदि किसी मंत्री को संसदीय दल का उप-नेता न बनाकर लोक-सभा के और राज्य-सभा के एक-एक साधारण सदस्य को उप-नेता का-पद दे दिया जाये तो मुझे कोई एतराज़ होगा?"

बाद में नेहरू ने यही फ़ैसला किया और देसाई को तनिक भी संदेह नहीं रहा कि इन सारी योजनाओं का मक़सद उन्हें उप-नेता पद से अलग रखना था।

देसाई के दिमाग़ में इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि कामराज-योजना का मुख्य उद्देश्य उन्हें मंत्रिमंडल से बाहर करना था। स्वर्ण नियंत्रण आदेश और अनिवार्य जमा योजना—दोनों को नेहरू, कृष्ण मेनन तथा अन्य लोगों ने प्रस्तावित किया था। देसाई का कहना है कि शुरू में उन्होंने इन योजनाओं का विरोध किया, लेकिन नेहरू के दबाव की वजह से उन्हें कार्यान्वित करना पड़ा। लेकिन ये योजनाएँ बेहद अलोकप्रिय साबित हुईं तो नेहरू जन-मत के तूफ़ान में बह गये। वह तो इस बात के लिए भी तैयार हो गये कि इनको वापस ले लिया जाये, लेकिन एक बार शुरू कर दिये जाने के बाद देसाई अड़े रहे।

इस समय तक नेहरू के दिमाग़ में एक और चिंता ने घर कर लिया था—उनके बाद प्रधानमंत्री कौन होगा? देसाई का कहना है कि कामराज-योजना "जवाहरलालजी द्वारा उठाया गया दूसरा क़दम था जिससे मौक़ा आने पर मुझे उनका उत्तराधिकारी बनने से रोका जा सके।...जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि वह इन्दिराजी को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पंडित मोतीलालजी ने गांधीजी से अनुरोध किया था कि उनके बाद कांग्रेस-अध्यक्ष जवाहरलालजी को बनाया जाये और उनका चुनाव हो भी गया... यह दिखाने के लिए कि कामराज-योजना ख़ास तौर से मेरे ख़िलाफ़ नहीं है, लालबहादुरजी को भी शामिल कर लिया गया, लेकिन आपस में यह समझौता था कि तीन-चार महीनों बाद इन्हें मंत्रिमंडल में वापस ले लिया जायेगा।"

काफ़ी दिन तक देसाई अपने को नेहरू का वास्तविक उत्तराधिकारी समझते रहे। दूसरे लोग भी यही सोचते थे। मार्च 1958 में देसाई की पहली विदेश-यात्रा के अवसर पर लंदन के कुछ अख़बारों ने उनका स्वागत करते हुए अपनी हेड-लाइन में लिखा—"नेहरू के उत्तराधिकारी पश्चिमी देशों की यात्रा पर"; और अमरीका में उनके मेज़बानों ने "भारत के भावी प्रधानमंत्री" कहकर उनका परिचय कराया। देसाई ने न तो इन बातों का कभी विरोध किया और न कभी विनम्रता से काम लिया।

देसाई को यह बहुत बाद में पता चल सका कि उनके प्रति नेहरू के अंदर

धीरे-धीरे जो बेरुख़ी पैदा हुई है उसकी वजह उनकी पश्चिमी देशों की यात्रा के समय हुआ इस तरह का 'प्रोपेगेंडा' था। उन्होंने लिखा है कि लोगों और अख़बारों के इस कथन को वह पसन्द तो नहीं करते थे कि वह नेहरू के बाद प्रधानमंत्री बनेंगे लेकिन "अगर कोई ऐसा कह रहा हो तो मैं उसे रोक भी नहीं सकता था। मैं जानता था कि इससे लोगों के मन में मेरे प्रति ईर्ष्या पैदा होगी। जवाहरलालजी के उत्तराधिकारी के रूप में मेरे नाम का उल्लेख उस समय भी किया जाता था जब मौलाना साहब और पंतजी ज़िन्दा थे और मैं इसे बहुत अनुचित समझता था।"

1950 वाले दशक में नेहरू ने कम-से-कम दो बार प्रधानमंत्री-पद से अलग होने की बात कही। हालाँकि उन्होंने पद से हटने की बात नहीं उठायी थी, फिर भी दोनों बार संभावित उत्तराधिकारी के रूप में किसी-न-किसी तरह मोरारजी का नाम भी लिया गया। इस तरह की बात एक बार उन दिनों भी उठी थी जब मोरारजी बंबई के मुख्यमंत्री थे। कुछ वरिष्ठ पत्रकारों ने मोरारजी से पूछा कि क्या वह नेहरू के बाद भारत के प्रधानमंत्री बनने जा रहे हैं? मोरारजी ने जवाब दिया, "मुझसे अभी तक इस तरह की कोई बात नहीं कही गयी है।"

नेहरू की मृत्यु के बाद मोरारजी को इसमें कोई संदेह नहीं था कि उनको ही सर्वसम्मति से प्रधानमंत्री-पद दिया जायेगा। लेकिन फ़ौरन ही एक ज़बर्दस्त बहस छिड़ गयी और एक विशेष दूत द्वारा देसाई के पास यह संदेश भिजवाया गया कि यदि वह लालबहादुर शास्त्री को प्रधानमंत्री मान लें तो उन्हें उप-प्रधानमंत्री बना दिया जायेगा।

देसाई ने बड़े तीखे शब्दों में उस संदेशवाहक को जवाब दिया, "मैं इस तरह की सौदेबाज़ी पसंद नहीं करता और न किसी पद के लिए अपना आत्म-सम्मान छोड़ता हूँ।"

मध्यप्रदेश के नेता डी० पी० मिश्रा, जो काफ़ी दिनों से इन्दिरा गांधी के 'चाणक्य' बने हुए थे, एक दूसरा सुझाव लेकर देसाई के पास पहुँचे। मिश्रा ने देसाई से कहा, "आप इन्दिरा गांधी का नाम प्रस्तावित कर दीजिये।" देसाई को यह बात बड़ी हास्यास्पद लगी और उन्होंने अपनी नाराज़गी भी ज़ाहिर कर दी।

मिश्रा ने कहा, "यह तो महज़ एक चाल है। जब आप इन्दिराजी का नाम प्रस्तावित करेंगे तो लालबहादुरजी इसे स्वीकार नहीं करेंगे। इसलिए इन्दिराजी चुनाव नहीं लड़ेंगी और आपको अपना समर्थन दे देंगी। इस प्रकार आपकी जीत पक्की हो जायेगी।"

मोरारजी इस तरह की रणनीतियों को समझते नहीं थे। जिन लोगों को पिछले कई वर्षों से उनके क़रीब रहने का मौक़ा मिला है उनका विश्वास है कि मोरारजी जोड़-तोड़ और तिकड़म नहीं कर सकते। लेकिन इतना तो वह समझ ही गये कि मिश्रा के सुझाव के पीछे दाल में ज़रूर कुछ काला है। किसी को इतना घूम-फिर कर चलने की क्या ज़रूरत है?

चालाक रणनीतिज्ञ मिश्रा ने मोरारजी को याद दिलाया कि भगवान श्रीकृष्ण भी इस तरह की पैंतरेबाज़ी और हेर-फेर में यक़ीन रखते थे। बचपन से ही धर्मग्रंथों के अध्ययन में तल्लीन देसाई ने जवाब में एक छोटा-सा लेक्चर दे डाला— "श्रीकृष्ण भगवान का अवतार थे और वे संपूर्ण पुरुषोत्तम के नाम से जाने जाते थे, जबकि राम को मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता था। राम ने एक आदर्श मानव की तरह व्यवहार किया और इसलिए हमें राम की तरह का आचरण करना

चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान की लीला कर रहे थे, वह जो चाहे कर सकते थे, लेकिन साधारण मनुष्य उनकी नक़ल नहीं कर सकता। हमें वही करना चाहिए जिसकी शिक्षा कृष्ण ने 'गीता' में दी है। मैं किसी तरह के षड्यंत्र में शामिल होना नहीं चाहता जिसकी वजह से मैं प्रधानमंत्री न बनूँ तो लालबहादुरजी को भी यह पद न मिले। मैं लालबहादुरजी को इस पद के लिए इन्दिराजी की तुलना में ज़्यादा योग्य व उपयुक्त मानता हूँ, इसलिए यह प्रस्ताव नहीं रख सकता कि इन्दिराजी को प्रधानमंत्री बनाया जाये।"

इन्हीं भाषणों और प्रवचनों के कारण देसाई अपने दोस्तों और समर्थकों से भी अलग-थलग पड़ जाते हैं। लेकिन वर्षों की साधना के ज़रिये उन्होंने अपने दिमाग़ में अपनी ऐसी तस्वीर बना ली है जिसके लिए उन्हें लगातार खुद को उचित ठहराना पड़ता है। अपने लिए उन्होंने खुद ही परेशानी पैदा कर ली है।

दाव-पेंच में माहिर लोगों ने देसाई को मात दे दी। उनके असहमति प्रकट करने पर भी कांग्रेस कार्य-समिति ने फ़ैसला किया कि कांग्रेस-अध्यक्ष कामराज संसद-सदस्यों की आम राय का पता लगायें। देसाई का कहना है, "श्री कामराज ने विचित्र ढंग से सदस्यों की राय का पता लगाया और एक दिन मुझसे मिलकर उन्होंने कहा कि लोगों की राय लालबहादुरजी के पक्ष में है। मैंने जवाब दिया कि आपके द्वारा किये गये मत-संग्रह पर मेरा कोई विश्वास नहीं है, आप जो चाहें कर सकते हैं।"

देसाई सोचते थे कि यदि चुनाव कराया जाता तो उनकी या शास्त्री के जीतने की संभावना बराबर-बराबर थी। अन्य लोगों की राय थी कि देसाई हार जाते। जो भी हो, देसाई ने चुनाव न लड़ने का फ़ैसला कर लिया। बाद में उन्होंने इसकी व्याख्या की, "यदि उन परिस्थितियों में मैं चुना भी जाता तो मेरे लिए काम करना बहुत मुश्किल हो जाता और मेरा सारा समय तथा मेरी सारी शक्ति विरोधियों से निबटने में ही बीत जाती, या ऐसी हालत पैदा होती कि मैं तंग आकर इस्तीफ़ा ही दे देता।"

इस तरह का कोई डर उन्हें शास्त्री की मृत्यु के बाद इन्दिरा गांधी के खिलाफ़ चुनाव लड़ने से नहीं रोक सका। कामराज 'किंग-मेकर' के रूप में उभर कर आ चुके थे और तुले हुए थे कि इन्दिरा को प्रधानमंत्री बनाना है। उनके इस इरादे के पीछे नेहरू के प्रति उनकी वफ़ादारी का उतना हाथ नहीं था जितना उनके व उनके दोस्तों के इस ख़याल का था कि इन्दिरा गांधी तो महज़ एक 'गूँगी गुड़िया' हैं। देसाई को 169 वोट और इन्दिरा गांधी को इसके लगभग दुगुने वोट मिले। बाद में पुरानी घटनाओं के बारे में सोचते हुए उन्होंने कहा कि चुनाव लड़ने के पीछे उनकी यह इच्छा नहीं थी कि वे प्रधानमंत्री बनें। उन्होंने कहा कि "मैं इन्दिराजी को इस पद के योग्य नहीं समझता हूँ, इसलिए मैंने चुनाव में उनका विरोध करना अपना कर्तव्य माना।"

1967 के चुनावों के बाद उन्होंने फिर इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ खड़े होने का इरादा ज़ाहिर किया, लेकिन बाद में पार्टी को टूटने से बचाने का दिखावा करके पीछे हट गये और इन्दिरा को अपना नेता मान लिया। उप-प्रधानमंत्री के रूप में मंत्रिमंडल में शामिल होने से पहले दोनों में हुई बातचीत इन्दिरा गांधी-जैसी अभिमानी महिला को हरगिज़ पसंद नहीं आयी होगी। मंत्रिमंडल में दूसरा स्थान दिये जाने का दावा करते हुए उन्होंने कहा, "मेरे मंत्रिमंडल में शामिल होने से आपको तभी मदद मिलेगी जब मैं आपकी ग़ैर-मौजूदगी में आपकी ओर से पूरे

अधिकार के साथ बोल सकूँ। यह तभी संभव हो सकता है जब मुझे उप-प्रधान-मंत्री बनाया जाये—विरोधी दलों के एक से बढ़कर एक योग्य नेता चुनाव जीत कर आये हैं और वे बड़े अच्छे वक्ता हैं। मेरा अनुभव आपसे अधिक है, इसलिए आपकी अपेक्षा मैं बेहतर ढंग से उनकी बहस का जवाब दे सकता हूँ। आपको अभी तक इस काम का ज़्यादा अनुभव नहीं है। विपक्ष का जवाब मैं ज़्यादा कारगर ढंग से दे सकता हूँ। इसलिए मुझे गृह-मंत्रालय भी दिया जाना ज़रूरी है।"

कुछ ही समय बाद संसद के सेंट्रल हॉल में एक बहस छिड़ गयी। यह कहा जाने लगा कि मोरारजी न इन्दिरा को अपने पद के लायक़, न चह्वाण को गृह-मंत्रालय के योग्य समझते हैं। लगता है कि मोरारजी ने इन्दिरा से जो कहा था, उसी को तोड़-मरोड़ कर यह रूप दिया गया था। पर जब दोनों की बातचीत हुई थी तो वहाँ और कोई तो मौजूद नहीं था। इसलिए मोरारजी के दिमाग़ में ज़रा भी शुबहा नहीं रहा कि देवीजी ने स्वयं यह बात फैलायी है।

मोरारजी उप-प्रधानमंत्री तो बन गये पर मिला वित्त-मंत्रालय ही, जो वह नहीं चाहते थे। लेकिन देवीजी मौक़े के इंतज़ार में रहीं और जब एक साथ उन्होंने बिना किसी बात की परवाह किये मोरारजी से वित्त-मंत्रालय छीनते हुए कहा कि 'मैं तजुर्बा हासिल करना चाहती हूँ' तो लगा कि वह मोरारजी को उनकी साफ़गोई का उलाहना दे रही हैं।

मोरारजी को इसमें ज़रा भी शक नहीं था कि भारत का प्रधानमंत्री बनने के लिए वही सबसे ज़्यादा उपयुक्त व्यक्ति थे। लेकिन ऐसे लोग भी थे जो उनकी इस राय से इत्तफ़ाक़ नहीं करते थे। दरअसल ऐसे सभी संसद-सदस्य और राजनीतिज्ञ, जिन्होंने देसाई को कई वर्षों तक नज़दीक से देखा है, कहते थे कि जवाहरलाल नेहरू के बाद यदि देसाई प्रधानमंत्री बन जाते तो सब गुड़ गोबर हो जाता। ऐसा समझने की वजह केवल यही नहीं थी कि बंबई में अपने मुख्य-मंत्रित्व में उन्होंने शराब-बंदी कर दी थी, फ़िल्मों में चुम्बन व मद्यपान के दृश्यों को अवैध कर दिया था, आधी रात तक सभी रेस्टोरैंट्स बंद करने का आदेश दे दिया था, और हर तरह के आमोद-प्रमोद तथा मनोरंजन के ख़िलाफ़ कड़ाई की थी। वह 'हिन्दू सदाचारी' तो माने ही जाते थे, साथ ही उनके तानाशाही अंदाज़ से सभी नाराज़ रहते थे।

मोरारजी ने गुजरात कांग्रेस का निर्विवाद मठाधीश बनने की कोशिश की। वह किसी तरह का विरोध बर्दाश्त नहीं कर पाते थे और अगर कोई व्यक्ति उनके नज़रिये से अलग कुछ भी कहने के लिए खड़ा होना चाहता था तो उस पर बरस पड़ते थे और उसे बैठा देते थे। अनेक लोग उन्हें "सर्वोच्च नेता" कहा करते थे और मोरारजी शायद यह पसंद भी करते थे। उन्होंने कभी किसी से 'सर्वोच्च' कहने के लिए मना नहीं किया और जल्दी ही गुजराती अख़बारों में यह शब्द बहुधा व्यंग्य के रूप से इस्तेमाल होने लगा। व्यंग्य-चित्रकारों ने एक लंबी छड़ी के ऊपर गांधी टोपी लगाकर उन्हें चित्रित किया। मोरारजी की यह एक प्रचलित तस्वीर बन गयी थी—एक सख़्त और सीधी छड़ी जिसने अपने ऊपर गांधीवाद का मुलम्मा चढ़ा रखा हो। बंबई के मुख्यमंत्री के रूप में उन्हें कभी जनता पर प्रहार करने में झिझक नहीं हुई—ऐसे अवसरों पर वह बला की निशानेबाज़ी, संकल्प की दृढ़ता और कार्यक्षमता से काम लेते।[2] उन्होंने खुद स्वीकार किया है कि उनकी पुलिस ने सैकड़ों बार गोली चलायी। मोरारजी का कहना है कि जिन दिनों संयुक्त महाराष्ट्र आंदोलन चल रहा था, नेहरू ने दिल्ली से फ़ोन पर उनसे

कहा कि 'सेना और टैंकों के इस्तेमाल में' उन्हें हिचकिचाने की ज़रूरत नहीं है, लेकिन मोरारजी को इस बात का गर्व है कि उन्होंने पुलिस की मदद से ही सारा काम चला लिया। उनका अनुमान है कि पुलिस की गोलियों से लगभग एक सौ व्यक्ति मारे गये।

गुजरात कांग्रेस की बैठकों में 'सर्वोच्च' वाली यह प्रवृत्ति हमेशा काम करती रही। वह अक्सर कहा करते थे, "मैंने आपकी बात सुन ली, लेकिन मैं जो कह रहा हूँ वही ठीक है।" लोगों का कहना था कि यदि वह एक क़दम भी आगे बढ़ते तो तानाशाह बन जाते।

कामराज-योजना के अंतर्गत सरकार से निकाले जाने पर मोरारजी को बहुत बुरा लगा, लेकिन इससे दो वर्ष पहले ही वह खुद भी गुजरात में 'दस साला नियम' के ज़बर्दस्त हिमायती थे, जिसके अनुसार राज्य के तीन बड़े-बड़े नेताओं—डॉक्टर जीवराज मेहता, रसिकभाई पारीख और रतुभाई अडानी—को मंत्रिमंडल से अलग होना पड़ता। गुजरात के इस सर्वोच्च नेता ने शायद यह नहीं सोचा कि दस वर्ष तक सरकार में रहने का वह जो नियम बना रहे हैं, उससे ख़ुद भी मारे जा सकते हैं। राज्य और केन्द्र में कुल मिलाकर मोरारजी स्वयं लगातार 24 वर्ष तक मंत्रि-पद पर बने रहे थे। गुजरात में उनके ख़िलाफ़ आवाज़ उठनी शुरू हुई—"मोरारजी भाई, आप भी इस्तीफ़ा दें।" वह इसके लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने इसी में बुद्धिमानी समझी कि 'दस साला नियम' को चुपचाप दफ़ना दिया जाये।

सिद्धांतवादी व्यक्ति होने का दावा करने और अपने को "ईश्वर की इच्छा का निमित्त मात्र" मानने पर भी मोरारजी अपने को कलंक से बचा नहीं सके। यह कहा जाने लगा कि अँग्रेज़ों की बारह वर्ष सेवा करने के बाद उनकी समझ में आया कि वह देश की 'कु-सेवा' कर रहे हैं, और उन्होंने अपने 'पापों का प्रायश्चित' करना तभी तय किया जब उनके अँग्रेज़ आक़ाओं ने उनके ख़िलाफ़ क़दम उठाया। एक सांप्रदायिक दंगे के दौरान डिप्टी-कलेक्टर के नाते किये गये उनके काम की अप्रैल 1930 में जाँच की गयी तो सरकार ने उन्हें 'अपने सांप्रदायिक झुकाव' के कारण पक्षपात करने का दोषी पाया और उनको वरिष्ठता के क्रम में चार स्थान नीचे कर दिया गया। वह अँग्रेज़ों के प्रति इतने वफ़ादार रहे थे कि जब उनके छोटे भाई पढ़ाई छोड़कर महात्मा गांधी के आंदोलन में शरीक़ होना चाहते थे तो मोरारजी ने उनको लिखित चेतावनी भेजी—"अगर तुम सरकार के ख़िलाफ़ आंदोलन में शरीक़ होते हो तो मैं तुम्हें रुपये नहीं भेज सकूँगा, क्योंकि मैं उसी सरकार की सेवा कर रहा हूँ।" लेकिन जब जाँच के बाद उनके ख़िलाफ़ रिपोर्ट हुई तो मोरारजी की "होशियारी से तराशी हुई, सँवारी हुई अंतरात्मा" अचानक चीत्कार कर उठी और उन्हें यह इलहाम हुआ कि अब बाक़ी जीवन पापों का प्रायश्चित करके गुज़ार देना चाहिए।

मोरारजी देसाई इस हद तक सदाचारी हैं कि 32 साल की उमर में ही उन्होंने अपनी पत्नी के साथ शारीरिक संबंध रखना समाप्त कर दिया। कांग्रेस में शामिल होने के कुछ वर्ष बाद वर्धा जाने पर उन्होंने गांधी के साथ एकांत में बातचीत करने के लिए समय चाहा। गांधी ने रात में 2 बजकर 45 मिनट पर मिलने का समय दिया। जब देसाई उनसे मिलने गये तो विचारधारा संबंधी दो प्रमुख मुद्दों पर बात हुई। उनमें से एक मुद्दा यह था कि टहलते समय महात्माजी हमेशा दो स्त्रियों के कंधों पर हाथ रखकर चलते थे। मोरारजी का कहना था कि निश्चय ही गांधी बहुत अनुशासित, कुप्रवृत्तियों से दूर और संयमी व्यक्ति थे,

जिनका अपने-आप पर पूरी तरह नियंत्रण था। फिर भी उनकी इस आदत से "बहुत बड़ा सामाजिक जोखिम" पैदा हो सकता है। देसाई की दलीलों से गांधी सहमत नहीं थे, लेकिन देसाई ने उनसे कहा कि उन्हें विश्वास है कि गांधीजी फिर इस पर सोचेंगे। और जिस दिन "मेरी बात से वह सहमत हो जायेंगे, अपनी इस आदत को बदल देंगे।" बाद में गांधीजी ने अपने अखबार हरिजन में लिखा कि उस नौजवान के तर्कों में काफ़ी सत्यता है। देसाई को एक विजय की अनुभूति हुई। लेकिन सभी जानते हैं कि गांधीजी ने अपनी आदत नहीं बदली। महत्व की बात यह है कि मोरारजी स्वयं महात्मा गांधी को उपदेश देने से नहीं चूकते थे।

इसलिए जब अपने को सदाचारी कहने वाले देसाई जैसे जाने-माने व्यक्ति पर यह आरोप लगाया गया कि "एक मुस्लिम महिला से घुले-मिले रहते हैं" तो लोगों को आश्चर्य हुआ। यह आरोप उन दिनों लगाया गया जब वह बंबई के मुख्यमंत्री थे। बंबई के मसख़रे आज भी कहते हैं कि सदाबहार केन्द्रीय मंत्री जगजीवनराम वहाँ के एक आलीशान अस्पताल में टाटाओं के सबसे ऊँचे चिकित्सकों में से एक डॉक्टर की देख-रेख में इलाज करा रहे थे। यह बड़े लोगों का डॉक्टर ऐसा रंगीन-मिजाज़ था कि उसके सामने इंग्लैंड के 'प्रोफ़्यूमो-कांड' के डॉक्टर स्टीफ़ेन वार्ड की क्या हैसियत होगी! 'प्रोफ़्यूमो-कांड' जग-ज़ाहिर होने से बहुत पहले ही इस डॉक्टर ने काफ़ी शोहरत पा ली थी—एक डॉक्टर की हैसियत से और एक ऊँचे समाज के छैला की हैसियत से भी। वह 'बड़े' मरीज़ों के मनोरंजन का बहुत ध्यान रखता था और उसके पास मिस कीलर व मिस मैंडी-जैसी अनेक सुंदरियाँ थीं। उनमें से एक रसभरी सुंदरी को डॉक्टर ने दिल्ली से आये 'बड़े' मरीज़ की देखभाल के लिए भेज दिया। अस्पताल में मोरारजी जगजीवनराम से मिलने आये तो उस सुंदरी ने अपना मोह-जाल फैला दिया। जगजीवनराम को बहुत कुढ़न हुई, और आज तक वह कुढ़न बाक़ी है। बात फैल गयी। उन दिनों केंद्रीय गृह-मंत्री गोविंदवल्लभ पंत थे। दूसरों का मज़ा किरकिरा करने में माहिर पंत ने उस सुंदर महिला को देश से निष्कासित कर पाकिस्तान भेज दिया, जहाँ से वह आयी थी। कुछ ज़बानदराज़ तो कहते हैं कि उसकी विदाई के आँसू-भरे दृश्य उनको अभी तक याद हैं।

एक मराठी पत्रिका ने इस 'कांड' के बारे में लगातार लेख छापे तो उनका प्रतिवाद नहीं किया गया, और ये कहानियाँ, जो संभव है कि अप्रामाणिक हों, सच बनी रहीं। लेकिन इन बातों में क्या रखा है! कोई कितना भी सदाचारी क्यों न हो, उसके अंदर भी कमज़ोरियाँ हो सकती हैं और उसके लिए उसे माफ़ कर दिया जाना चाहिए।

देसाई पर जो दूसरा कलंक का टीका लगा वह आज भी उनके चमचमाते सफ़ेद खादी के कपड़ों-जैसे जीवन पर एक अमिट काले धब्बे की तरह मौजूद है। इसका ताल्लुक़ उनके इकलौते पुत्र कांतिभाई देसाई से है, जिन्हें आज व्यापक रूप से "जनता सरकार के संजय गांधी" के नाम से जाना जाता है। हाल ही में कांतिभाई देसाई ने संजय से अपनी तुलना किये जाने पर एक विदेशी संवाददाता को अपने पिता के घर से बाहर तो खदेड़ दिया, पर एक पते की बात यह कही कि "संजय गांधी के पास कोई अनुभव नहीं था...जबकि मेरी उम्र 52 साल है और मैंने बहुत अनुभव इकट्ठे किये हैं।"[3]

दोनों के बीच इतनी समानता है कि नज़र आये बिना रह नहीं सकती। संजय पढ़ने में कभी अच्छा नहीं था और यही हाल कांतिभाई का था। वह इंटर

साइंस की परीक्षा में फ़ेल हो गये। जिस तरह इन्दिरा गांधी ने अपने लड़के की पढ़ाई-लिखाई के बारे में उसकी तरफ़दारी की और उसके पिछड़ जाने के बहाने निकाले, उसी तरह कांति के ईमानदार पिता मोरारजी देसाई ने भी पढ़ाई के मामले में अपने लड़के की नाकामयाबी को उचित ठहराते हुए कहा कि "उसके असफल होने का एक कारण यह था कि उसने मेरे कहने से साइंस पढ़ना शुरू किया ताकि वह इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर सके।" संजय ने सोचा, वह ऑटोमोबाइल इंजीनियर बनेगा। कांति उससे भी एक क़दम आगे निकले। वह ऐरोनॉटिकल इंजीनियर बनने का सपना देख रहे थे। वह टाटा एयरवेज़ कंपनी में पचास रुपये महीने पर अप्रेंटिस लग गये। लेकिन कुछ ही दिनों के अंदर वह और सपने देखने लगे। बंबई के बड़े-बड़े पूँजीपतियों को मंत्री के इस पुत्र में अपार संभावनाएँ दिखायी दीं। उन्होंने दाने फेंकने शुरू किये और उन दानों को चुगने में कांति को तनिक भी हिचकिचाहट नहीं हुई। संजय को आगे बढ़ाने के लिए तेजा था, कांति को बढ़ाने के लिए बिड़लाओं, शराफ़ों, रूइयाओं की क़तार लगी थी। देसाई-परिवार के लिए जयन्ती तेजा भी कोई अजनबी व्यक्ति नहीं था। दरअसल तेजा को मोरारजी देसाई ने ही तीनमूर्ति-भवन से परिचित कराया था। केन्द्रीय वित्त-मंत्री के पद पर काम करते समय देसाई ही 1962 में तेजा के पहले जहाज़ का उद्घाटन करने नागासाकी शिपयार्ड में गये थे।

मोरारजी देसाई बताते हैं कि एक दिन आर० डी० बिड़ला उनसे मिलने उनके घर पर आये। देसाई उस समय किसी से बातचीत में लगे थे, इसलिए बिड़ला को ड्राइंग-रूम में बैठना पड़ा। वहाँ उन्होंने कांति को देखा और पूछा कि वह आजकल क्या कर रहे हैं। कांति ने बताया कि वह टाटा एयरवेज़ में एप्रेंटिस है। बिड़ला ने सुझाव दिया कि भारत की बजाय उन्हें अमेरिका में एप्रेंटिसशिप के लिए जाना ज्यादा बेहतर होगा। कांति ने पूछा कि बाहर जाने के लिए पैसा कहाँ है ? बिड़ला ने फ़ौरन उन्हें अमेरिका भेजने का प्रस्ताव कर दिया। तेजा की झलक मिल रही है न !

जब मोरारजी को पता चला तो उन्होंने बिड़ला से कहा कि कांति के सामने इस तरह का प्रस्ताव नहीं रखना चाहिए था। लेकिन बिड़ला ने जवाब दिया कि उन्होंने "यह सुझाव बड़े सहज ढंग से दिया है और इसके पीछे उनका कोई इरादा नहीं है।" सचमुच बिड़ला का भला क्या इरादा हो सकता था ! वह तो बंबई के किसी भी तेज़ नौजवान को देखकर इस तरह का प्रस्ताव कर ही देते !

कुछ भी सही, कांति जल्दी-से-जल्दी धनवान बनने में बहुत कुशल साबित हुए। कुछ ही वर्षों के अंदर उनके चारों तरफ़ पैसा-ही-पैसा हो गया। अक्तूबर 1964 में कांति के व्यक्तिगत सचिव ने एक हलफ़नामा दिया जिसमें अन्य बातों के अलावा यह कहा गया था कि उसके मालिक के पास बम्बई में तीन कारें (दो फ़िएट और एक शेवरलेट), ज़मीन का बहुत बड़ा प्लॉट और बंबई के सबसे समृद्ध इलाक़े में चार फ़्लैट हैं। इसके अलावा विदेशों से मँगाये गये दो रेफ़्रीजिरेटर, एक पोर्टेबल रेफ़्रीजिरेटर, दो ग्रंडिग रेडियोग्राम, चीनी छुरी-काँटे और क्रॉकरी हैं तथा उन्होंने अपने रसोई-घर की मरम्मत कराने में दस हज़ार रुपये खर्च किये।

इन बातों पर मोरारजी की प्रतिक्रिया होती—"कांति तो एक क्रुद्ध नौजवान भर है।"

अपने लड़के के व्यापार-सम्बन्धी मामलों के बारे में मोरारजी देसाई निहायत

भोलेपन का परिचय देते हैं। कांति के न्यू इंडिया इंश्योरेंस कम्पनी की नौकरी स्वीकार करने के बाद कम्पनी के जनरल-मैनेजर जब मोरारजी से मिलने गये तो उन्होंने पूछा, "मैं यह जानना चाहता हूँ कि बीमे के काम के लिए किन कारणों से आपने कांति को अपने यहाँ नौकरी दी? जनरल मैनेजर ने उन्हें आश्वासन दिया कि कांति की नियुक्ति का इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि वह मोरारजी के लड़के हैं। मोरारजी ने यह जानना चाहा कि क्या और लोगों को आम तौर से जितनी तनख्वाह दी जाती है उससे ज्यादा कांति को दी जा रही है? जनरल-मैनेजर ने फिर उन्हें आश्वासन दिया कि कांति के साथ कोई पक्षपात नहीं किया गया है। इस जवाब से मोरारजी संतुष्ट हो गये। ऐसा लगता है, गोया वह किसी व्यापारी से इस बात की आशा कर रहे हों कि वह कहेगा कि उनके लड़के को इसलिए नौकरी दी गयी क्योंकि वह उनका लड़का है।

मोरारजी को यह विश्वास था कि उनका लड़का अपने ग्राहकों पर उनके प्रभाव का इस्तेमाल नहीं कर रहा है। असल में उनको गर्व था कि अपने पहले ही वर्ष में उनके लड़के ने दूसरों से ज्यादा लोगों का बीमा किया जिसके लिए उसे इनाम भी मिला। 1964 तक कांति के खिलाफ़ एक व्यापक अभियान शुरू हो गया था और महाराष्ट्र तथा गुजरात के कांग्रेस-जनों के बीच एक ज्ञापन बाँटा गया, जिसका शीर्षक था—"कांति देसाई की समृद्धि के बारे में।" इसमें कांति देसाई और फ़ोनिक्स मिल्स के सम्बन्धों की कहानी थी, जिससे कांति को सबसे पहली बार अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई थी।

काफ़ी पहले, जून 1949 में बंबई के ऐंटी-करप्शन ब्यूरो के पास एक शिकायत आयी, जिसमें आरोप लगाया गया था कि फ़ोनिक्स मिल्स के प्रबंधकों ने सामान की ख़रीद और खपत में भारी धोखाधड़ी की है। ब्यूरो के अफ़सरों ने मिल पर छापा मारा और कई ट्रक बहियाँ बरामद कीं। आरोपों की जाँच के लिए सूती कपड़े की वित्त-व्यवस्था से सम्बन्धित एक विशेषज्ञ नियुक्त किया गया जिसने अपनी रिपोर्ट में मिल-मालिकों की भयंकर ग़लतियों की पुष्टि की।

जिन दिनों रिपोर्ट आयी, मोरारजी बंबई के गृह-मंत्री थे। कुछ विचित्र कारणों से उन्होंने इस रिपोर्ट पर दुबारा जाँच करायी और दूसरी जाँच के लिए बड़ौदा के एक पुलिसमैन को नियुक्त किया। दूसरी जाँच में मामले की लिपाई-पुताई हो गयी। मिल से ज़ब्त किये गये सारे कागज़ात रूइयाओं को, जो मिल के मालिक थे, लौटा दिये गये और कुछ ही दिनों के अंदर अचानक हुई आगज़नी की एक घटना में ये सारे कागज़ात जलकर भस्म हो गये। एक साल के अन्दर कांति को रूइयाओं से 30 लाख के बीमे का कारोबार मिला।

संसद में कांति-कांड के धमाके से परेशान होकर मोरारजी ने लोक-सभा में विधिवत एक बयान दिया—"मेरे लड़के ने 1964 से ही अपने सारे व्यापारिक सम्पर्क समाप्त कर दिये और मेरे निजी सचिव के रूप में काम कर रहा है। उसके खिलाफ़ आरोप लगाये जाने पर मैंने पुलिस से इन आरोपों की जाँच करवायी और मैंने देखा कि वह इन चीज़ों से कोसों दूर है। केवल बददिमाग़ लोग यह अफ़वाहें फैलाने में लगे हैं कि उसके व्यापारिक सम्पर्क क़ायम हैं।" कौन-सा पुलिस-अफ़सर उनके लड़के के ख़िलाफ़ रिपोर्ट देता? बंबई के वरिष्ठ पुलिस-अधिकारियों को आज भी याद है कि कांति की शिकायत पर गंभीरता से अमल न करने के कारण किस तरह मोरारजी देसाई ने उनकी फ़ज़ीहत की थी। मोरारजी उस घटना को इस तरह बयान करते हैं—"1946 में मंत्रिमंडल का गठन होने के

वाद मुझे नरायन दवूलकर रोड पर एक मकान दिया गया —मेरे बंगले के बाहर कुछ लोग झगड़ रहे थे। झगड़ा और शोरगुल सुनकर मेरे लड़के ने पुलिस-कमिश्नर को फ़ोन किया कि वह ज़रूरी बंदोबस्त करें। मेरा लड़का उस समय 20 साल का था और वह कॉलेज में पढ़ रहा था। पुलिस-कमिश्नर को यह अच्छा नहीं लगा कि मेरा लड़का उन्हें फ़ोन करके आवश्यक क़दम उठाने का अनुरोध करे और उन्होंने मुझसे कहा कि कभी-कभी इस तरह के फ़ोन से नाज़ुक स्थिति पैदा हो सकती है। कमिश्नर की शिकायत मुझे उचित नहीं लगी...वह पुलिस-कमिश्नर एक योग्य व्यक्ति था, लेकिन मुझे वाद में पता चला कि वह अँग्रेज़ी हुकूमत के आम पूर्वाग्रहों से ऊपर नहीं उठ सका था...।"

कांति की वात पर ध्यान न देने के लिए पुलिस-अफ़सरों की लानत-मलामत से सम्वन्धित कहानी का दूसरा पहलू कुछ ऐसा था जिसे वहुत दिनों तक भुलाया नहीं जा सका।

जहाँ तक 1964 से अपने पिता की सेवा के लिए कांति के सभी व्यापारिक सम्वन्धों के तोड़ लेने की वात है, 10 अगस्त 1968 का ब्लिट्ज़ देखा जा सकता है, जिसमें आर० के० करंजिया ने मोरारजी के नाम एक खुला पत्र लिखा है और उन कर्मचारियों की सूची की फ़ोटो-कापी छापी है जो दोदसाल्स के प्रवंधकों के रूप में 1 जनवरी 1967 को काम कर रहे थे। इस सूची में पाँचवें स्थान पर कांति का नाम था। उन्हें डाइरेक्टर ऑफ़ सेल्स के रूप में दिखाया गया था, जिसका मूल वेतन 2050 रुपये था।

करंजिया के पत्र में एक और कहानी का ज़िक्र था। उसने संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रकाशन को उद्धृत किया था, जिसमें सितम्वर 1967 में रायो द जनेरो में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के गवर्नरों की वैठक का संक्षिप्त विवरण था। मुद्रा कोष की इस वैठक में जिस भारतीय प्रतिनिधि-मंडल ने भाग लिया था उसके सदस्यों के भी नाम इसमें दिये गये थे, जो इस प्रकार थे : गवर्नर—मोरारजी देसाई; आल्टरनेट गवर्नर—एल० के० झा; और सलाहकार—एस० के० वनर्जी, कांतिलाल देसाई, एस० गोहेन आदि।

करंजिया ने देसाई से पूछा, "हम जानना चाहते हैं कि क्या भारतीय प्रतिनिधि-मंडल के सलाहकार के रूप में ब्राज़ील में कांति के ठहरने का ख़र्च सरकार ने वर्दाश्त किया? आपके इतने दिनों के सार्वजनिक जीवन की वजह से कांति को आज लाभ नहीं मिल रहे तो उसे कैसे दर्जनों विदेशी व्यापारिक व अन्य संगठनों से निमंत्रण आते रहते हैं? क्या नयी दिल्ली के इतने वड़े सचिवालय में कांति देसाई के अलावा और कोई ऐसा निजी सचिव है जिसे व्यक्तिगत हैसियत से टोक्यो, ताइवान, मनीला, सिओल आदि से निमंत्रण मिलते हों?"

राज्य-सभा में प्रसोपा के एक सदस्य वाँकेविहारी दास ने कोरियन टाइम्स के कुछ अंश पढ़कर सुनाये, जिनमें दक्षिण कोरिया के उप-विदेशमंत्री के साथ कांति की वातचीत के वारे में लिखा था। दास ने जानना चाहा कि किस प्रकार मोरारजी देसाई के अवैतनिक निजी सचिव अचानक भारत के भ्रमणकारी राजदूत वन गये?

पता चला कि 1968 में मोरारजी जव मनीला गये थे तभी कांति दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के दौरे पर गये। फिर दक्षिण कोरिया और भारत ने एक समझौते पर दस्तख़त किये, जिसके अनुसार कोरिया को भारत से 300 टन वाल ख़रीदने थे और वदले में वह भारत को गर्भ-निरोधक सामानों का निर्यात

करता। समझौते को दक्षिण कोरिया के उप-विदेश-मंत्री और भारत की ओर से 'तीन सदस्यीय भारतीय आर्थिक मिशन' के नेता कांति देसाई ने अंतिम रूप दिया। तत्कालीन वाणिज्य-मंत्री दिनेशसिंह को इस प्रतिनिधि-मण्डल के बारे में कोई जानकारी तक नहीं थी।

जिस प्रकार इन्दिरा गांधी दावा करती थीं कि उनकी जानकारी में उनके प्रधानमंत्री होने से उनके लड़के ने अपने व्यापार में कोई फ़ायदा नहीं उठाया, उसी प्रकार मोरारजी ने भी संसद में अपनी अनभिज्ञता की दलील दी। वेहद मासूमियत का नाटक करते हुए उन्होंने कहा, "मेरा लड़का क्या-क्या करता है, इसके वारे में मुझे कोई विस्तार से जानकारी नहीं है। मैं हमेशा उसकी गतिविधियों से वहुत निर्लिप्त रहता आया हूँ और इस वात का ध्यान रखता रहा हूँ कि मेरी सरकारी ज़िम्मेदारियों को पूरा करने में वह कहीं वीच में न आये...।"

मोरारजी जव अंततः प्रधानमंत्री वन गये तो लोगों का कहना था कि "अव वह एक वदले हुए इंसान हैं।" उन्होंने अपना अड़ियलपन अव छोड़ दिया है। अव वह पहले की तरह कठमुल्लावादी नहीं हैं और थोड़े नरम-मिजाज़, थोड़े संतुलित और थोड़े उदार हो गये हैं। लेकिन ऊपरी पर्त को थोड़ा-सा खुरचने पर मोरारजी का वही पुराना रूप मिल जायेगा।

प्रधानमंत्री मोरारजी का असली रूप उनके संवाददाता-सम्मेलनों में नहीं छिपा रह पाता था और शायद यही वजह थी कि उन्होंने यदि अक्सर नहीं तो महीने में कम-से-कम एक वार संवाददाता-सम्मेलन करने के वायदे को जल्दी ही भुला दिया।

24 मार्च 1977 को उनके पहले संवाददाता-सम्मेलन में एक पत्रकार ने सवाल किया, "क्या आप 1 सफ़दरजंग रोड (भूतपूर्व प्रधानमंत्री का निवास) पर रहने जा रहे हैं?"

मोरारजी देसाई : मैं क्यों वहाँ जाऊँगा? क्या उस मकान के साथ कोई पवित्रता जुड़ी हुई है?

कुछ ही महीनों वाद मोरारजी 1 सफ़दरजंग रोड पर रहने लगे।

उनसे पूछा गया—कई राज्य-सरकारों को गिराने की वात चल रही है। क्या आप अपनी मंजूरी देंगे?

देसाई : मैं किसी राज्य की सरकार को गिराने नहीं जा रहा हूँ। लेकिन यदि जनता खुद ही इन सरकारों को गिरा दे तो मैं क्या करूँ?

प्रश्न : महोदय, जयप्रकाश नारायण ने सुझाव दिया है कि कांग्रेस की जिन राज्यों में हार हुई है (1977 के लोक-सभा-चुनावों में) वहाँ राज्य विधान-सभाओं का नये सिरे से चुनाव कराया जाये...।

देसाई : जहाँ कांग्रेस हार गयी है...नहीं, नहीं। यदि वहाँ की सरकारें वैधानिक हैं और उन्हें बहुमत प्राप्त है, तो हम कैसे नये सिरे से चुनाव करा सकते हैं? यह काम सही ढंग से किया जाना चाहिए। विलकुल इस तरह किया जाना चाहिए कि हम उन ग़लतियों को नहीं दुहराने लगें जो पिछली सरकार करती थी।

लगभग एक महीने वाद ही, मोरारजी ने धमकी दी कि यदि कार्यकारी राष्ट्रपति वी० डी० जत्ती ने देश के 9 कांग्रेस-शासित राज्यों की विधान-सभाएँ

भंग करने के आदेश पर हस्ताक्षर नहीं किये तो लोक-सभा के ताज़ा चुनावों का आदेश दिया जायेगा।

देसाई के अधिकांश संवाददाता-सम्मेलनों में केवल शब्दाडम्बर देखने को मिलता था, जिसमें कभी कोई किसी नतीजे पर नहीं पहुँचता था—हाँ, देसाई के ख़ास मज़ाकों और हाज़िर-जवाबी का कभी-कभी नमूना भी देखने को मिल जाता था।

16 मई 1977 को एक रिपोर्टर ने कहा—आपके साथी श्री चरणसिंह पार्टी और सरकार दोनों में विवाद के विषय बने हुए हैं...।

देसाई ने उस रिपोर्टर को बीच में टोकते हुए कहा, "सरकार के अंदर वह एकदम विवाद के विषय नहीं हैं। आप किसी तरह का विवाद क्यों देख रहे हैं? सरकार में कहाँ आपको विवाद दिखायी दे रहा है? विवाद केवल अख़बारों में है। मेरे पास कोई विवाद नहीं है...।

प्रश्न : माननीय प्रधानमंत्री, आपने अभी कहा कि श्री चरणसिंह को लेकर सरकार के अंदर कोई विवाद नहीं है, लेकिन अख़बारों में एक ख़बर छपी है कि गृह-मंत्री ने सरकारी फ़ाइल में अनुचित ढंग से हेरा-फेरी की और आप ख़ुद भी सम्बद्ध अधिकारी से नाराज़ थे। असलियत क्या है?

प्रधानमंत्री : यह आप अख़बारों से पूछिये...उन्होंने कब मुझे नाराज़ देखा? मैं किसी से नाराज़ नहीं हूँ।

प्रश्न : सच्चाई क्या है?

प्रधानमंत्री : मैंने आपको सच्चाई के बारे में बता दिया। आप एक पत्रकार की बात पर भरोसा कर रहे हैं। इससे पता चलता है कि हमने आपको कैसी आज़ादी दी है। यह इसका सबूत है। हम इसे ख़त्म करना नहीं चाहते। जो कुछ लिखा जा रहा है, उसे मैं रोकना नहीं चाहता। लेकिन अगर आप ग़लत सूचनाओं को अपने दिमाग़ पर लादे रहना चाहते हैं तो मैं क्या कर सकता हूँ? इसीलिए आपको भविष्य में बहुत सावधान रहने की ज़रूरत है।

प्रश्न : सवाल यह है कि हम सही बात जानना चाहते हैं।

प्रधानमंत्री : आप सारी बातें खोल देना चाहते हैं। मैं आपकी मदद करना नहीं चाहता।

प्रश्न : लेकिन यह एक स्वतंत्र समाज है।

प्रधानमंत्री : मेरी बात सुनिये, मैं इस काम में आपकी मदद करना नहीं चाहता।

प्रश्न : स्वतंत्र समाज में सारी बातें सबके सामने आनी चाहिए।

प्रधानमंत्री : लेकिन आपकी मर्ज़ी के मुताबिक़ नहीं।

प्रश्न : फिर अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ ही आप बताइये।

प्रधानमंत्री : वह मैं कर रहा हूँ। आप चाहते हैं कि मैं वही कहूँ जो आप चाह रहे हैं।

प्रश्न : आप हमारे ऊपर कीचड़ उछाल रहे हैं।

प्रधानमंत्री : मुझे अफ़सोस है। मैंने आप पर क्या कीचड़ उछाला? आप बताइये—मैं माफ़ी माँग लूँगा। आप ज़रूर बताइये—मैंने

क्या कीचड़ उछाला है !

प्रश्न : यही कि अखबारों में ग़लत छपा है।

प्रधानमंत्री : मैं कहता हूँ कि ग़लत छपा है—यह कीचड़ उछालना हुआ। आप ही बताइये, यह कैसे कीचड़ उछालना हुआ ? आप साबित करिये। आप पहले अपनी ख़बर को सही साबित करिये तब मैं बताऊँगा...आप जो चाहें छापते रहें...।

प्रश्न : महोदय, सवाल बहुत साफ़ है। सवाल यह है कि क्या गृह-मंत्री ने बी० एल० डी० के अध्यक्ष की हैसियत से चुनाव-आयोग को जो पत्र लिखा था वह फ़ाइल में से निकाल लिया गया ?

प्रधानमंत्री : मैं इस बारे में क्यों कुछ कहूँ ? यह मेरे रिकॉर्ड में कहीं नहीं है। मुझे इसकी कोई जानकारी नहीं है। हाँ, कुछ हुआ ज़रूर था, लेकिन अब कोई ऐसी बात नहीं है। आप पिछली बातों के लिए इतने परेशान क्यों हैं ? क्या आप लोग डॉक्टर हैं, जिसके लिए पोस्टमार्टम ज़रूरी है ?

प्रश्न : क्योंकि वह पत्र वापस फ़ाइल में पहुँच गया।

प्रधानमंत्री : यदि वह पत्र वापस फ़ाइल में है तो हो सकता है वह फ़ाइल से बाहर गया ही न हो ? क्या सबूत है ?

प्रश्न : आप इसका लाभ लेना चाहते हैं।

प्रधानमंत्री : क्यों न चाहूँ ? आपको भी एक लाभ देना चाहता हूँ। अगर मैं कोई वाजिब लाभ पाना चाहता हूँ तो आपको क्या एतराज़ है ? हाँ, यदि मेरे वाजिब लाभ उठाने में आपकी दिलचस्पी है तो आप भी वैसा करने की कोशिश करें। लेकिन मैं आपको मदद नहीं करने जा रहा।

कई लोगों का कहना है कि मोरारजी देसाई इस चक्कर में नहीं पड़ते कि वह अपनी कैसी तस्वीर पेश कर रहे हैं। वह इस बात की भी परवाह नहीं करते कि उनके बारे में क्या लिखा जा रहा है। लेकिन अनेक पत्रकारों का, जिन्होंने उनके बारे में कभी कुछ लिखा है, अनुभव कुछ और ही है। प्रधानमंत्री बनने पर नया-नया जोश था तो उन दिनों देसाई ने इन्दिरा गांधी की ही तरह रोज़ सवेरे जनता से मिलना शुरू किया। चरणसिंह भला क्यों इस काम में पीछे रहते—उन्होंने भी रोज़ सवेरे अपना दरबार लगाना शुरू किया। एक महिला-पत्रकार ने दिल्ली के इन तीनों दरबारों के बारे में लिखते समय इन्हें "दीवान-ए-आम" कहा और लिखा कि इन्दिरा गांधी जहाँ अपने "बेहद आकर्षक और मोहक रूप में" नज़र आती थीं, मोरारजी देसाई उतनी ही "उतावली और अत्यंत रूखेपन के साथ" लोगों से मिलते थे। इस रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही साउथ-ब्लाक से उस पत्रकार के पास फ़ोन गया, "कल के अखबार में जिसने रिपोर्टिंग की थी उससे प्रधानमंत्री मिलना चाहते हैं।"

बाद में पता चला कि प्रधानमंत्री इस बात से उतना परेशान नहीं थे कि उन्हें यह कहा गया था कि वे "उतावली और रूखेपन के साथ" मिलते थे। उस रिपोर्टिंग में लिखी गयी एक दूसरी बात से उन्हें परेशानी थी। उन्होंने छूटते ही उस महिला-पत्रकार से पूछा, "आफ़्टर शेव...आफ़्टर शेव लोशन की दिलकश

ख़ुशबू...आपने यह लिखना क्यों ज़रूरी समझा ?" उन्होंने अक्सर लोगों से कहा है कि वह शेविंग सोप तक का इस्तेमाल नहीं करते, केवल पानी से ही दाढ़ी बना लेते हैं। और अब लिखा जा रहा है आफ़्टर शेव लोशन के बारे में ! वह भी शायद विदेशी हो। पत्रकार ने बताया कि यह तो महज़ एक 'आब्ज़र्वेशन' था और वह नहीं समझतीं कि यह किसी भी रूप में आपत्तिजनक है।

"लेकिन आप जानती हैं, यह एक ऐसी टिप्पणी है जिसका लोग ग़लत अर्थ लगा सकते हैं," मोरारजी ने कहा, "वे यह सोचने लगते हैं कि आप घुमा-फिरा कर क्या कहना चाहती हैं। मिसाल के तौर पर एक अमेरिकी पत्रकार ने अपने किसी लेख में लिखा कि मैं दिन-भर में चार बार कपड़े बदलता हूँ। इससे मेरे बारे में एक अजीब-सी धारणा बनती है...!"

विषय बदलकर वह औरतों के बारे में बातें करने लगे और उन्होंने इस 'झूठे प्रचार' की चर्चा की कि वह औरतों के ख़िलाफ़ हैं। वर्षों पहले उन्होंने कुछ कहा था जिसके विरुद्ध संसद की महिला-सदस्यों ने एक प्रकार से विद्रोह कर दिया था। प्रधानमंत्री बनने के बाद टाइम ने उनकी उस पुरानी टिप्पणी को फिर से उद्धृत किया था। मोरारजी ने कहा, "मैं महिलाओं का सबसे बड़ा समर्थक रहा हूँ और विधान-मंडल में मैंने अपेक्षाकृत ज़्यादा औरतों को स्थान दिया है। लेकिन इतिहास के तजुर्बों और भारत, श्रीलंका तथा इसराइल की तीनों महिला-प्रधानमंत्रियों के अनुभवों से सबक़ लेकर मैंने अपने विचार बदल दिये। मैं आपको बता दूँ—अगर मिसेज़ थैचर को ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बना दिया जाये तो वह भी वैसा ही आचरण करने लगेंगी। देखिये, कुल मिलाकर महिलाएँ पुरुषों की तुलना में ज़्यादा विनम्र होती हैं और वे उतनी क्रूर नहीं होती हैं जितने पुरुष। लेकिन जब कोई औरत क्रूरता पर उतारू हो जाती है तो वह सारे रिकॉर्ड तोड़ देती है...फिर तो पुरुष उसके सामने कहीं नहीं टिकता...।" संसद में महिलाओं के ज़बर्दस्त विरोध के बाद देसाई ने 'विदेशी महिलाओं' से माफ़ी माँग ली, पर देश की औरतों से माफ़ी माँगने से इंकार कर दिया। लेकिन अंततः यहाँ की भी औरतों ने मोरारजी-जैसे अड़ियल आदमी से माफ़ी मँगवा ही ली। औरतों के हठ का जवाब नहीं !

मोरारजी ने महिला-पत्रकार से कहा, "मैं औरतों से नफ़रत नहीं करता।" सचमुच, उन्होंने ठीक ही कहा। तारकेश्वरी सिन्हा उन महिला-राजनीतिज्ञों में से हैं जिन्हें मोरारजी के काफ़ी क़रीब रहने का सौभाग्य मिला और वह दावे के साथ कहती हैं कि जितने बुज़ुर्गों से उनकी भेंट हुई है उनमें मोरारजी बेहद शिष्ट लगे। उन्हें वे दिन याद आते हैं जब वह मोरारजी के मंत्रालय में उप-मंत्री थीं। देसाई इतने संयमी और आत्म-अनुशासित हैं कि भीषण गर्मी में भी वह पंखा नहीं चलाते। तारकेश्वरी इस तरह के संयम में विश्वास नहीं करती थीं। जब वह देसाई से मिलने गयीं तो उन्होंने जाकर पंखा चला दिया। देसाई ने कोई विरोध नहीं किया और जब तारकेश्वरी अगली बार उनसे मिलने आयीं तो देसाई ने ख़ुद ही उठकर पंखा चला दिया। तारकेश्वरी को बहुत अजीब लगा कि एक बुज़ुर्ग आदमी उतनी दूर चलकर स्विच ऑन करे और वह ख़ुद ही इसके लिए उठने लगीं, पर देसाई नहीं माने। उन्होंने ही पंखे का स्विच दबाया। उम्र अधिक होने से क्या हुआ—आत्मा तो अभी जवान है ! प्रधानमंत्री के रूप में अपने पहले संवाददाता-सम्मेलन में उन्होंने कहा, "उम्र अधिक होने से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, आदमी को मन से जवान होना चाहिए। लेकिन अगर उम्र का भी सवाल पैदा हो तो अँग्रेज़ी कैलेंडर के अनुसार मैं अभी केवल 19 साल का हूँ।" (देसाई 29

फ़रवरी को पैदा हुए थे)।

अपनी विदेश-यात्रा के समय देसाई ने एयर इंडिया के व्यापारिक विमान से यात्रा करने का फ़ैसला किया। इसकी वजह से पैदा हुई असुविधाओं के बारे में एक संवाददाता ने लिखा। उसने यह भी लिखा कि इस यात्रा में कांति देसाई भी मोरारजी के साथ थे और वे एक तरफ़ के रियायती टिकट (दिल्ली-अम्सटर्डम) पर यात्रा कर रहे थे। पर वे लंदन में रुक गये। अम्सटर्डम से लंदन तक की यात्रा के लिए उनसे अलग से पैसा नहीं लिया गया। "ज़ाहिर है कि एयर इंडिया ने श्री कांतिभाई देसाई के प्रति अपनी सद्भावना का विशेष रूप से परिचय दिया।"

उस संवाददाता को प्रधानमंत्री से मिलने के लिए संसद-भवन में बुलाया गया—"आपने वह ख़बर दी थी या आपके किसी अन्य सहयोगी ने?" प्रधानमंत्री ने पूछा।

"मैंने दी थी।" संवाददाता ने कहा।

"मुझे अफ़सोस है कि आपके पास ग़लत जानकारी थी।"

उस रिपोर्टर को पक्का पता था कि उसकी जानकारी सही थी, पर देसाई भी अपनी बात पर अड़े थे। उसने कहा, "किस बारे में? आपके लड़के के बारे में?" संवाददाता ने सोचा कि इस बात से शायद वह चुप हो जायें। पर वह भी अपनी बात पूरी तरह समझाने के लिए तैयार बैठे थे। उन्होंने बताया कि उनका लड़का उनका परिचारक है और उसने अपना कारोबार इसीलिए छोड़ दिया है ताकि वह उनकी देखभाल कर सके। "आपको पता है मैं 81 साल का हूँ और मेरे साथ कोई-न-कोई मेरी मदद के लिए चाहिए। अगर मेरा बेटा मेरी मदद करता है तो इसमें क्या नुक़सान है?"

उस रिपोर्टर ने जवाब दिया कि इसमें कोई नुक़सान नहीं है, सिवाय इसके कि कांति देसाई पार्टी में या सरकार में किसी पद पर नहीं हैं। रिपोर्टर ने याद दिलाया कि जनता पार्टी की सफलता के पीछे एक प्रधानमंत्री के सुपुत्र की करतूतों का काफ़ी हाथ है।

"क्या आप मुझसे यह कह रहे हैं कि मेरा लड़का भी दूसरा संजय गांधी है?" प्रधानमंत्री ने शांत लहज़े में कहा।

पत्रकार ने जवाब दिया कि 'मेरा कहना या न कहना महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण यह है कि लोग क्या समझ रहे हैं?' संवाददाता-सम्मेलनों में प्रधानमंत्री के साथ उनके लड़के के मौजूद रहने का क्या औचित्य है? सार्वजनिक सभाओं में क्या अपने पिता के साथ उसका रहना ज़रूरी है? यहाँ-वहाँ, हर जगह वह प्रधानमंत्री के साथ-साथ क्यों रहता है?

अचानक देसाई उस पत्रकार से अपने बुढ़ापे के बारे में, अपने प्रति अपने लड़के की निष्ठा के बारे में बात करने लगे, "मैं जानता हूँ कि लोग उसके बारे में बातें करते हैं, लेकिन मैं यह भी जानता हूँ कि वह कोई ग़लत काम नहीं कर सकता। जब से मैंने प्रधानमंत्री का पद संभाला है, आप उसके द्वारा किया गया एक भी ग़लत काम बता दें तो मैं वायदा करता हूँ कि उसके खिलाफ़ कार्रवाई करूँगा; ऐसी हालत में इस्तीफ़ा देने में भी नहीं हिचकिचाऊँगा।"

एयर इंडिया का मॉस्को-स्थित मैनेजर बेहद घबराया हुआ था। उसकी डेस्क के सामने यात्रियों की भीड़ लगी थी जो अपने टिकटों को कन्फ़र्म करने के लिए खड़े थे, लेकिन बेचारे मैनेजर के पसीने छूट रहे थे। टिकटों को हाथ में लेकर इधर-

उधर रखते हुए उसने फिर कहा, "मुझे फ़ौरन क्रेमलिन जाना है।"

मामला क्या है? क्रेमलिन जाने की ऐसी कौन-सी ज़रूरत आ पड़ी? "प्रधानमंत्री के लड़के कांतिभाई ने फ़ौरन मुझे क्रेमलिन बुलाया है। वह अपने टिकट को बदलवाना चाहते हैं।"

कांति अपने बूढ़े पिता के साथ मॉस्को गये थे, लेकिन अब वह कहीं और जाना चाहते थे। क्या उनसे यह नहीं उम्मीद की जाती थी कि प्रधानमंत्री के साथ वह वापस भारत तक आयें?

"नहीं, वह यूरोप जाना चाहते हैं," मैनेजर ने कहा और क्रेमलिन की ओर तेज़ी से रवाना हो गया।

उधर सोवियतेंस्काया होटल में प्रधानमंत्री का दल रंगरेलियाँ मना रहा था। संगमरमर के बड़े-बड़े खंभों, शानदार झाड़-फ़ानूसों और नाच के लिए बने विशाल कक्षों वाला यह होटल ज़ारशाही के दिनों में राजघराने के लोगों का क्लब था, पर अब सोवियत सरकार ने इसे विदेशी प्रतिनिधिमंडलों के लिए एक विशिष्ट होटल बना दिया है। 12 लोगों के इस दल में एयर इंडिया के तजुर्बेकार पाइलट और बेहद ख़ुशमिजाज़ विमान-परिचारिकाएँ शामिल थीं। वे देसाई के विमान को दिल्ली से यहाँ तक लाये थे, लेकिन विमान लंदन जा चुका था और ये लोग यहीं रुक गये थे। सातों दिन, जब प्रधानमंत्री सोवियत संघ में ठहरे रहे, यह दल सोवियतेंस्काया होटल में खाता-पीता रहा और होटल के बरामदे सारी रात इनकी रंगरेलियों से गूँजते रहे। लगता था, जैसे दास्तोवस्की के पात्र ज़िंदा हो गये हों। होटल में ठहरे भद्र मेहमानों के लिए सारा-कुछ बहुत परेशानी पैदा करने वाला था।

भारत वापस आते समय जहाज़ तेहरान में रुका और कांति अपना सामान लेकर उतर गये। उनके स्वागत के लिए ईरान के शहंशाह का नज़दीकी वही परिवार हवाई अड्डे पर मौजूद था जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने कुद्रेमुख परियोजना के लिए इमरजेंसी के दिनों के एक वी० आई० पी० को काफ़ी राशि दी थी। उस समझौते की ढीली गाँठों को थोड़ा और कसा जाना था तथा किसी और बड़ी राशि के दिये जाने की फुसफुसाहट दूर से सुनी जा सकती थी। कुछ दिन तेहरान में गुज़ारने के बाद कांति देसाई पेरिस और स्विट्ज़रलैंड के लिए रवाना हो गये। ताज्जुब है कि उन्हें यह याद ही नहीं रहा कि उनके पिता की उम्र 81 साल है और उन्हें मदद की ज़रूरत है!

अगर मोरारजी देसाई डिप्टी-कलेक्टर के रूप में नौकरी करते रहे होते तो वह 1951 में रिटायर हो जाते। उसके छब्बीस वर्ष बाद वह भारत के प्रधानमंत्री बने। ज़्यादा समय नहीं हुआ कि उन्हें ऐसे दिन भी गुज़ारने पड़े थे जब उन्हें 'ख़त्म' समझकर लोगों ने भुला ही दिया था। चाहे जो हो, यह उनकी ज़बर्दस्त वापसी उनके धीरज और ज़िद की एक महान विजय है।

उन्होंने कई बड़े-बड़े ओहदों पर काम किया और स्वास्थ्य, खान-पान तथा 'जीवन-जल' की दैनिक खुराक के बारे में अपनी व्यक्तिगत सनक के साथ-साथ स्पष्टवादी और खरा इंसान होने के कारण उन्हें बहुत सारे लोगों से तारीफ़ मिली। लेकिन उनके अंदर एक महान नेता-जैसी चमक कभी नहीं दिखायी दी। बुनियादी तौर पर वह एक ऐसे आदमी बने रहे जो फ़ाइलों में फँसा रहता हो, जो क़ानून और व्यवस्था के लिए परेशान रहता हो। बंबई में एक नौजवान मंत्री के

रूप में वह रात में सड़कों पर घूमते रहते थे और ज़रूरत से ज़्यादा स्पीड से जाने वाली गाड़ियों और ट्रकों के नंबर नोट करके पुलिस को सौंप देते थे। उनके पास अगर सरकार चलाने का कोई फ़लसफ़ा है तो वह वही है जो उन 12 "पाप-भरे वर्षों" में बन सका जब वे अँग्रेज़ हुक्मरानों की नौकरी में थे और जिससे बाद में नफ़रत करने लगे थे। उनके अंदर न तो नेहरू-जैसा कोई करिश्मा है और न लालबहादुर शास्त्री-जैसी शराफ़त या विनम्रता। उनके पास हमेशा नौकरी की शर्तों और नियमों से बँधे किसी मजिस्ट्रेट की रुखाई और अड़ियलपना रहा और उनका नज़रिया भी किसी ऐसे प्रशासक से बढ़कर नहीं रहा है जिसके ज़िम्मे जनता की शिकायतें दूर करने का काम हो। केवल दिमाग़ी उपकरणों से ही कोई अच्छा प्रधानमंत्री नहीं बन सकता। इससे वह केवल फ़ाइलें खिसका सकता है या उनका ढेर लगा सकता है।

जनता पार्टी के पहले प्रधानमंत्री की त्रासदी यह है कि वह बुनियादी तौर पर डिप्टी-कलेक्टर ही बना रहा है।

टिप्पणियाँ

1. मोरारजी देसाई, द स्टोरी ऑफ़ माइ लाइफ़, मैकमिलन, नयी दिल्ली, 1977।
2. फ्रैंक मोरेस, इंडिया टुडे, मैकमिलन, नयी दिल्ली।
3. पाक्षिक इंडिया टुडे में प्रकाशित कांति देसाई का इंटरव्यू, 16-31 दिसंबर 1977।

3

चरणसिंह—"ताज आपके सिर पर ही होगा"

कम-से-कम तीन भविष्यवक्ताओं ने चरणसिंह से वायदा किया है कि ताज आपके सिर पर ही रखा जायेगा। 76-वर्षीय गृह-मंत्री अपने को जनता पार्टी का सरदार पटेल समझते हैं और उनको अफ़सोस है तो एक ही बात का—कि उनकी उम्र दस साल कम क्यों न हुई ?[1] लेकिन उनके ज्योतिषियों, तांत्रिकों व गुरुओं का कहना है कि चिंता न कीजिये, आप ज़रूर प्रधानमंत्री बनेंगे। उनके दरबार के इर्द-गिर्द भी वही परिचित चेहरे घूमते नज़र आते हैं जिनकी इन्दिरा की मजलिस में क़तार लगी रहती थी—नेमिचंद्र जैन उर्फ़ चन्द्रास्वामी, जो रातोंरात एक चालबाज़ ठेकेदार से ऐसे तांत्रिक बन गये कि ऊँचे लोगों के समाज में चल निकले; लखनऊ के तथाकथित तांत्रिक, व्यसन-रत पुरुषोत्तम नाथ कपूर जो ट्रेन के एक वातानुकूलित डिब्बे में एक औरत और एक बोतल शराब के साथ पकड़े गये थे; रहस्यमय जय गुरुदेव, जिनके नारे शहरों की दीवारों पर जब-तब इस तरह दिखायी देने लगते हैं जैसे किसी को पित्ती उछल आये। यह सभी और अनेक पण्डित, ओझा, टोटका करने वाले, झाड़-फूंक करने वाले उनके यहाँ मधु लिमये और श्यामनंदन मिश्र और नानाजी देशमुख-जैसे लोगों के साथ कंधे-से-कंधा सटाये नज़र आते हैं—ये लोग जिसे कल गद्दी पर बिठाने का वायदा करते हैं आज उसकी मेहरबानियों के लिए आपस में होड़ लगाते हैं। और अपने आक़ा के लिए इन भाँति-भाँति के गुरुओं व स्वामियों को जमा करना दरबारी मसखरे राजनारायण का काम है।

राजनारायण ने ही चरणसिंह को सबसे पहले 'चेयरसिंह' (कुर्सी सिंह) नाम दिया था। यह तब की बात है जब लोहिया-भक्त राजनारायण उन दिनों लखनऊ के बेताज बादशाह चन्द्रभानु गुप्ता के ढोलकिया बने हुए थे और चरणसिंह की आँख का काँटा। उनका काम था उत्तर प्रदेश विधान-मंडल के भीतर व बाहर चरणसिंह पर कीचड़ उछालना, उनको नंगा करना। चरणसिंह पर निशानेबाज़ी करना आसान था—इधर से उधर पलट जाने में उन्हें कोई मात नहीं दे सकता था। तीन दिन में वह तीन बार एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी तरफ़ हुए।

'दलबदलुओं का सरताज' ऐसा ख़िताब है जो मानो उनके लिए ही बना हो।

उत्तर प्रदेश में बनिया-ब्राह्मण प्रभुत्व पर जाटों-अहीरों की ओर से हमला बोलने से पहले चरणसिंह ने अपनी वफ़ादारी का आश्वासन देते हुए सी० बी० गुप्ता को एक खत लिखा। लेकिन छोटे क़द के उस बेहद चालाक व्यक्ति को अपने दोस्तों और दुश्मनों की ग़ज़ब की पहचान है—उसने फ़ौरन ही एक व्यंग्य-भरा जवाब चरणसिंह को लिख भेजा, "पंतजी ने आपको अपना संसदीय सचिव बनाया। मुझे पता है, आप उनके प्रति कितने वफ़ादार थे! डॉ० संपूर्णानंद ने तो आपको बाक़ायदा मंत्री ही बना दिया। उनके प्रति भी आपकी वफ़ादारी मुझसे छिपी नहीं है। मुझे पता है कि मैं आपकी वफ़ादारी पर कितना भरोसा कर सकता हूँ!'

1946 में गोविन्दवल्लभ पंत को एक संसदीय सचिव की तलाश थी और उनको गाज़ियाबाद का यह निठल्ला वकील मिल गया (ऐसे ही बहुत बाद को भिवानी का भी एक निठल्ला वकील किसी को मिल गया था।)। पंत को आदमी पसंद आया और उन्होंने उस पर विश्वास किया। लेकिन चरणसिंह को लगा कि उनको अपनी सेवाओं का वाजिब इनाम नहीं मिला। शुरू से ही उनके मन में मज़बूती से एक गाँठ बन गयी थी और उनको यक़ीन हो गया था कि जाटों को अपनी आर्थिक शक्ति के अनुकूल सामाजिक व राजनीतिक रुतबा कभी नहीं मिलेगा। उनके ज़िले मेरठ में जाट सबसे महत्वपूर्ण खुशहाल सम्पत्तिधारी जाति थे, लेकिन गाँवों की परम्परागत ऊँच-नीच में उनको अभिजात वर्ग का दर्जा नहीं दिया जाता था। उनको 'पिछड़ा' हुआ माना जाता था और चरणसिंह को महसूस होता था कि उन्हें जान-बूझकर उच्च वर्ग से नीचे रखा जा रहा है। भारत के गृह-मंत्री होने के बाद लखनऊ में एक भाषण देते हुए उनकी यह भावना उनकी ज़बान पर आ ही गयी। जनता पार्टी के विधायकों से उन्होंने कहा, "1946 में मुझे केवल संसदीय सचिव बनाया गया जबकि मेरे अंदर इससे ज़्यादा क़ाबलियत थी।"[2]

जब वह पंत के प्रति वफ़ादार थे उन्हीं दिनों एक अलग जाट-राज्य की स्थापना के लिए ब्रिटिश गवर्नर के साथ चुपके-चुपके साँठ-गाँठ भी कर रहे थे। पंतजी को जब पता चला तो चरणसिंह ने बिलकुल निर्दोष बनने का नाटक किया। लेकिन बाद में संपूर्णानंद, सी० बी० गुप्ता और सुचेता कृपालानी के मंत्रिमंडल में मंत्री रहते हुए भी चरणसिंह अलग राज्य की स्थापना के आंदोलन की 'प्रेरणा देने वाली शक्ति' बने रहे। जाटों के अलग राज्य के कुदरती तौर पर वही नेता होते। जब वह खुद उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री बने तब से ही उन्होंने पृथक जाट-राज्य की बात करना बंद कर दिया।

चरणसिंह हमेशा अपने को सही मानते थे और अपने अनेक गुणों व योग्यता पर बहुत भरोसा था। जिन लोगों ने उत्तर प्रदेश पर शासन किया उन्हें चरणसिंह हमेशा हिक़ारत की निगाह से देखते थे। उन दिनों वह मुँह-फट भी थे। वह अक्सर अपने चमचों में बैठकर मंत्रिमंडल के अन्य सदस्यों को 'चोर और लम्पट' कहा करते थे। अयोग्य आदमियों का बोझ ढोना उनको बराबर खलता रहा और उन्होंने ठान लिया था कि वह सत्ता के गढ़ पर क़ब्ज़ा ज़रूर करेंगे।

जब उन्होंने सत्ता की ड्योढ़ी के अंदर क़दम रखा तो वह बिलकुल सीधे-सादे, खरे व बेलाग आदमी समझे जाते थे—आर्यसमाजी विचारों में डूबे ऐसे व्यक्ति जिनके बारे में कोई गोल-माल नहीं था और जो बिलकुल अक्खड़ थे। लेकिन उन

दिनों में भी कुछ लोग थे जो उनको कुछ गहराई में जाकर देख सकते थे। उत्तर प्रदेश के एक अवकाश-प्राप्त अधिकारी को उन दिनों की एक छोटी-सी घटना आज भी याद है, जब चरणसिंह संसदीय सचिव थे। कुछ सप्लाई-इंस्पेक्टरों को तरक़्क़ी दी जानी थी। एक दिन सम्बद्ध विभाग के सचिव को चौधरी चरणसिंह का फ़ोन मिला और वह उनसे मिलने गया।

चरणसिंह ने उनसे कहा, "मैं समझता हूँ कि जिन सप्लाई-इंस्पेक्टरों को तरक़्क़ी दी जानी है उनकी सूची तुमने बना ली है। क्या मैं उस फ़ाइल को देख सकता हूँ?"

सचिव ने बताया कि इस सिलसिले में मुझे कुछ भी पता नहीं है, लेकिन पता करके फ़ाइल ला दूँगा। कोई अंडर-सेक्रेटरी उस फ़ाइल पर काम कर रहा होगा। कुछ दिन बाद सचिव महोदय उस फ़ाइल को लेकर चरणसिंह के पास पहुँचे।

नौजवान संसदीय सचिव चरणसिंह ने अधमुँदी और संदिग्ध नज़रों से फ़ाइल को देखना शुरू किया। सप्लाई-इंस्पेक्टरों की सूची पर निगाह पड़ते ही उन्होंने कहा, "मैं चाहता हूँ कि केवल ईमानदार लोगों को ही तरक़्क़ी दी जाये।"

सचिव इस बात से पूरी तरह सहमत थे और उन्होंने बताया कि ईमानदारी को ही मुख्य कसौटी माना जाना चाहिए।

चरणसिंह ने सूची का पहला ही नाम पढ़ा तो मुँह बना लिया और कहा, "मैंने सुना है कि यह आदमी बिलकुल ईमानदार नहीं है। इसके ख़िलाफ़ कई शिकायतें हैं।"

दूसरा नाम पढ़ा तो फिर मुँह बना लिया, "यह आदमी? मुझे बताया गया है कि बहुत ही बेईमान है।" उन्होंने तीसरा, चौथा और पाँचवाँ नाम पढ़ा और इनमें से किसी भी नाम से उन्हें खुशी नहीं हुई। हर आदमी के बारे में उनके पास कोई-न-कोई शिकायत थी।

"लेकिन सर, इस सूची को सीनियॉर्टी और सर्विस-रिकॉर्ड के आधार पर तैयार किया गया है। जब तक किसी के ख़िलाफ़ लिखित रिपोर्ट न हो उसकी बेईमानी या ईमानदारी के बारे में जानना कठिन है।" सचिव ने कहा।

तब तक चरणसिंह पूरी सूची पढ़ गये थे और सबसे नीचे लिखे एक नाम पर उनकी निगाहें ठहरी हुई थीं। इस नाम को देखकर उनके चेहरे पर अचानक चमक आ गयी, "यह आदमी, मानसिंह, मुझे बताया गया है कि, बहुत ईमानदार है। इसके बारे में बड़ी अच्छी रिपोर्टें हैं।"

सचिव ने कहा, "लेकिन वह सूची में इतने नीचे है कि उसको अभी तरक़्क़ी नहीं दी जा सकती। कुछ ही जगह हैं जिनको भरना है।"

"यह सब मुझे नहीं पता। मैं केवल इतना जानता हूँ कि ईमानदार आदमी को तरक़्क़ी का मौक़ा मिलना चाहिए।"

सचिव को मानसिंह के फ़रिश्तों का भी पता नहीं था, लेकिन वह समझ गये कि संसदीय सचिव की राय उसके बारे में बहुत अच्छी है। कुछ दिन बाद उस सचिव को सी० बी० गुप्ता से मिलने का अवसर मिला जो सम्बद्ध विभाग के मंत्री थे। अधिकारी ने अपने और चरणसिंह के बीच हुई बातचीत का ब्यौरा उन्हें दिया।

"वह किस इंस्पेक्टर की बात कर रहे थे?" सी० बी० गुप्ता ने पूछा।

"कोई मानसिंह नाम का आदमी है। चौधरी साहब कह रहे थे कि वह बहुत

ईमानदार है...।"

"अरे, मानसिंह !" सी० बी० गुप्ता ने कहा और ठठाकर हँस पड़े—"तुम मानसिंह को नहीं जानते ?"

सचिव ने अपनी अनभिज्ञता ज़ाहिर की। शायद उसे जानना चाहिए था कि यह कौन आदमी है। उसने कहा, "लेकिन सर, उसका नाम तो सूची में बहुत नीचे है।"

"अरे भई, कर दो उसको अगर हो सके।" गुप्ता ने कहा, "वह चरणसिंह का छोटा भाई है।"

संपूर्णानंद की सरकार को गिराने में चौधरी चरणसिंह का काफ़ी योगदान था। उस समय तक उन्होंने "किनारे पर खड़े रहकर वार करने"[3] की रणनीति अपना ली थी, ताकि वह "तीसरी ताक़त" बनकर उत्तर प्रदेश की राजनीति में दो गुटों की लड़ाई में निर्णायक भूमिका निभा सकें। 1959 में संपूर्णानंद-मंत्रिमंडल के नौ मंत्रियों ने सी० बी० गुप्ता के पक्ष में इस्तीफ़ा दे दिया। हालाँकि चरणसिंह भी संपूर्णानंद के ख़िलाफ़ थे, लेकिन उन्होंने सबके साथ इस्तीफ़ा नहीं दिया। वह उस मौक़े का इंतज़ार करते रहे कि जब उनके दल बदलने से गुप्ता को निर्णायक लाभ मिले। यह सर्वविदित है कि कुछ महीनों बाद चरणसिंह ने इस्तीफ़ा तभी दिया जब सी० बी० गुप्ता ने यह वायदा कर दिया कि मुख्यमंत्री-पद के लिए वह चरणसिंह का समर्थन करेंगे। गुप्ता ने उन्हें धोखा दिया, लेकिन चरणसिंह फिर मौक़े के इंतज़ार में चुप बैठ गये।

1967 के चुनावों के बाद जब सी० बी० गुप्ता ने अपने मंत्रिमंडल का गठन किया तो चरणसिंह उसमें शामिल नहीं हुए। इसके लिए उन्होंने अपनी शर्तें रखीं। बाद में इन्दिरा गांधी को लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा है, "उस समय (1967) मेरे समर्थन से विरोधी दलों के 275 सदस्य हो जाते (विरोधी दलों के 227 सदस्य चुने गये थे जबकि कांग्रेस को केवल 198 सीटें ही मिली थीं), लेकिन मैंने समर्थन देने से इंकार कर दिया और कहा कि कांग्रेस छोड़ने का मेरा कोई इरादा नहीं है...कुछ दिन बाद जब कांग्रेस विधान-मंडलीय दल के नेता के चुनाव के लिए बैठक हुई तो सी० बी० गुप्ता के साथ मैं भी इस पद के लिए उम्मीदवार बना...आपने अपने दो विश्वासपात्र व्यक्तियों—उमाशंकर दीक्षित और दिनेश सिंह—को लखनऊ भेजा, ताकि वे सी० बी० गुप्ता के पक्ष में बैठ जाने के लिए मुझे राज़ी करें।"

चरणसिंह चाहते थे कि सी० बी० गुप्ता अपने मंत्रिमंडल में उनके तीन सिपहसालारों को शामिल कर लें। ये थे—जयराम वर्मा, उदितनारायण शर्मा और जगनप्रसाद रावत। उन्होंने गुप्ता से यह माँग भी की थी कि वह अपने तीन समर्थकों को मंत्रिमंडल में शामिल न करें। ये थे—कैलाशप्रकाश, जो मेरठ कांग्रेस में चरणसिंह के प्रतिद्वंद्वी थे, बनारसीदास और शिवप्रसाद गुप्ता, वे दोनों सी० बी० गुप्ता के बेहद वफ़ादार लोगों में से थे।

इन्दिरा गांधी के संदेशवाहकों ने नेतृत्व की लड़ाई से चरणसिंह को अपना नाम वापस ले लेने के लिए इस शर्त पर राज़ी कर लिया कि उनसे सलाह-मशविरे के बाद ही मंत्रिमंडल की सूची को अंतिम रूप दिया जायेगा। लेकिन जब गुप्ता चुन लिये गये तो उन्होंने चरणसिंह को एक सूची भेजी जिसमें न तो चौधरी के मनपसंद लोगों को शामिल किया गया था और न उसमें से उन लोगों को अलग

किया गया था जिन्हें चरणसिंह नहीं चाहते थे। सूची देखते ही चरणसिंह ग़ुस्से में आग-बबूला हो गये। उन्होंने सूची को फेंक दिया। और कहा जाता है कि वह चिल्लाने लगे—"सभी झूठे हैं।" इसी वायदा-ख़िलाफ़ी की वजह से चरणसिंह ने इन्दिरा गांधी के विरुद्ध यह बहुचर्चित आरोप लगाना शुरू कर दिया कि "वह ग़लती से भी कभी सच नहीं बोलतीं।" लेकिन गुप्ताजी बराबर यही कहते रहे कि उन्होंने चरणसिंह से कोई वायदा नहीं किया था कि मंत्रिमंडल में किसे लेंगे, किसे नहीं लेंगे।

चरणसिंह और जयराम वर्मा ने जब मंत्रिमंडल में शामिल होने से इंकार किया तो गुप्ताजी ने कहा कि यह तो "विशुद्ध ब्लैक-मेल" है।[4]

गुप्ता-मंत्रिमंडल के गठन के महज़ 18 दिन बाद, 1 अप्रैल 1967 को, चरणसिंह अपने सोलह साथियों के साथ विपक्ष से जा मिले और राज्यपाल के अभिभाषण पर धन्यवाद के प्रस्ताव को नामंजूर करने के लिए उन्होंने विरोधी दलों के साथ वोट दिये। राममनोहर लोहिया ने इसका स्वागत किया और कहा कि चरणसिंह ने एकदम 'सही' काम किया है। प्रसोपा के अध्यक्ष एन० जी० गोरे ने कहा, "यह भारतीय राजनीति के बदलते हुए युग का संकेत है। यह इस बात का प्रतीक है कि हम राजसत्ता की 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाली राजनीति के युग में प्रवेश कर रहे हैं।"

चरणसिंह की पहली संविद-सरकार 11 महीने से भी कम समय के अन्दर ही गिर गयी और उसमें शामिल दलों में बेइन्तहा आपसी कड़वाहट पैदा हो गयी। लेकिन 1969 में कांग्रेस का विभाजन होने पर फिर चरणसिंह को "किनारे पर खड़े होकर वार करने वाली राजनीति" खेलने का मौक़ा मिला। सी० बी० गुप्ता का सिंडीकेट मंत्रिमंडल और कमलापति त्रिपाठी के नेतृत्व वाली इन्दिरा-कांग्रेस के बीच कुर्सी के लिए ज़बर्दस्त खींचतान चल रही थी। जनवरी 1970 में गुप्ता के सोलह कैबिनेट मंत्रियों में से नौ ने इस्तीफ़ा दे दिया। लोगों को तरह-तरह के प्रलोभन देकर फँसाने में माहिर सी०बी०गुप्ता ने हर एक को मंत्री बनाने का वायदा किया और 29 नये लोगों को अपने मंत्रिमंडल में शामिल कर लिया। लेकिन इससे भी काम नहीं चला और गुप्ता की गद्दी खिसकने लगी। तब उन्होंने चरणसिंह को 'किसी भी क़ीमत पर' अपनी ओर मिलाने की कोशिशें कीं। त्रिपाठी का गुट भी चरणसिंह को अपनी ओर मिलाना चाहता था। जाट-नेता अब अपने सही रंग पर था। दरअसल वह इसी तरह की स्थिति को पसंद करते हैं। भागकर सी०बी० गुप्ता के एक सिपहसालार, कृष्णानंदराय जो चरणसिंह के घोषित राजनीतिक शत्रु थे, मुख्यमंत्री-पद का प्रस्ताव लेकर चरणसिंह के पास गये। चरणसिंह को आश्वासन दिया गया कि सी० बी० गुप्ता उनके पक्ष में इस्तीफ़ा दे देंगे, गुप्ता इन्दिरा गांधी के आदमियों के शासन से ज्यादा बेहतर यह समझते हैं कि राज्य में चरणसिंह की हुकूमत हो।

एक हफ़्ते तक मोल-तोल होने के बाद चरणसिंह ने एलान किया कि वह दूसरी संविद-सरकार का नेतृत्व करेंगे और इस बार उसमें संगठन कांग्रेस, जन संघ, संसोपा और भारतीय क्रांति दल को शामिल किया गया। लेकिन साथ ही उन्होंने अपने लिए दूसरे दरवाज़े भी खुले रखे। उन्होंने प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी से दिल्ली में भेंट की और संवाददाताओं को बताया कि बी० के० डी० और कांग्रेस के संभावित गँठबंधन के नेतृत्व के बारे में उन्होंने फ़ैसला इन्दिरा गांधी पर छोड़ दिया है और यह प्रस्ताव भी किया है कि वह अपनी पार्टी का कांग्रेस के साथ

विलय कर देंगे। लेकिन विलय उनके मुख्यमंत्री बनने के बाद होना चाहिए, वरना, "लोग कहेंगे कि मैंने मुख्यमंत्री होने के लिए ही ऐसा किया है।"

अब चरणसिंह से नये सिरे से बातचीत करने के लिए दिल्ली से सिंडीकेट कांग्रेस के नेता रामसुभगसिंह पहुँचे। चरणसिंह रामसुभगसिंह से मिलने के लिए राज़ी नहीं हुए, लेकिन सिंडीकेट कांग्रेस के अन्य नेताओं के साथ लंबी बातचीत जारी रखी। ये नेता लोग चौधरी से इस बात का आश्वासन लेना चाहते थे कि वह कभी इन्दिरा गांधी से सहयोग नहीं करेंगे। उधर चरणसिंह कुछ और ही सोच रहे थे—वह प्रधानमंत्री की लखनऊ-यात्रा का इंतज़ार कर रहे थे।

इन्दिरा गांधी के लखनऊ पहुँचने से एक दिन पहले बी० के० डी० ने एक प्रस्ताव पास कर माँग की कि कांग्रेस व बी० के० डी० की मिली-जुली सरकार बनाने से संबंधित सभी मसलों को तुरंत स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए। लेकिन इन्दिरा गांधी के लखनऊ पहुँचने पर चरणसिंह को बहुत बड़ा धक्का लगा। प्रधानमंत्री ने उनसे मिलने और समस्याओं के सुलझाने के लिए बातचीत करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। प्रधानमंत्री के लिए आयोजित एक समारोह में चरणसिंह भी गये, लेकिन इन्दिरा गांधी ने उनकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। इससे बी० के० डी० के अध्यक्ष के आत्म-सम्मान को चोट पहुँची। फिर वह कमलापति त्रिपाठी के घर गये, लेकिन पंडितजी ने भी उनसे राजनीति पर बात-चीत करने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। चरणसिंह के एक सहयोगी ने बहुगुणा को ट्रंक-काल किया, पर कांग्रेस-महासचिव बहुगुणा ने फ़ोन पर ही बहुत रूखा जवाब दे दिया।

इन सब बातों से भड़क कर बी० के० डी० ने एक दूसरा प्रस्ताव पास किया जिसमें कहा गया कि वह कांग्रेस के साथ विलय के लिए वचनबद्ध नहीं है।

अब चरणसिंह अपने पुराने दुश्मन सी०बी० गुप्ता से, जिन्हें वह 'हर तरह के भ्रष्टाचार की जड़' कहते थे, हाथ मिलाने को आमादा हो गये। पर उन्होंने गुप्ता-विरोधी तेवर तब तक बनाये रखे, जब तक उन्हें मुख्यमंत्री-पद से सी० बी० गुप्ता के त्यागपत्र की प्रतिलिपि मिल नहीं गयी, जिसमें उन्होंने राज्यपाल से अनुरोध किया था कि नये मंत्रिमंडल के गठन के लिए चरणसिंह को आमंत्रित किया जाये। चरणसिंह यही तो चाहते थे।

दूसरा कोई होता तो इसके बाद वह गुप्ता का समर्थक बन जाता, लेकिन चरणसिंह ऐसे लोगों में से नहीं है। उन्होंने फ़ौरन गुप्ता को एक पत्र लिखकर स्पष्ट कर दिया कि उन्होंने (चरणसिंह ने) प्रस्तावित संविद-सरकार के अन्य घटकों तथा सिंडीकेट कांग्रेस के लोगों से किसी तरह का वायदा नहीं किया है।

सी० बी० गुप्ता का इस्तीफ़ा प्राप्त कर लेने तथा उनको अपना पत्र भेज देने के बाद चरणसिंह बलिराम भगत से सम्पर्क करने के लिए आगे बढ़े। उनके और इन्दिरा गांधी के बीच बातचीत शुरू कराने में बलिराम भगत की महत्वपूर्ण भूमिका थी। भगत को बातचीत के लिए लखनऊ बुलाया गया। इसके बाद उन्होंने दोनों से खुले बाज़ार मोल-तोल शुरू कर दी—चरणसिंह इन्दिरा कांग्रेस के नेताओं और विरोधी दलों के प्रतिनिधियों से एक साथ ही बातचीत चला रहे थे। कभी-कभी तो एक ही वक़्त दोनों गुटों के साथ बातचीत होती थी—कांग्रेस के नेता एक कमरे में बैठे होते थे और बग़ल के कमरे में विरोधी दलों के नेता बातचीत का इंतज़ार कर रहे होते। और बी० के० डी० के नेता कभी एक कमरे में जाते, कभी दूसरे में।

बातचीत में चरणसिंह का साथ दे रहे थे उनके अंतरंग मित्र और मेरठ के प्रमुख व्यापारी पृथ्वीनाथ सेठ। वर्षों से वह चौधरी साहब के न केवल राज़दार थे बल्कि खज़ांची भी थे। उनके घनिष्ठ सम्बन्धों की एक अलग ही कहानी है। 1940 में जब चरणसिंह जेल गये तो उन्होंने पृथ्वीनाथ के पिता गोपीनाथ सेठ से एक हज़ार रुपया अपने परिवार के ख़र्च के लिए क़र्ज़ लिया था। जेल से बाहर आने पर चरणसिंह बूढ़े सेठजी से मिलने गये और अपने साथ मेरठ के तीन नागरिकों को भी ले गये, ताकि वे उन्हें क़र्ज़ माफ़ करने के लिए राज़ी कर सकें। सेठ ने कहा कि वह चरणसिंह के लिए विशेष रिआयत यह कर सकते हैं कि वह कोई तीन सौ रुपये माफ़ कर दें। इस बात से चरणसिंह बहुत चिढ़ गये और किसी तरह की रिआयत लेने से इंकार करते हुए लौट आये।

जब चरणसिंह उत्तर प्रदेश में मंत्री बने तो गोपीनाथ सेठ ने मेरठ में उनके सम्मान में एक बहुत बड़ी दावत दी। उस दावत में मौजूद एक पुराने नेता ने सेठ से हैरानी ज़ाहिर करते हुए पूछा कि ऐसे आदमी के लिए इतनी शानदार पार्टी क्यों दी, जिसे वह कुछ दिन पहले तक एकदम गया-गुज़रा समझते थे। बूढ़े सेठजी ने जवाब दिया, "यह अब वह आदमी नहीं, मंत्री है।" जल्दी ही उनके पुत्र, पृथ्वीनाथ सेठ चौधरी चरणसिंह के जिगरी दोस्त बन गये। जैसे-जैसे चरणसिंह का सिक्का जमता गया, पृथ्वीनाथ के पाँव मज़बूत होते गये। सबसे पहले वह उत्तर प्रदेश में एम० एल० सी० बने और बाद में राज्य-सभा के सदस्य। उनका व्यापार दिन दूनी रात चौगुनी रफ़्तार से बढ़ता गया। उत्तर प्रदेश के विभिन्न इलाक़ों में उनके कोल्ड स्टोरेज और खेती के बड़े-बड़े फ़ार्म बन गये।

दोनों पक्षों से मोल-तोल के सिलसिले में पृथ्वीनाथ सेठ और बी० के० डी० की विधायिका तथा चरणसिंह की पत्नी गायत्रीदेवी ने कांग्रेस के साथ गँठजोड़ का समर्थन किया। उन्होंने दलील दी कि छोटे-छोटे दलों का भरोसा करने से बेहतर है कि एक दल का सहारा लिया जाये। इसके अलावा इन छोटे दलों ने पहली संविद सरकार के दिनों में उन्हें धोखा भी दिया था। चरणसिंह भी अपने को इसके लिए तैयार करने लगे। चार दिन का यह वीभत्स नाटक जो 10 फ़रवरी 1970 को सी० बी० गुप्ता का इस्तीफ़ा स्वीकार किये जाने से शुरू हुआ था और इन्दिरा गांधी की तरफ़ से बातचीत में शामिल डी०पी० मिश्रा की पत्रकारों के समक्ष इस घोषणा के साथ समाप्त हुआ कि चरणसिंह तथा कांग्रेस के बीच "पूरी तरह समझौता" हो गया है।

सी० बी० गुप्ता को मुँह की खानी पड़ी, लेकिन उन्होंने तय कर लिया था कि किसी-न-किसी दिन इसका बदला ज़रूर लेंगे।

मेरठ के कांग्रेस-जन अक्सर चरणसिंह को 'तानाशाह' कहा करते हैं।[5] ज़िला कांग्रेस में उनकी मर्ज़ी के बिना पत्ता भी नहीं हिल सकता। "1946, 1952 और 1957 में ऐसे किसी भी कांग्रेसी को मेरठ के किसी ग्रामीण निर्वाचन-क्षेत्र से टिकट नहीं मिला जिसे चरणसिंह का समर्थन न प्राप्त हो।"[6]

ज़िले के एक कांग्रेस-कार्यकर्ता ने चरणसिंह के बारे में बताया, "उनके अंदर उदारता नहीं है...चरणसिंह पूरी-पूरी वफ़ादारी चाहते हैं। आपको नीचे झुकना होगा और तब सर्वशक्तिमान चौधरी चरणसिंह की दया की भीख आप पा सकेंगे। वह चाहते हैं कि उनके अलावा और कोई नेता मेरठ में न आये। वह मेरठ को अपनी जागीर समझते हैं...।"

चरणसिंह की राजनीतिक शैली के बारे में बात करते समय अक्सर मूलचन्द शास्त्री के मामले का उदाहरण दिया जाता है। मूलचन्द भी एक जाट थे और चरणसिंह के रहमोकरम पर ज़िंदा रहते थे। 1953 में उन्होंने शास्त्री को मेरठ ज़िला परिषद् का अध्यक्ष बनवाया, लेकिन जल्दी ही शास्त्री ने साबित कर दिया कि उनकी अपनी भी कुछ महत्वाकांक्षा है। उन्होंने ज़िला परिषद को अपने ढंग से चलाना शुरू किया। चरणसिंह बिगड़ गये और उन्होंने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि शास्त्री के ख़िलाफ़ अविश्वास-प्रस्ताव लाया जाये। अविश्वास-प्रस्ताव पास नहीं हो सका। चरणसिंह हार मानने वाले नहीं थे। तीन साल बाद उन्होंने शास्त्री को ज़िला परिषद से बाहर कर दिया और इस बात का भी पूरा इंतज़ाम कर लिया कि 1957 के चुनाव में शास्त्री को टिकट न मिले।

1957 के चुनाव में चौधरी चरणसिंह अपने गढ़ छपरौली में कुछ सौ वोटों से हारते-हारते बचे। उनके प्रतिद्वंद्वियों में एक हरिजन भी था। 'तानाशाह' का मुक़ाबला करने की हिमाकत करने वाला यह ज़रूर ही कोई विचित्र प्राणी होगा। चुनाव के कुछ ही दिन बाद उस हरिजन की हत्या कर दी गयी और कहा जाता है कि इस हत्या के मुक़दमे में कई जाट शामिल थे। चरणसिंह के उत्तर प्रदेश का गृह-मंत्री हो जाने के बाद सरकार ने यह मुक़दमा वापस ले लिया।

चरणसिंह अपनी बिरादरी के सशक्त और समृद्ध किसानों से ही ताक़त हासिल करते हैं और उनके हितों को बराबर आगे बढ़ाते हैं। वह इन किसानों के प्रमुख सिद्धांतकार हैं और 1959 में नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में सहकारी खेती के सवाल पर उन्होंने जवाहरलाल नेहरू तक से टक्कर ली थी। चरणसिंह ने इसे एक बोलशेविक प्रस्ताव कहा था और जी-जान से इसका विरोध किया था। उत्तर प्रदेश ज़मींदारी उन्मूलन समिति के वह एक प्रमुख सदस्य थे और इस बात की गारंटी के लिए उन्होंने जी-तोड़ मेहनत की थी कि "ज़मींदारी प्रथा फिर से अपना सिर न उठा सके।"[7] वह किसानों की स्वतंत्र मिल्कियत के बहुत बड़े हिमायती हैं और इन किसानों का ही मेरठ ज़िले में उनकी सत्ता के आधार पर क़ब्ज़ा है।

चरणसिंह अच्छी तरह जानते थे कि उनको आगे बढ़ाने के लिए जैसी राजनीति चाहिए उसके लिए जाट काफ़ी नहीं हैं, चाहे वे कितने ही शक्तिशाली हों। इसलिए उन्होंने धीरे-धीरे अपने राजनीतिक आधार को व्यापक बनाना शुरू किया और इसमें अहीरों, गूजरों और राजपूतों को शामिल कर लिया—इन चारों जातियों के मेल को "अजगर" का नाम दिया गया। पूर्वी उत्तर प्रदेश में उन्होंने अपने-आपको अहीरों का नेता बताया और बिहार में "यादवों के सबसे पुराने नेता के रूप में" अपना परिचय दिया।

लेकिन चरणसिंह सबसे कहते हैं कि वह जात-पाँत जैसी संकीर्णताओं में विश्वास नहीं रखते। लोगों को यह बताया जाता है कि उन्होंने अपने घर में हमेशा एक हरिजन नौकर रखा। उनके आलोचक इसकी तुलना अमेरिका के गोरे घरानों में काम करने वाले नीग्रो लड़कों से करते हैं, जिनको नौकर रखकर गोरे अपने को नस्लवाद-विरोधी दिखाने का ढोंग करते हैं।

लेकिन चरणसिंह के पास जाति-विरोधी होने का लिखित प्रमाण भी मौजूद है। काफ़ी पहले 1954 में, उन्होंने जवाहरलाल नेहरू को एक लम्बा ख़त लिखा था, जिसमें सुझाव दिया था कि गज़ेटिड पदों पर नौकरी के उम्मीदवारों के लिए यह आवश्यक होना चाहिए कि वह अपनी जाति के संकीर्ण दायरे से निकल कर दूसरी जाति में शादी करें। विधायक होने के लिए भी उन्होंने इसी तरह की

शर्तें लगाने के लिए आग्रह किया था। चरणसिंह ने अपने पत्र में लिखा था, "मेरे जैसे लोग अपने अनुभव से वखूबी जानते हैं कि सुविधा-प्राप्त या सुविधा-प्राप्त समझी जाने वाली जाति से भिन्न जाति में पैदा होने का क्या मतलब होता है। उनके साथ जिस तरह की वदसलूक़ी की जाती है और केवल दूसरी जाति में पैदा होने के कारण समाज में उनके साथ जिस तरह का भेद-भाव वरता जाता है, उससे वहुधा लोग अपना धर्म छोड़कर किसी दूसरे धर्म में शामिल हो जाते हैं... चाहे जो भी अड़चनें हों, यदि इन वातों को ध्यान में रखकर संविधान में कोई संशोधन किया जा सके तो मेरे इस छोटे-से दिमाग़ के अनुसार देश की वहुत वड़ी सेवा होगी...।" जवाव में नेहरू ने लिखा, "...मैं इस वात से सहमत नहीं हो सकता कि क़ानून के ज़रिये या दवाव डालकर शादी के लिए किसी को मजवूर किया जाये।"

चरणसिंह के अंदर कहीं वहुत गहरे में एक कसक है और एक गाँठ पड़ी है कि वह तथाकथित 'अभिजात' वर्ग में नहीं पैदा हुए। यह वात वार-वार ज़ाहिर हो जाती है। दिसम्वर 1977 में मिरहची (उ० प्र०) में केन्द्रीय गृह-मंत्री ने कहा, "मैं एक जाट हूँ, एक जाट-परिवार में पैदा हुआ हूँ। अगर मैं मुसलमान वनना चाहूँ तो फ़ौरन वन सकता हूँ. लेकिन मैं व्राह्मण नहीं वन सकता, मैं राजपूत नहीं वन सकता। यहाँ तक कि मैं वैश्य भी नहीं वन सकता। इतना ही नही, अगर मैं हरिजन भी वनना चाहूँ तो वह भी असम्भव है, क्योंकि संविधान इस वात की इजाज़त नहीं देता। अच्छा होगा ऐसी जाति-प्रथा ध्वस्त हो जाये।"

उनकी लड़कियों में से एक ने जव दफ़्तर में क्लर्की करने वाले एक कायस्थ लड़के से शादी कर ली तो चरणसिंह वहुत झल्लाये। गाँव की जाट-विरादरी ने उन्हें जाति से वाहर कर देने की धमकी दी और कहा, "उसका हुक्का-पानी वंद कर दो।" चरणसिंह विरादरी वालों को शांत करने के लिए भागे-भागे नूरपुर पहुँचे। जाटों की पंचायत वैठी और इसमें वड़े-वड़े धाँगड़ और मुस्तैद चौधरी जमा हुए।

"जाटों में लौंडा नहीं मिला तुझे?" सवने गुस्से से पूछा।

चरणसिंह ने उन्हें समझाने की कोशिश की—"अगर लड़की विना शादी किये कायस्थ लड़के के साथ भाग जाती तो क्या आप लोग इसे पसंद करते? आपकी नाक नहीं कट जाती?"

जाट लोग शांत हो गये।

वर्षों से उनके क़रीव रहने वाले उत्तर प्रदेश के एक राजनीतिज्ञ का कहना है, "चरणसिंह शुरू से आखिर तक जाट-ही-जाट हैं।"

अपनी पार्टी में किसी भी पद पर नियुक्ति के लिए चौधरी चरणसिंह जाति को वहुत महत्व देते हैं। और फिर वह आदमी गाँव का भी होना चाहिए, उसके पास इतनी ज़मीन होनी चाहिए कि वह अपना काम चला सके, वह सम्पन्न किसान होना चाहिए।

उत्तर प्रदेश विधान-मंडल के भूतपूर्व वी० के० डी०-सदस्य रामगोपाल एक घटना की याद करते हुए वताते हैं कि पार्टी की एक समिति के लिए उम्मीदवारों के वारे में विचार हो रहा था। जव पहले उम्मीदवार का नाम आया तो चरणसिंह ने सवाल किया, "उसका नाम क्या है?"

"रघुराज," रामगोपाल ने कहा।

"रघुराजसिंह?" चरणसिंह ने पूछा।

"नहीं, वह सिंह नहीं है केवल रघुराज है।"
"लेकिन वह है क्या ?"
"कुर्मी है।"
चरसिंह ने 'चलेगा' की मुद्रा में सर हिला दिया।
रामगोपाल पिछड़ी जाति के नहीं हैं और यह बताने में बहुत झिझकते हैं कि उनकी ज़िंदगी के एक महत्वपूर्ण अवसर पर चरणसिंह ने उनको कैसे धोखा दिया। लेकिन किसी तरह बात बाहर निकल ही आयी। 1971 के चुनाव में हार जाने के बाद चरणसिंह रामगोपाल के पास गये और कहा कि वह एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशित करना चाहते हैं।
पत्र का काम संभालने के लिए रामगोपाल तैयार हो गये, लेकिन उन्होंने कहा कि इस काम के लिए वह पैसे बिलकुल नहीं लेंगे।
चरणसिंह काफ़ी ख़ुश हुए और बोले, "जो बात मैं कहना चाहता था वह ख़ुद तुमने ही कह दी।"
उन लोगों ने **नवक्रांति** नामक अख़बार निकाला और रामगोपाल दिन-रात काम करने लगे। उसके बाद उत्तर प्रदेश विधान-परिषद के चुनाव का समय आया और कुछ लोगों ने चरणसिंह को सुझाव दिया कि रामगोपाल को विधान-परिषद में भेज देना चाहिए। रामगोपाल को उम्मीदवार बना लिया गया तो उन्होंने चरणसिंह को जाकर धन्यवाद दिया।
लेकिन कुछ ही दिन बाद चरणसिंह ने रामगोपाल से पूछा, "मैंने सुना है कि सी० बी० गुप्ता तुम्हें विधान-परिषद या राज्य-सभा में कोई सीट देने जा रहे हैं ?" दरअसल सी० बी० गुप्ता के एक संदेशवाहक ने रामगोपाल से भेंट की थी, क्योंकि उन दिनों रामगोपाल उस साप्ताहिक पत्र में गुप्ता के ख़िलाफ़ बड़े तीखे लेख लिख रहे थे। उनसे कहा गया कि उन्हें विधान-परिषद या राज्य-सभा का सदस्य बनाने से गुप्ताजी को प्रसन्नता होगी, लेकिन रामगोपाल ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया।
उन्होंने चरणसिंह को सारी बात बतला दी। बी० के० डी० के नेता ने अपनी अधमुंदी और संदेह-भरी नज़रों से रामगोपाल की तरफ़ देखा और कहा, "चन्द्रावती बहुत रो रही है।" चन्द्रावती चरणसिंह की एक रिश्तेदार है जो इस समय उत्तर प्रदेश सरकार में मंत्री है। वह भी विधान-परिषद का सदस्य होना चाहती थी और चरणसिंह के पास आयी थी।
रामगोपाल बहुत उलझन में पड़ गये। उन्होंने कुछ नहीं कहा, लेकिन उनसे बताया गया कि चरणसिंह ने अपने कुछ आदमियों को हिदायत दी है कि रामगोपाल का समर्थन न किया जाये। और सचमुच जब मतदान हुआ तो बी० के० डी० के बारह सदस्य खुलेआम उनके ख़िलाफ़ चले गये और बड़ी मुश्किल से रामगोपाल जीत सके। बी० के० डी० के विद्रोहियों के ख़िलाफ़ अनुशासन की कोई कार्रवाई नहीं की गयी।
1967 में जिन विधायकों ने चरणसिंह के साथ दल बदला था उनमें से एक विधायक थे रामनारायण त्रिपाठी। चरणसिंह जब अपने मंत्रिमंडल के लिए लोगों का चयन करने लगे तो उन्हें सुझाव दिया गया कि उन्हें त्रिपाठी को भी ले लेना चाहिए। उन्होंने इनकार कर दिया। त्रिपाठी के एक समर्थक ने चरणसिंह की नाराज़गी के बावजूद कहा कि जब कभी किसी ब्राह्मण का नाम आता है तो वह विरोध कर देते हैं। इस बात से चरणसिंह हमेशा के लिए त्रिपाठी से नाराज़ हो

गये। 1969 के मध्यावधि चुनावों में त्रिपाठी हार गये।

चरणसिंह यह कभी नहीं भूल सकते कि ब्राह्मण और वैश्य मिलकर उनकी उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाने की कोशिश करते रहे हैं। वे यह भी नहीं भूल सकते कि मुख्यमंत्री बनाने के लिए समर्थन करने का वायदा करके सी० बी० गुप्ता मुकर गये थे। उन्हें यह भी हमेशा याद रहता है कि बनिया-ब्राह्मण-गुट बराबर कोशिश करता रहा है कि मंत्री होने पर भी उनके पास जहाँ तक मुमकिन हो कम-से-कम अधिकार रहें। जब वह सी० बी० गुप्ता के मंत्रिमंडल में कृषि-मंत्री थे तो उनके विभाग की सामान्य ज़िम्मेदारियाँ उनसे लेकर अन्य मंत्रियों को दे दी गयीं जो गुप्ता के प्रति ज़्यादा वफ़ादार थे। जब सी० बी० गुप्ता की आश्रित सुचेता कृपालानी मुख्यमंत्री बनीं तो उन्होंने चरणसिंह को वन-विभाग दिया और राजनीतिक क्षेत्रों में यह मज़ाक चल निकला कि उन्हें 'फ़ॉरेस्ट मिनिस्टर' (वन का मंत्री) नहीं, बल्कि 'मिनिस्टर फ़ॉर रेस्ट' (अर्थात आराम का मंत्री) बनाया गया है। ख़ुद अपने ज़िले मेरठ की राजनीति में भी चरणसिंह देखते थे कि सी० बी० गुप्ता उनकी स्थिति को नीचे-नीचे काटने में लगे हैं।

उनके भीतर कहीं गहरे बैठा असंतोष अक्सर उबल पड़ता, "बनिये ने कभी हुकूमत की है? हुकूमत तो राजपूतों ने और जाटों ने की है।"[8]

चरणसिंह देश के पहले मुख्यमंत्री थे जिन्होंने नागरिकों को बिना मुक़दमा चलाये हिरासत में रखने के तानाशाही अधिकार ख़ुद अपने हाथों में लिये थे। राज्य के छात्र-आंदोलन और ज़मीन पर क़ब्ज़ा करने के आंदोलन का जवाब उन्होंने निरोधक नज़रबंदी अधिनियम के ज़रिये दिया। यह उपाय किसान भू-स्वामियों के हितों की रक्षा के लिए बनायी गयी उनकी रणनीति का एक प्रमुख अंश था। अध्यादेश के मक़सद के बारे में भी चरणसिंह ने किसी को संदेह में नहीं छोड़ा। 4 अगस्त 1970 को जल्दी-जल्दी बुलाये गये एक संवाददाता-सम्मेलन में उन्होंने अपना बयान वितरित किया जिसमें चेतावनी दी गयी थी : 'यह अभियान उनके (आंदोलनकारियों के) लिए पिकनिक साबित न हो और उन्हें जेल उतनी आराम की जगह न लगे जितनी वह आज़ादी के मिलने के बाद से हो गयी है, तो मुझे उम्मीद है कि उन लोगों को कोई शिकायत नहीं होगी।" उनका मतलब साफ़ था—जेलों में आंदोलनकारियों की वही हालत होगी जो अँग्रेज़ों के ज़माने में होती थी और उनको वहाँ वैसी ही यातनाएँ झेलनी होंगी जैसी तब दी जाती थीं।[9]

विधान-सभा में सबसे बड़ी पार्टी का नेता होने के नाते चरणसिंह अपने को 'जनता की इच्छा' का साक्षात रूप मानते थे। इस हैसियत से उन्होंने एलान किया कि उस तरह के जन-आंदोलन जो गांधीजी चलाते थे "अब प्रासंगिक नहीं हैं।" अधिनियम की आलोचना की गयी। आलोचकों में कांग्रेस-जन भी थे, जिनके सहारे उन दिनों चौधरी का शासन चल रहा था। आलोचक कहते थे कि इस अधिनियम से उत्तर प्रदेश में अंधेरगर्दी होने लगी है। चरणसिंह ने "प्रगतिशील राजनीतिज्ञों व आराम-कुर्सी वाले आलोचकों" की निंदा की।[10]

एक राजनीतिक टिप्पणीकार ने लिखा, "बड़े आत्मविश्वास के साथ जिसने अब अहंकार का रूप ले लिया है, चरणसिंह ने यूनियन बनाने के अधिकार को छीनकर विश्वविद्यालय के छात्रों पर हमला करने का फ़ैसला किया है।"[11]

लोगों को याद है कि उत्तर प्रदेश में जब वह राजस्व-मंत्री थे, लगभग 27,000 पटवारियों ने अचानक हड़ताल कर दी थी और दबाव डालने के लिए

अपने इस्तीफ़े दे दिये थे। चरणसिंह ने सारे इस्तीफ़े मंजूर कर लिये और 27,000 नये कर्मचारियों की नियुक्ति कर ली, जिन्हें उन्होंने 'लेखपाल' नाम दिया।

मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने राज्य से बाहर गुड़ भेजे जाने का आदेश दिया जिससे गुड़-निर्माताओं को और ज़्यादातर धनी किसानों को काफ़ी लाभ हुआ। इसी एक फ़ैसले से जाट किसानों द्वारा नियंत्रित मुज़फ्फरनगर और मेरठ की गुड़-मंडी ने करोड़ों रुपये बनाये।

जब चौधरी चरणसिंह मेरठ और मुज़फ्फरनगर की यात्रा पर गये तो ख़ुशी में डूबे वहाँ के मंडी-मालिकों ने अपने इस 'हीरो' पर सौ-सौ रुपये के नोटों की वर्षा की। वहाँ मौजूद एक आदमी का कहना है कि निश्चय ही उस दिन चरणसिंह ने तक़रीबन 10 लाख रुपये जमा किये होंगे।

चरणसिंह को इन इलाक़ों में देवता की तरह पूजा जाता था और लोग उन पर धन ऐसे चढ़ाते थे जैसे मंदिर में भी नहीं चढ़ाते होंगे। इन इलाक़ों में यात्रा के दौरान उन्हें दी गयी 'थैलियों' और उन पर बरसाये गये नोटों का मोटे तौर पर हिसाब करें तो लगभग एक करोड़ रुपया उन्हें मिला होगा। ख़ुद उनकी पार्टी के लोग भी कहते हैं कि इतना पैसा मिला कि उसका हिसाब करना कठिन है। चरणसिंह के मुख्य ख़ज़ांची थे मेरठ के उनके प्रिय सेठ पृथ्वीनाथ, लेकिन इस धन का कैसे इस्तेमाल हुआ, यह बहुतों के लिए अभी तक रहस्य है।

चरणसिंह ख़ुद कोई पैसा नहीं छूते थे। कोई भी देवता नहीं छूता। लेकिन लोगों ने देखा कि अचानक मेरठ की साकेत कालोनी में चरणसिंह की एक शानदार नयी बिल्डिंग खड़ी हो गयी। शायद इसकी जानकारी भी चरणसिंह को नहीं होगी, क्योंकि उन्हें राजनीति से फ़ुर्सत ही नहीं मिलती थी। यह इमारत अभी तैयार भी नहीं हुई थी कि राज्य बिजली बोर्ड ने इसे काफ़ी ऊँचे किराये पर ले लिया। बिजली बोर्ड की ऑडिट रिपोर्ट में यह बात सामने आयी तो अधिकारियों को काफ़ी परेशानी भी उठानी पड़ी थी। चरणसिंह के कुछ समर्थक इसके लिए पृथ्वीनाथ और चरणसिंह की शक्तिशाली पत्नी गायत्रीदेवी को दोषी ठहराते हैं। उनका कहना है कि जब चरणसिंह को यह पता चला कि उनका मकान किसी सरकारी विभाग ने किराये पर ले लिया है तो बेहद ग़ुस्सा हुए।

1970 में चरणसिंह ने एलान किया कि उन्होंने राज्य के चीनी-उद्योग के राष्ट्रीकरण करने का फ़ैसला किया है। लेकिन कुछ ही दिन में वह पीछे हट गये और उन्होंने राष्ट्रीकरण के सवाल पर विचार करने के लिए तीन सदस्यों की एक समिति बना दी। एक सदस्य उनके कृपापात्र सेठ पृथ्वीनाथ ही थे। कहा जाता है कि सेठ को समिति में राष्ट्रीयकरण का विरोध करने के लिए ही रखा गया था। पृथ्वीनाथ सेठ पश्चिमी यू० पी० के बहुत बड़े चीनी-उद्योगपति गूजरमल मोदी के रिश्तेदार हैं। कहा जाता है कि चुनाव के दिनों में बी० के० डी० को मोदी ने बहुत चंदा दिया था। चरणसिंह की सरकार ने भी मोदीनगर में मज़दूर-आंदोलन का दमन करने में काफ़ी मदद दी थी और इस बार तो पुलिस ने आंदोलनकारी मज़दूरों पर गोली भी चलायी थी। बाद में मोदी 'पद्मश्री' हो गये जिसके लिए भी, कहा जाता है, मोदी ने खासी क़ीमत अदा की थी।

चीनी-उद्योग के राष्ट्रीयकरण के सवाल पर अपने क़दम वापस लेने के लिए चरणसिंह की सरकार ने एक क़ानूनी विवाद खड़ा कर दिया। समिति की पहली बैठक में ही पृथ्वीनाथ सेठ ने इसरार किया कि पहले क़ानूनी पहलू पर विचार कर लिया जाये। राज्य-सरकार ने कहा कि उसे चीनी-मिलों को अपने हाथों में

लेने का अधिकार नहीं है और यू० पी० के एडवोकेट-जनरल ने इस राय का समर्थन किया। इसके बाद राज्य व केंद्रीय सरकार में बहस छिड़ गयी—केंद्रीय अटॉर्नी-जनरल ने कहा कि राज्य-सरकार अपने आप राष्ट्रीयकरण कर सकती है। यह गतिरोध अक्तूबर 1970 में राष्ट्रपति-शासन लागू होने तक चलता रहा।

कांग्रेस से अलग होने के तुरंत बाद चरणसिंह ने एक बयान में कहा—"बिना किसी रोक-टोक के प्रचार किया जा रहा है कि मैंने लाखों रुपया रिश्वत लेकर चीनी-मिलों के राष्ट्रीयकरण का सवाल टाल दिया। हो सकता है, मेरे ऊपर आरोप लगाने वाले अपनी तराजू से मुझे तोलते हों और इस तरह की बातों पर विश्वास करते हों।"

उन्होंने ब्यौरे से बताया कि कैसे उन्होंने केंद्रीय सरकार से प्रार्थना की कि चाहे सी० बी० आई० के ज़रिये, चाहे किसी न्यायाधीश द्वारा इस आरोप की खुलेआम अथवा चुपचाप जाँच करा ली जाये। लेकिन इन्दिरा गांधी राज़ी नहीं हुईं।

इसी बीच इलाहाबाद हाई-कोर्ट में एक बहुत दिलचस्प मामला आया जो चरणसिंह की सरकार पर कुछ रोशनी डालता है। रामपुर-स्थित रज़ा बुलंद शुगर फ़ैक्टरी के लिए सरकार की ओर से एक रिसीवर नियुक्त किये जाने के ख़िलाफ़ जस्टिस जी० एस० लाल ने एक याचिका मंज़ूर की। अपनी याचिका में प्रार्थी ने कहा था कि रिसीवर की नियुक्ति के बाद से फ़ैक्टरी को प्रतिदिन तीस हज़ार रुपये का घाटा उठाना पड़ रहा है। कारखाने की कुल देय राशि 68 लाख 95 हज़ार से बढ़कर 1 करोड़ 17 लाख हो गयी है।

चरणसिंह की सरकार ने जिस व्यक्ति को रिसीवर नियुक्त किया था, वह था केन-इंस्पेक्टर मानसिंह—चौधरी चरणसिंह का वही 'ईमानदार भाई'। उसके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की जा सकी।

चरणसिंह के एक पुराने राजनीतिक साथी ने एक बार कहा कि यदि चरणसिंह को अपने ढंग से काम करने दिया जाये तो वह "सारे राजा-महाराजाओं को उनकी पूरी शान-शौक़त के साथ फिर से वापस बुला लें।" प्रीवी-पर्स समाप्त करने के प्रस्ताव के वे कट्टर विरोधी थे। उनका कहना था कि "जो क़रार किया जाये उसे निभाना हमारा नैतिक कर्तव्य है।" उन्होंने अपने पक्ष में इंग्लैंड और जापान के उदाहरण दिये। उनका कहना था कि "यह समझना बकवास है कि प्रीवी-पर्स के समाप्त करने से जनतंत्र को सफलता मिल जायेगी। जापान और ब्रिटेन-जैसे विकसित देश किसी से कम जनतांत्रिक या कम प्रगतिशील नहीं हैं। इन देशों में सोशलिस्ट पार्टियाँ भी सत्ता में आयीं लेकिन उन्होंने भी राजघरानों को समाप्त नहीं किया।"

चरणसिंह को समाजवाद शब्द से ही चिढ़ है, वह इसे एक अभिशाप मानते हैं—ऐसा रामगोपाल का कहना है जो उनके तमाम राजनीतिक साथियों से कुछ ज़्यादा ही बेहतर उन्हें समझते हैं। एक दिन रामगोपाल ने चरणसिंह से पूछा कि बी० के० डी० की विचारधारा क्या है।

"मैं गांधीवाद में विश्वास करता हूँ, समाजवाद में मुझे कोई विश्वास नहीं है," उन्होंने कहा।

"लेकिन गांधीजी ने यह कभी नहीं कहा था कि यह समाजवाद के विरुद्ध हैं," रामगोपाल ने जवाब दिया।

"गांधीजी तो कभी समाजवाद के बारे में बात ही नहीं करते थे," चरणसिंह बोले।

कुछ दिन बाद रामगोपाल ने गांधीजी का लिखा "मेरा समाजवाद" शीर्षक लेख पढ़कर चरणसिंह को सुनाया। सुनते ही उन्होंने मुँह बना लिया और जवाब दिया, "मैं फिर भी समाजवाद शब्द को पसंद नहीं करता।"

लेकिन अब चरणसिंह अपने 'गांधीवादी समाजवाद' के बारे में बहुत बात-चीत करते हैं।

जवाहरलाल नेहरू ने एक बार उत्तर प्रदेश के किसी राजनीतिज्ञ से कहा था कि चरणसिंह 17वीं या 18वीं शताब्दी के व्यक्ति हैं। उनका युग-चेतना से कोई भी सरोकार नहीं है। किसी ने जाकर यह बात चरणसिंह से कह दी और उन्होंने नेहरू को एक विरोध-पत्र भेज दिया कि उन्होंने ऐसी बात क्यों कही?

चरणसिंह की पक्की धारणा है कि गांधीजी ने जो ग़लतियाँ कीं, उनमें सबसे बड़ी ग़लती थी जवाहरलाल नेहरू को प्रधानमंत्री बनाना। उनका विचार है कि जब तक इस देश में ऐसा नेतृत्व रहेगा जो शहरों की ओर उन्मुख हो तब तक भारत के कल्याण की कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। चरणसिंह का कहना है कि उनके लिए सबसे बड़ी रुकावट वर्ग-चेतना है। "एक किसान का लड़का दिल्ली में शासन चलाये? नहीं, यह नहीं हो सकता। समाचार-जगत मेरे ग्रामीण चरित्र को कभी नहीं बर्दाश्त कर सकते...!"

लेकिन गांधीजी से ज़्यादा ग्रामीण कौन हो सकता है? और गांधीजी से अधिक स्वीकार्य कौन होगा, जिसे एक से बढ़कर एक आधुनिक लोग भी मानते हैं?

राजनारायण चरणसिंह की "दुष्ट आत्मा" हैं। उन्होंने चरणसिंह को चुनाव-आयोग की फ़ाइल में से चिट्ठी निकलवाने के लिए राज़ी किया, जिससे जनता पार्टी के अंदर एक गंभीर संकट पैदा हो गया। चरणसिंह मुँहफट और बेरहम हो सकते है, लेकिन जोड़-तोड़ करने का काम उनके बस का नहीं है। उनकी दिलचस्पी सीधे-सादे खेलों में है। वह शतरंज की बजाय ताश खेलना पसंद करेंगे। जी-हुजूरी करने वाले आसानी से उनसे फ़ायदा उठा लेते हैं—यह हमेशा हुआ है तथा आज भी हो रहा है।

गृह-मंत्री के यहाँ राजनारायण धरना देने की मुद्रा में पालथी मारकर बैठ गये और उन्हें उकसाना शुरू कर दिया—"वे आपको बेइज़्ज़त करना चाहते हैं। लोक-सभा के चुनाव में सारे उत्तर भारत में टिकट बाँटने का पूरा अधिकार आपको मिला था, लेकिन अब वे आपको उत्तर प्रदेश के लिए केवल प्रेक्षक बना रहे हैं। इस तरह वे आपको अपमानित करने में लगे हैं।"

चरणसिंह चुपचाप सुनते रहे और राजनारायण तथा दूसरे लोग उनको अपमानित किये जाने की एक-एक घटनाएँ गिनाते रहे—'क्या आपके गुट को मंत्रिमंडल में उचित प्रतिनिधित्व मिला है? आपके कितने लोगों को गवर्नर बनाया गया? कितने लोगों को राजदूत बनाया गया? सारी महत्वपूर्ण जगहें तो वे अपने आदमियों से भर रहे हैं...।"

सबसे ज़्यादा निराशा तो उस समय हुई जब चंद्रशेखर को जनता पार्टी का अध्यक्ष बनाया गया। राजनारायण बौखला उठे, "एक यंग टर्क को लाकर माथे पर बिठा दिया।"

धीरे-धीरे चरणसिंह तैयार होने लगे थे। राजनारायण पहले भी विलिंगडन अस्पताल में अपनी इस तरकीब को आज़मा चुके थे, जब उन्होंने मोरारजी के समर्थन में पत्र प्राप्त किया था। इस बार फिर उनको कामयाबी मिलने जा रही है।

"आपके लिए सबसे ज़्यादा सम्मानजनक तरीक़ा यह होगा कि प्रेक्षक के इस फ़र्ज़ी पद से आप इस्तीफ़ा दे दें।" राजनारायण ने सलाह दी।

चरणसिंह भी धीरे-धीरे राजनारायण की तरह सोचने लगे। राजनारायण ने कहा—"चुनाव-चिह्न वापस ले लीजिये, फिर वे आपकी ताक़त को समझेंगे। बी० एल० डी० के चुनाव-चिह्न पर ही लड़कर जनता पार्टी लोक-सभा का चुनाव जीती थी। इस मौक़े पर अगर वह चिह्न वापस ले लिया गया तो पार्टी में बहुत ज़बर्दस्त संकट पैदा हो जायेगा और चंद्रशेखर एंड कंपनी आपके सामने घुटने टेक देगी।" राजनारायण ने अपने एक चमचे से कहा, "इलेक्शन कमीशन से फ़ोन मिलाओ।" चरणसिंह उपमुख्य-चुनाव-आयुक्त से बातचीत करने के लिए मजबूर हो गये। वह पत्र फ़ाइल से निकाल लिया गया और गृह-मंत्री के पास पहुँचा दिया गया।

11 मई 1977 को चुनाव-आयोग से चंद्रशेखर के पास एक आवश्यक संदेश आया जिसमें पूछा गया था कि उनकी पार्टी का चुनाव-चिह्न क्या होगा, और कहा गया था कि फ़ौरन फ़ैसला कर लीजिये, समय बिलकुल नहीं है, उसी दिन तय हो जाना चाहिए। चंद्रशेखर को संदेश पाकर धक्का लगा। उन्होंने पार्टी में व सरकार में अपने सहयोगियों से बातचीत की। उन लोगों ने इस चुनौती का सामना करने का फ़ैसला किया। चंद्रशेखर ने फ़ौरन ही कार्य-समिति की आपात-बैठक बुलायी, ताकि किसी दूसरे चुनाव-चिह्न के बारे में फ़ैसला किया जा सके। इस बीच मोरारजी देसाई ने उपमुख्य-चुनाव-आयुक्त को बुलवाया और आयोग की फ़ाइल से सरकारी कागज़ बाहर निकालने के लिए उसे ज़बर्दस्त डाँट पिलायी। चुनाव-अधिकारी घबराया हुआ गृह-मंत्री के घर पहुँचा। तब तक चंद्रशेखर ने चरणसिंह के पास यह ख़बर भिजवा दी थी कि यदि ग़ायब किया गया पत्र शाम के चार बजे तक आयोग के दफ़्तर में नहीं पहुँच जाता है तो पार्टी कोई दूसरा चुनाव-चिह्न ले लेगी। राजनारायण के लिए अब काफ़ी परेशानी पैदा हो गयी। उनकी योजना नहीं चली। उन्होंने उत्तर प्रदेश के प्रेक्षक-पद से चरणसिंह का इस्तीफ़ा लेकर जनता पार्टी के अध्यक्ष के पास भेज दिया था। अब एक ही तरीक़ा था कि जो ग़लती की गयी थी उसे जल्दी-से-जल्दी दुरुस्त किया जाये। चुनाव-चिह्न वाला पत्र आयोग को वापस भेज दिया गया, ताकि उसे उसकी जगह रख दिया जाये।

14 मई 1977 को राजनारायण ने चंद्रशेखर के मकान के बाहर एक प्रदर्शन आयोजित किया जिसमें लोग गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहे थे—"चरणसिंह नहीं तो चुनाव नहीं।" लेकिन उस शाम बदहवास राजनारायण जनता पार्टी के हेड-क्वार्टर में दौड़ते हुए पहुँचे, चरणसिंह का इस्तीफ़ा लिया और उसे फाड़कर फेंक दिया। ख़बरें जानने के लिए उत्सुक संवाददाताओं के सवाल का जवाब देते हुए उन्होंने कहा, "चरणसिंह एकदम वहीं हैं जहाँ पहले थे। वह उत्तर प्रदेश में प्रेक्षक के रूप में जायेंगे। पार्टी के अंदर किसी तरह का संकट नहीं है।"

चरणसिंह शायद ही कभी मुसकराते हों। लेकिन उस सवेरे कैमरामैनों के फ़्लैशों

की चमचमाती रोशनी में उनके होंठों पर एक हल्की मुसकान खेलती दिखायी दे रही थी। ऐसा लगता था, जैसे उन्होंने सारी दुनिया जीत ली हो। इन्दिरा गांधी की नाटकीय गिरफ़्तारी के दूसरे दिन सवेरे गृह-मंत्री शास्त्री-भवन में एक संवाददाता-सम्मेलन में बोल रहे थे। अभी तक उनके पास बहुत ज्यादा बधाई के तार तो नहीं आये थे, लेकिन उनके जवाब से लगता था कि उन्हें इतने तार मिलने की उम्मीद है कि कई ट्रक भर जायेंगे। संवाददाताओं से वह बड़े संतोष के साथ सी० बी० आई० की कार्य-कुशलता की तारीफ़ कर रहे थे—"किसी भी देश को इस तरह के संगठन पर गर्व हो सकता है।" चरणसिंह ने उत्तर प्रदेश में एक कुशल प्रशासक के रूप में काफ़ी शोहरत हासिल की थी और वह बेहद मेहनती तथा अपने काम में पक्के मंत्री के रूप में वे मशहूर थे। आज की घटना से लग रहा था कि उन्होंने काफ़ी मन से 'होम-वर्क' किया था। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे जिन्हें उनकी सफलता में संदेह हो रहा था। अगर इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ लगाये गये आरोप झूठे साबित हो गये तो क्या होगा? क्या वे इस्तीफ़ा दे देंगे? "मैं इस्तीफ़ा क्यों दूंगा?" चरणसिंह ने दम्भ-भरे आत्मविश्वास के साथ कहा, गोया इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ उठाये गये क़दम में किसी तरह की चूक नहीं की गयी थी!

तीस हज़ारी कोर्ट के बाहर भारी भीड़ जमा थी। तेज़ी से यह खबर फैल गयी थी कि इन्दिरा गांधी को यहाँ पेश किया जाना है। लेकिन पुलिस लाइन्स के ऑफ़िसर्स मेस से—जहाँ विनोबा की शिष्या सुशीला देशपांडे के साथ उन्होंने एक कमरे में रात गुज़ारी थी—उन्हें पार्लियामेंट स्ट्रीट में एक मजिस्ट्रेट की अदालत में ले जाया गया। बैरक-जैसी अदालतों के चारों तरफ़ पुलिस ने काफ़ी ज़बर्दस्त इंतज़ाम कर रखा था। दंगा-फ़साद के समय तैनात किये जाने वाली पुलिस के लोग हाथों में खपच्चीदार ढालें लिये सड़कों पर अकड़ते हुए चहलक़दमी कर रहे थे। तमाशबीनों की भीड़ जमा थी, पक्ष और विपक्ष से नारेबाज़ी भी हो रही थी—"इन्दिरा को फाँसी दो", "इन्दिरा की जय"।

जिस समय अंदर अदालत में वकीलों में बहस चल रही थी, बाहर आँसू-गैस के गोले फेंके जा रहे थे। कठघरे में खड़ी इन्दिरा गांधी की आँखों पर भी आँसू-गैस का असर हुआ। "मुझे थोड़ा पानी चाहिए," उन्होंने कहा और संजय गांधी पानी लाने के लिए बाहर लपके। उन्होंने एक रूमाल पानी में भिगोया और अपनी आँख पर रख लिया।

तक़रीबन एक घंटे बाद वह आज़ाद थीं। उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया गया था, क्योंकि मजिस्ट्रेट को "गिरफ़्तारी का कोई उचित कारण" नहीं मिल सका था। रातोंरात उनको शहीदों का रुतबा मिल गया था। शुरू से ही उनके मामले में ग़लतियाँ हो रही थीं।

उस शाम बेहद ख़ुश राजीव गांधी ने एक विदेशी संवाददाता से कहा, "ख़ुद मम्मी भी इतना बढ़िया सिनरियो नहीं लिख सकती थीं।" सचमुच, ऐसा लगता था, गोया चरणसिंह एकदम इन्दिरा गांधी के इशारों पर चल रहे हों। इन्दिरा गांधी ऐसे ही नायाब मौक़े की तलाश में थीं। गिरफ़्तारी उनके लिए एक वरदान हो गयी। फ्रांस के **ला मांद** अखबार ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए लिखा—"भारत में राजनीतिक बंदियों को अक्सर शहीद का दर्जा दिया जाता है। जैसाकि देसाई के अधिकतर मंत्रियों के लिए हुआ, यहाँ जेल सत्ता के महल की ड्योढ़ी मानी जाती है।"

अपने उतावलेपन के कारण चरणसिंह इन्दिरा गांधी के हाथों में खेल गये।

उनके दरबारी-चमचे उन्हें दिन-रात यह कहकर उकसाते थे कि जो सेहरा आपके माथे पर बँधना चाहिए था वह तो शाह कमीशन को मिल रहा है। उनके एक काफ़ी नज़दीकी समर्थक ने शह देते हुए कहा, "यह शाह कमीशन है क्या ? आप ही ने तो इसे बनाया है। फिर भी सारी वाहवाही उसे मिल रही है। आप उसे गिरफ़्तार करिये और फिर सारा देश आपके क़दम चूमने लगेगा। आप सारे देश के हीरो बन जायेंगे।"

कई हफ़्तों से चरणसिंह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि "एक बहुत बड़ी मछली के लिए" जाल बिछाया जा चुका है। उनके क़रीबी लोगों को कई दिन पहले से ही पता चल गया था कि महात्मा गांधी के जन्म-दिन, 2 अक्तूबर को इन्दिरा गांधी गिरफ़्तार की जायेंगी निस्संदेह इन्दिरा गांधी को भी अपनी भावी गिरफ़्तारी का सुराग़ लग गया था। (यहाँ तक कि उन्होंने साइक्लोस्टाइल किया अपना बयान भी तैयार कर रखा था)। पर यह सुराग़ कैसे लगा—इसके बारे में दो राय हैं। कुछ लोगों के अनुसार सी० बी० आई० में उनके एक वफ़ादार अफ़सर ने उनको बता दिया। कुछ अन्य लोगों का कहना है कि यह सूचना एक तांत्रिक ने पहुँचायी थी, जिसका दोनों खेमों में उठना-बैठना है।

इन्दिरा गांधी को एक ऐसा नाटक दिखाने का मौक़ा मिल गया, जिसमें उन्हें महारत है।

3 अक्तूबर 1977 की शाम को 5 बजे के आस-पास जब सी० बी० आई० के पुलिस-सुपरिंटेंडेंट एन० के० सिंह 12 विलिंगडन क्रिसेंट पहुँचे और इन्दिरा गांधी को गिरफ़्तार करने के लिए बढ़े तो वह गरज पड़ीं—"मुझे हथकड़ी पहनाइये। मैं तब तक नहीं जाऊँगी जब तक मुझे हथकड़ी नहीं पहनायी जायेंगी।"

संजय गांधी शहर-भर के अपने गुंडे-दोस्तों को अंधाधुंध फ़ोन करते जा रहे थे। एक दूसरे फ़ोन से आर० के० धवन कांग्रेस-नेताओं और अखबारों के दफ़्तरों को इत्तला देने में लगे थे। एक संवाददाता को मेनका गांधी की पत्रिका सूर्या के ऑफ़िस से फ़ोन मिला कि यदि वह इन्दिरा गांधी के मकान पर अभी फ़ौरन पहुँचे तो कुछ खबरें मिल सकती हैं।

"मेरे खिलाफ़ वारंट और एफ़० आई० आर० कहाँ है ?" इन्दिरा गांधी ने एन० के० सिंह से पूछा।

सी० बी० आई० के अफ़सर को लग रहा था, गोया वही अपराधी हो। उसने हकलाते हुए कहा, "सी० बी० आई० के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि वह एफ़० आई० आर० की नक़ल या गिरफ़्तारी का वारंट दिखाये।"

"यह चरणसिंह का नया क़ानून होगा," इन्दिरा गांधी के वकील फ्रेंक एन्थोनी ने कहा।

"जब तक आप मुझे हथकड़ी नहीं पहनायेंगे, मैं यहाँ से हिलूंगी भी नहीं—लाइये हथकड़ी और मुझे ले चलिये।" वह तेज़ी से अन्दर की तरफ़ चली गयीं।

उन्होंने तैयार होने में काफ़ी समय लगाया—लगभग तीन घंटे। सी० बी० आई० के अफ़सरों ने कहा कि अगर वे ज़ाती मुचलका दे दें तो उन्हें उनको वहीं रिहा किया जा सकता है। "मैं क्यों ऐसा करूँ ?" वह चीख़ पड़ीं और फिर अंदर चली गयीं।

इससे पहले कि वह अंतिम रूप से तैयार होकर पुलिस के साथ जाने के लिए बाहर आतीं, भूतपूर्व रक्षा-मंत्री बंसीलाल कुछ संवाददाताओं को मना रहे थे कि वे इन्दिरा गांधी से कुछ सवाल पूछें, ताकि रवानगी में थोड़ी और देर की जा

सके। उन्होंने कहा कि इन्दिरा गांधी चाहती हैं कि पत्रकार "उन्हें बातचीत में लगाये रखें।"

जब वह बाहर आयीं तो उनके चेहरे पर उदासी और तनाव दिखायी दे रहा था, पर जैसे ही कैमरों ने तसवीरें लेनी शुरू कीं वह मुसकरा पड़ीं। इस बार वह सचमुच अपने आस-पास संवाददाताओं की भीड़ का स्वागत कर रही थीं। उनके सवालों का जवाब देने के लिए तैयार खड़ी थीं। दरअसल वह इसी इंतज़ार में थीं कि संवाददाता उनसे और सवाल करें। जब वह जाने के लिए तैयार हुईं तो आठ बज चुके थे। शायद पंडितों ने इसी को शुभ घड़ी बताया था। तब तक संजय की पलटन भी पहुँच गयी थी। पुलिस की गाड़ी उन्हें लेकर बड़कल लेक की तरफ़ रवाना हुई तो पीछे हुल्लड़बाज़ों का एक लंबा कारवाँ भी चल दिया। और फिर रेलवे-क्रॉसिंग के पास वह नाटकीय घटना घटी—भारत की भूतपूर्व मलिका एक पुलिया पर बैठकर दिल्ली की सीमा से बाहर जाने से इनकार कर रही थी।

शुरू से अंत तक इस मामले में जितना अनाड़ीपन बरता गया उससे ज़्यादा बेवकूफ़ी की कल्पना भी नहीं की जा सकती, और फिर भी चरणसिंह इसे "बिलकुल न्यायोचित" ठहराने में लगे थे। इन्दिरा गांधी के प्रति जो नरमी दिखायी गयी उसे वह उनके प्रति अपने सम्मान का सूचक बता रहे थे। कुछ ही दिन बाद उन्होंने कहा, "मैं उन्हें अपनी बहन की तरह समझता हूँ। वह 11 वर्षों तक प्रधानमंत्री रही हैं। वह एक ऐसे व्यक्ति की बेटी हैं जिसने एक अरसे तक देश पर हुकूमत की।" मानो यह कहने से जल्दबाज़ी और अनाड़ीपन के साथ किये गये काम के भौंडेपन को छुपाया जा सकता हो!

चरणसिंह ने प्रधानमंत्री तथा अपने कुछ अन्य सहयोगियों को विश्वास दिलाया था कि इन्दिरा गांधी के खिलाफ़ उनके पास "फ़ौजदारी के पके-पकाये मामले" हैं और किसी तरह की गड़बड़ी की कोई आशंका नहीं है। वह इतने ज़्यादा निश्चित थे कि उन्होंने क़ानूनी मुद्दों पर क़ानून-मंत्री से भी सलाह करने की ज़रूरत नहीं महसूस की। लेकिन जिस काम को करके वह एक बड़े हीरो बनना चाहते थे, उसी ने दिखा दिया कि प्रशासनिक क्षमता और योग्यता के लिए उनकी शोहरत निराधार है।

शाह आयोग को तो उन्होंने एक तरह से खत्म ही कर दिया। 4 अक्तूबर को जिस समय विजय की मुद्रा में गृह-मंत्री संवाददाता-सम्मेलन में बोल रहे थे, जस्टिस शाह ने आयोग की बैठक को अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया। उन्होंने इस गिरफ़्तारी को आयोग के काम में हस्तक्षेप माना। एक बार तो उन्होंने अपना इस्तीफ़ा भी भेज दिया, लेकिन प्रधानमंत्री ने उनसे इसे वापस ले लेने के लिए आग्रह किया। "इससे जनता सरकार का ही खात्मा हो जायेगा," मोरारजी ने जस्टिस शाह से कहा।

उधर चरणसिंह के मकान पर परदे के पीछे एक और नाटक चल रहा था। गिरफ़्तार किये जाने वाले लोगों की जो सूची सी० बी० आई० के पास थी उनमें प्रसिद्ध उद्योगपति और कई अखबारों के मालिक, के० के० बिड़ला का भी नाम था। इन्दिरा गांधी की गिरफ़्तारी से कुछ ही दिन पहले राजनारायण ने के० के० बिड़ला और गृह-मंत्री के बीच एक मुलाक़ात का जुगाड़ बैठाया था। बिड़ला चरणसिंह के मकान पर गये, लेकिन उनके लिए यह एक मुश्किल मुलाक़ात थी। बताया जाता है कि उनके ज़बर्दस्त हिमायती राजनारायण ने चरणसिंह से अनुरोध किया कि बिड़ला से अलगाव 'बुद्धिमानी' नहीं होगी; बिड़ला महज़ 'एक व्यक्ति

नहीं बल्कि एक साम्राज्य' हैं। के० के० बिड़ला को हर बात की जानकारी मिलती रही और उन्हें सुराग़ मिल गया था कि उनकी गिरफ़्तारी होने वाली है। वह विदेश-यात्रा पर रवाना हो गये।

4 अक्तूबर को चरणसिंह के नज़दीकी क्षेत्रों में इस अफ़वाह से बेचैनी फैली थी कि गृह-मंत्री को निकालने के लिए बड़े पैमाने पर काम हो रहा है। किसी व्यावसायिक संस्थान का सबसे बड़ा अधिकारी चरणसिंह को निकालने की योजना को अमली रूप देने दिल्ली आया है। जनता पार्टी के कुछ संसद-सदस्यों को खरीदने की तैयारियाँ जारी हैं। उस रात लगभग साढ़े नौ बजे नानाजी देशमुख को गृह-मंत्री ने अपने घर बुला भेजा। गृह-मंत्री के मकान के चारों तरफ़ सुरक्षा का कड़ा इंतज़ाम था। ऐसा लगता था कि हर झाड़ी के पीछे पुलिस के जवान बैठे हैं। अंदर से राजनारायण के साथ जय गुरुदेव निकल रहे थे। राजनारायण ने बाबा के पैर छुए, आशीर्वाद लिया और नानाजी देशमुख के साथ वापस अंदर लौट गये।

चरणसिंह अपने तीन महान सलाहकारों के बीच घिरे बैठे थे। ये थे—राजनारायण, नानाजी देशमुख और किसी ज़माने में इन्दिरा गांधी के चहेते दिनेशसिंह, जो जनता पार्टी में शामिल हो गये हैं। चरणसिंह को सलाह दी गयी थी कि वह एक साथ बहुत-से लोगों से टक्कर न लें।

लखनऊ की एक संक्षिप्त यात्रा से वापस आने पर चरणसिंह को पार्टी-अध्यक्ष चन्द्रशेखर का एक पत्र मिला, जिसमें उन्होंने इन्दिरा गांधी की गिरफ़्तारी के मामले का क़ायदे से संचालन न करने पर क्षोभ प्रकट किया था। गृह-मंत्री को इसमें अपनी व्यक्तिगत निंदा की गंध मिली—खास तौर से इसलिए कि चन्द्रशेखर के पत्र का पार्टी के महामंत्रियों ने अनुमोदन किया था। चरणसिंह ने सरकार से अपना इस्तीफ़ा लिखा। उनके चमचों को जब इस्तीफ़े की खबर मिली तो वे भागे-भागे पहुँचे और कहने लगे, "अगर आपने इस्तीफ़ा दे दिया तो जनता सरकार गिर जायेगी।" चन्द्रशेखर को भी समझाया-बुझाया गया और उन्होंने एक दूसरा पत्र लिखा जिसमें कहा कि उन पर कीचड़ उछालने का कोई इरादा नहीं था। चरणसिंह ने फ़ौरन अपना इस्तीफ़ा वापस ले लिया।

इस घटना के बारे में चरणसिंह ने संवाददाताओं को जो विवरण दिया वह थोड़ा भिन्न था। कुछ ही हफ़्तों बाद उन्होंने एक भेंट-वार्ता में कहा, "राजनीतिक ज़िम्मेदारी (इन्दिरा गांधी के मामले के संचालन की) मेरी थी, इसीलिए मैं इस्तीफ़ा देना चाहता था...ब्रिटिश परंपरा के अनुसार मुझे इस्तीफ़ा दे देना चाहिए था और मेरा इस्तीफ़ा आज भी लिखा रखा है। लेकिन मेरे दोस्तों ने कहा कि यदि अन्य मामलों में भी ब्रिटिश परंपरा का पालन किया जाता हो तब तो आप इस्तीफ़ा दें, लेकिन यदि ऐसा नहीं है तो आप क्यों इस्तीफ़ा दें? मेरे दोस्तों ने यह भी कहा कि यदि आप इस्तीफ़ा दे देंगे तो जनता पार्टी कितने दिन टिक सकेगी...!"[12]

उनके 'दोस्तों' ने चाहे जो सोचा हो, लेकिन चरणसिंह की इज़्ज़त धूल में मिल चुकी थी। 'लौह पुरुष' एकदम खोखला निकला। लेकिन अपनी इस भयंकर असफलता पर परदा डालने के लिए उन्होंने सारे देश की यात्रा की और जगह-जगह बहादुरी-भरे बयान दिये, लेकिन बाद में फँस जाने पर कुछ बयानों से मुकर गये। बंबई की एक पत्रिका से भेंट में उन्होंने बताया, "आपको यह जानकर हैरानी होगी कि मैंने और गृह-सचिव ने दो महीने से ज़्यादा समय पहले जस्टिस शाह से बात की थी और हमने उनको बता दिया था कि इस तरह (भ्रष्टाचार) के

मामले हम खुद ही देखेंगे।" संसद में जब उन पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने शाह आयोग के काम में दखलंदाज़ी की है तो उन्होंने बड़े सौम्य लहज़े में कहा कि उन्हें ऐसा एक भी मौक़ा याद नहीं जब जस्टिस शाह द्वारा कार्यभार ग्रहण किये जाने के बाद उन्होंने जस्टिस शाह से भेंट की हो।

चरणसिंह के दोस्त उनकी तसवीर फिर से बनाने में लगे हैं। इसके लिए उन्होंने भी उन्हीं तरीक़ों का सहारा लिया, जो संजय गांधी अपनी माँ की घटती प्रतिष्ठा को वापस लाने के लिए अपनाता था। उन्होंने ट्रकों में भर-भर कर उत्तर प्रदेश और हरियाणा से लोगों को लाना शुरू किया, ताकि दुनिया को दिखा सकें कि उनका नेता कितना शक्तिशाली है। चरणसिंह के समर्थन में पहला प्रदर्शन, जो संजय गांधी के अंधकार भरे दिनों की याद दिलाता था, 14 नवम्बर को आयोजित किया गया। हज़ारों की संख्या में ग्रामीण-जन 'चरणसिंह की जय' के नारे लगाने के लिए राजधानी में लाये गये। इसके लिए दिन चुना जवाहरलाल नेहरू का जन्म-दिन—वे नेहरू की मूर्ति जो तोड़ना चाहते हैं। प्रदर्शन के पीछे राजनारायण की योजना काम कर रही थी और वह गला फाड़-फाड़ कर उन लोगों की निन्दा करने में जुटे थे, जो "गृह-मंत्री पर कीचड़ उछालने में लगे हैं।" एक 'दोस्त' ने प्रस्ताव पेश किया जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया—इसमें चरणसिंह के प्रति जनता के पूर्ण समर्थन को व्यक्त किया गया था और "पूँजीवादी ताक़तों तथा नौकरशाही की भर्त्सना की गयी थी, जो उन्हें बदनाम कर रहे हैं और गृह-मंत्री-पद छोड़ने के लिए मजबूर कर रहे हैं।"

दिल्ली-पुलिस ने लगभग 240 ट्रकों का चालान किया, जो चरणसिंह के समर्थकों को दिल्ली के बाहर से लाये थे। बाद में एक 'नीति सम्बन्धी फ़ैसले के अनुसार' चालान रद्द कर दिये गये। ट्रैफ़िक पुलिस के एस० पी० का तबादला कर दिया गया।

14 नवम्बर की रैली तो उस बड़े तमाशे की रिहर्सल-भर थी, जिसने 23 दिसम्बर 1977 को दिल्ली में हंगामा मचा दिया। 23 दिसम्बर को चौधरी चरणसिंह का 76वाँ जन्म-दिन था। इस अवसर पर आयोजित 'किसान रैली' से पूर्व 'दिल्ली चलो' की अपील करते हुए चरणसिंह के एक प्रमुख समर्थक चाँदराम ने एलान किया, "वह (चरणसिंह) किसानों और मज़दूरों के मसीहा हैं। जातिवाद को जड़ से उखाड़ने का साहस केवल उनके ही अंदर है। उन्होंने सार्वजनिक जीवन को भ्रष्टाचार और गंदगी से मुक्त कराने का बोझ अपने कंधों पर लिया है। क़ानून का पालन करने वाली सरकार की फिर से स्थापना करने का श्रेय उनको ही प्राप्त है। वह उन लोगों में से है जो बड़ी-से-बड़ी हस्ती और बड़े-से-बड़े उद्योगपति पर हाथ उठाने का साहस रखते हैं। जनता पार्टी के बीज भी उन्होंने ही डाले—सबसे पहले 1973-74 में भारतीय क्रांति दल की स्थापना के द्वारा और फिर सभी विरोधी दलों को मिलाकर एक पार्टी का रूप देकर। वह एक साधारण किसान-परिवार में पैदा हुए हैं और उन्होंने ग़रीबी देखी है—इसलिए वर्षों के प्रशासनिक अनुभवों के धनी हमारे गृह-मंत्री हरिजनों, पिछड़ी जातियों, किसानों और मज़दूरों का भला नहीं कर सकते तो और कौन कर सकता है?"

अपने प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए लाये गये लाखों किसानों को सम्बोधित करते हुए इस शक्तिशाली नेता ने एलान किया—"अब आप दिल्ली का रास्ता जान गये हैं।" वह अपने शहर-विरोधी विचारों को नहीं दबा सके। बोले, "वे (शहर वाले) मेरे ग्रामीण रूप को कभी नहीं सह सकते...उन्हें बर्दाश्त नहीं

है कि एक किसान का लड़का दिल्ली में राज संभाले हुए है...!"

कई साल पहले जब चरणसिंह खाली उत्तर प्रदेश में ही चमकते थे, एक पैनी दृष्टि वाले पत्रकार ने उनके मंसूबों को भाँप लिया था—"वह (चरणसिंह) चहलक़दमी तो लखनऊ में करते हैं, पर उनकी दूरबीन नयी दिल्ली पर लगी रहती है।"[13]

अब वह दिल्ली पहुँच गये थे और उन्हें शहरी लोगों को अपनी ताक़त दिखाने का मौक़ा मिल गया था। उन्होंने किसानों से कहा, "आप तब तक ग़रीबी दूर नहीं कर सकते, जब तक आपके हाथ में सत्ता न आ जाये और आपकी सरकार न बन जाये।"

उनको 'महानतम समकालीन भारतीय नेता' और 'लौह पुरुष' कहकर उनकी जय-जयकार करने के लिए मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों और जनता पार्टी के नेताओं की भीड़ जमा थी। महत्वपूर्ण बात यह है कि रैली में केवल दो नेताओं की तसवीर लगी थीं—महात्मा गांधी की और सरदार पटेल की।

मोरारजी ने यह कहकर कि उनका 'गंदी व्यक्ति-पूजा' में कोई यक़ीन नहीं है, अपने को इस समारोह से अलग रखा। यह कोई पहला मौक़ा नहीं था जब मोरारजी ने ऐसा कहा हो। काफ़ी पहले 1966 में जब सी० बी० गुप्ता के प्रशंसकों और दोस्तों ने लखनऊ में उनका जन्म-दिन मनाने के लिए ज़बर्दस्त समारोह का आयोजन किया था और 43 लाख रुपये की थैली भेंट की थी, उस समय भी संयोजकों के नाम भेजे गये एक संदेश में मोरारजी ने कहा था कि वह इस समारोह में ज़रूर भाग लेते पर "सिद्धांततः मैं जन्मदिन-समारोहों में भाग नहीं लेता हूँ।"

चरणसिंह के एक दूसरे सहयोगी जगजीवनराम ने किसान रैली पर टिप्पणी करने से इनकार किया। जब उनसे बार-बार ज़ोर देकर पूछा गया तो उन्होंने झल्लाकर कहा, "मुझसे बेहूदे सवाल मत पूछिये।"

उत्तर प्रदेश के एक हरिजन विधायक ने जब चरणसिंह के पास पत्र लिखकर जन्म-दिन मनाने के रिवाज पर एतराज़ किया तो जवाब में चरणसिंह ने उसे लिख भेजा, "मैं बड़े पैमाने पर इस तरह के किसी आयोजन के पक्ष में नहीं था, लेकिन मेरे दोस्तों और कुछ अन्य नौजवानों की राय मुझसे एकदम अलग थी—उनका कहना था कि जन्म-दिन-समारोहों का आयोजन कोई नयी बात नहीं है। इससे पहले भी अन्य राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा इस तरह के समारोहों का आयोजन होता रहा है। उदाहरण के लिए, इस वर्ष 5 अप्रैल को लोगों ने श्री जगजीवनराम का जन्म-दिन मनाया। मुझे नहीं पता कि उस समय आपने या आपके सलाहकारों ने इस तरह का कोई विरोध-पत्र भेजा था या नहीं। यदि जनता बड़ी संख्या में मौजूद थी तो मेरे प्रति अपने प्यार के कारण और वह अपने-आप आयी थी।"

इस चाटुकारी का राग अलापने में प्रेस इन्फ़ार्मेशन ब्यूरो के कुछ अफ़सर भी पीछे नहीं रहे—इन्दिरा गांधी का गुणगान करते-करते उन्हें वर्षों से इस काम का प्रशिक्षण मिल चुका था। 'किसान रैली' जिस दिन हुई उसके आस-पास उन्होंने चरणसिंह की साइक्लोस्टाइल की हुई 16 पृष्ठ लंबी प्रशस्ति वितरित की, जिसका शीर्षक था—'धर्मयोद्धा'। यह गृह-मंत्री का केवल जीवन-परिचय नहीं था, जिसे जब जी चाहे प्रसारित करने का पूरा-पूरा अधिकार प्रेस इन्फ़ॉर्मेशन ब्यूरो को है। यह एक महान हस्ती के पक्ष में दी गयी दलीलों से भरा दस्तावेज था, जिसमें एक जगह कहा गया था, "श्री चरणसिंह को इसलिए अनेक वाम-पंथी दलों के विरोध

का सामना करना पड़ा कि वह उनके पैरों तले की ज़मीन काटने में लगे थे। इन दलों की खीज समझ में आती है, क्योंकि ये ग़रीबों के दुःखों से लाभ उठाकर ही फलते-फूलते हैं। इसीलिए कम्युनिस्ट पार्टी उनको अपना सर्वप्रमुख शत्रु मानती है। आज भी कम्युनिस्ट पार्टी उन्हें कुलक कहकर बदनाम करती है जबकि ज़मींदार उनको अपना ऐसा विरोधी मानते हैं जो उनके साथ कोई रू-रिआयत नहीं करेगा। आज श्री चरणसिंह केन्द्र में सत्तारूढ़ हैं—या यूँ कहिये कि सत्तारूढ़ त्रिमूर्ति का एक महत्वपूर्ण अंग है...।"

अगर प्रधानमंत्री ने गणराज्य-दिवस पर दी जाने वाली उपाधियों को खत्म नहीं किया होता तो इस दस्तावेज़ को लिखने वाले अफ़सर को कम-से-कम 'पद्मश्री' तो मिल ही जाती।

ढोल पीटने वालों की अगली क़तार में उनके एक भूतपूर्व 'पूँजीवादी दुश्मन' के० के० बिड़ला भी थे। बिड़ला के दलाल गृह-मंत्री को अपने अनुकूल बनाने के लिए हर रोज़ कई-कई घंटे उनकी बैठक में गुज़ारते थे। बिड़ला के अखबार हिन्दुस्तान टाइम्स ने, जिसने निरंतर संजय गांधी और इन्दिरा गांधी का गुणगान किया था, अगले दिन सवेरे अपने पहले पेज पर 'किसान रैली' की छह कॉलम की तसवीर छापी और गृह-मंत्री की तारीफ़ के पुल बाँधते हुए दो-दो खबरें छापीं—एक से उसे संतोष नहीं हुआ था। लेकिन चरणसिंह को मनाना लोहे के चने चबाना जैसा है।

चरणसिंह की यह धारणा रही है, जिसका वह बार-बार उल्लेख करते हैं, कि "यू० पी० पर जिसका नियंत्रण है, समूचे भारत पर उसी का नियंत्रण होगा।" वह अब दिल्ली आ गये, पर यू० पी० पर अपना नियंत्रण दूर से ही नाते-रिश्तेदारों की मदद से बनाये हुए हैं। उत्तर प्रदेश की एक प्रचलित कहावत है कि जिसने राज्य के चीनी-उद्योग पर क़ब्ज़ा कर लिया वही उत्तर प्रदेश की राजसत्ता पर क़ब्ज़ा कर सकता है।

गृह-मंत्री के दामाद के लिए, जो शादी से पहले एक मामूली क्लर्क था, एक विशेष पद तैयार किया गया और उसे डिप्टी-केन-कमिश्नर बना दिया गया। केन-कमिश्नर कहने के लिए बड़ा बना रहा। खुशी की बात यह है कि गन्ना और उद्योग-मंत्री हैं चन्द्रावती, जो चरणसिंह की रिश्तेदार हैं और एक बार राज्य विधान-परिषद की सीट के लिए रो पड़ी थीं। मज़े की बात यह है कि गन्ना और उद्योग-उपमंत्री के पद पर भी एक वफ़ादार जाट है। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति तो है डिप्टी-केन-कमिश्नर, जिसके बारे में कहा जाता है कि वह चीनी उद्योगपतियों की वकालत करने वालों तथा मंत्रिमंडल के दरमियान बिचौलिया है।

गृह-मंत्री के ज्येष्ठ दामाद को, जो जनता पार्टी का एक विधायक भी है, वेयर-हाउसिंग कॉरपोरेशन का अध्यक्ष बनाया गया है। इस पद के लिए काफ़ी मोटी तनख्वाह मिलती है तथा वे सारी सुविधाएँ प्राप्त हैं जो कोई भी केबिनेट स्तर का मंत्री पाता है।

डिप्टी-केन-कमिश्नर की पत्नी सरोज वर्मा चरणसिंह की प्रिय पुत्री हैं। उनकी अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाएँ हैं। उन्हें राज्य कल्याण परिषद का सदस्य मनोनीत किया गया, लेकिन उन्हें अचानक लगा कि उनको तो उपाध्यक्ष होना चाहिए। बोर्ड के पास लगभग 2 करोड़ का बजट होता है और उपाध्यक्ष

राज्य-भर में काफ़ी लोगों को संरक्षण देने की हैसियत में होता है। इस युवती के कहने-भर की देर थी कि इसे उपाध्यक्ष बना दिया जाता। रास्ते में एक बहुत बड़ी अड़चन आ गयी—कमला बहुगुणा, जनता पार्टी की संसद-सदस्या और हेमवतीनंदन बहुगुणा की पत्नी। वह केन्द्रीय कल्याण बोर्ड की ओर से मनोनीत थीं। राज्य बोर्ड की पहली बैठक में, जिसमें उपाध्यक्ष और कोषाध्यक्ष का चुनाव होना था, भाग लेने के लिए वह आ गयीं।

सरोज वर्मा का नाम प्रस्तावित होने पर कमला बहुगुणा ने एतराज़ किया और कहा कि सरोज वर्मा इस महत्वपूर्ण पद के लिए एकदम अनुभवहीन और कम-उम्र हैं। कमला बहुगुणा ने इस पद के लिए एक भूतपूर्व विधायिका कमला गोयंदी-का नाम रखा, जो कस्तूरबा ट्रस्ट से काफ़ी दिन से सम्बद्ध हैं और राज्य में काफ़ी जानी-मानी हैं, इमरजेंसी के दौरान जेल भी गयी थीं।

इस प्रस्ताव पर बोर्ड के सदस्यों में बड़ी खलबली मच गयी, काफ़ी हंगामा हो गया। अंततः दो या तीन सदस्य कमला बहुगुणा के प्रस्ताव के पक्ष में हो गये। बौखलायी हुई सरोज वर्मा खुद ही अपने लिए दलील देने खड़ी हुईं, "उपाध्यक्ष बनने के लिए मैं पूरी तरह योग्य हूँ। देखती हूँ कि मुझे कौन रोकता है?" वह गुस्से से लाल-पीली हो रही थीं और बौखलाहट में मेज़ पर हाथ पटक रही थीं।

"ऐसा कोई काम नहीं है जिसे मैं नहीं कर सकती," वह युवती चीखते हुए बोली और साथ में उसके समर्थकों ने भी शोरगुल किया। "उपाध्यक्ष पद के अलावा और किसी पद को मैं नहीं स्वीकार करूँगी...।"

आख़िरकार बड़े बेमन से वह कोषाध्यक्ष बनने के लिए राज़ी हो गयी, लेकिन गुस्से से कहती रही कि आज नहीं तो कल ज़रूर उपाध्यक्ष बनूँगी।

एक घंटे की इस गर्मागर्म झड़प में एक सदस्य अपने साथी से कहता हुआ सुना गया—"यह नया संजयवाद है।"

टिप्पणियाँ

1. धर्मयुग में प्रकाशित चरणसिंह की भेंट-वार्ता, 8 मई 1977
2. नेशनल हेराल्ड, लखनऊ, 8 अक्तूबर 1977
3. सुव्रतकुमार मित्रा का एक अप्रकाशित निबंध।
4. लिंक, 9 अप्रैल 1967
5. पाल आर० ब्रास, फ़ैक्शनल पॉलिटिक्स इन ऐन इंडियन स्टेट, पृ० 139
6. वही, पृ० 141
7. चरणसिंह, एग्रेरियन रिवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश
8. रामगोपाल, एम० एल० सी० की लेखक से बातचीत।
9. पैट्रियट, 5 अगस्त 1970
10. द स्टेट्समैन, 18 अगस्त 1970
11. नेशनल हेराल्ड, लखनऊ में आर० के० गर्ग का कथन, 12 अगस्त 1970
12. सनडे, अक्तूबर 1977
13. फ्रैंक मोरेस, इंडियन एक्सप्रेस, 28 सितम्बर 1970

4

जगजीवनराम—एक बम का गोला जो समय आने पर ही फटता है

इमरजेंसी के दौरान कोई केंद्रीय मंत्री इतना डरा हुआ नहीं था जितना जगजीवनराम। देश में फैली अफ़वाहों में एक यह भी थी कि जगजीवनराम को नजर बंद कर लिया गया है। वैसे तो यह अफ़वाह ग़लत थी। वह बराबर मंत्री बने रहे और अपना सारा काम-काज बदस्तूर करते रहे। कभी-कभार वह जलसों में भी चले जाते थे। लेकिन हर समय वह बेहद डरे-डरे रहते थे—अपनी परछाईं से भी उन्हें डर लगता था।

कोई उनसे मिलने आता तो वह सजग हो जाते। अधिकतर आगंतुकों को कोई-न-कोई बहाना करके लौटा दिया जाता था। फिर भी कुछ लोग थे जिनसे मुलाक़ात टालना मुश्किल होता था। इमरजेंसी के शुरू के दिनों में उनके सूबे के एक पुराने राजनीतिक साथी मिलने आये। दोनों ने काफ़ी अर्से तक दुख-सुख के दिन एक साथ काटे थे। उनसे मिलने से वह बच नहीं सकते थे। जब वह उनके कमरे में पहुँचे तो इन्दिरा गांधी व इमरजेंसी के बारे में खरी-खरी सुनाने लगे और बोले—"तुम यह सब कैसे बर्दाश्त कर लेते हो?' जगजीवनराम के काटो तो ख़ून नहीं। काँपते शरीर वे सोफ़े से उठे और सहमी निगाहों से इधर-उधर, दरवाज़े के बाहर झाँकते हुए देखने लगे। सारा बदन पसीने में सराबोर। उन्होंने कहा, "आओ, बाहर लॉन में चलें।" बाहर जाकर अपने मित्र से बोले—"ऐसी बातें वहाँ नहीं कहनी चाहिए थीं। मकान के एक-एक-कोने में जासूसी उपकरण लगे हैं, देवीजी ने घर में भी जासूस लगा रखे हैं।"

इमरजेंसी लगने के बाद जगजीवनराम ने सबसे पहला काम यह किया कि अपनी चमचमाती हीरे की अँगूठियाँ निकालकर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दीं। उन्होंने अपनी पत्नी की हीरे की नाक की लौंग भी निकालकर कहीं भिजवा दी। अपने कमरे की पूरी तरह तलाशी लेकर हर ऐसे सामान को हटा दिया जिस पर कोई एतराज़ कर सके। लेकिन इस तरह की एहतियात तो उन दिनों वह सभी

राजनीतिज्ञ बरत रहे थे जिनसे देवीजी खुश नहीं थीं। जगजीवनराम को जिस भय ने जकड़ रखा था वह बेशक़ीमती हीरे-जवाहरात और ज़ेवरों का नहीं था।

फिर डर किस बात का था ? वह कौन-सी चीज़ थी जिससे उनके होश फ़ाख्ता हो रहे थे ? जो लोग उनको काफ़ी नज़दीक से जानते थे, उन्हें यह देखकर हैरानी हुई कि संजय गांधी तक की झिड़की को वह चुपचाप पी गये। उन्होंने इमरजेंसी लगाये जाने के विरोध में इस्तीफ़ा नहीं दिया, लेकिन इस्तीफ़ा तो उनके कई अन्य साथियों ने भी नहीं दिया था, हालाँकि वे इन्दिरा गांधी और उनके लड़के की चाल-ढाल के उतने ही आलोचक थे जितने कि जगजीवनराम। सवाल यह उठता है कि आखिर जगजीवनराम से ही क्यों इमरजेंसी से संबंधित बिल पार्लियामेंट में पेश कराया गया ? अगर इमरजेंसी उनकी अंतरात्मा के खिलाफ़ थी तो क्यों नहीं वह बिल पेश करने से इंकार कर सके ? यह आम धारणा है कि जगजीवनराम को ब्लैक-मेल किया गया और देवीजी के हाथ इनकी ऐसी कमज़ोर नस लग गयी थी कि यह झुकने पर मजबूर हो गये। किसी को यह नहीं पता कि वह कमज़ोर नस कौन-सी थी !

जगजीवनराम के बारे में मशहूर है कि वह केंद्रीय सरकार के सबसे अच्छे प्रशासकों में हैं। लेकिन उनकी राजनीतिक और न व्यक्तिगत तसवीर ही इतनी अच्छी नहीं है कि किसी को उनसे रश्क हो। वह बहुत लंबे अर्से से मंत्री हैं और इस दौरान कई बार किसी-न-किसी घोटाले में उनका नाम लिया गया है। लेकिन वह एक ही घाघ हैं और बड़े होशियार रहते हैं कि कहीं कोई बेवकूफ़ी न हो जाये, कोई अता-पता न रह जाये। और फिर राजनीतिज्ञों के खिलाफ़ भ्रष्टाचार के आरोप तो आजकल आये दिन लगाये जाते रहते हैं। दो-चार आरोप लगें, न लगें, इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है ! ज्यादा-से-ज्यादा मंत्रिमंडल से निकाल दिये जाते, कोई जाँच-आयोग बैठा दिया जाता। क्या होता ? इससे राजनीति का कोई मँजा खिलाड़ी और फिर इतना पुराना, ऐसे नहीं डरता जैसे कि वह डरे हुए थे। उनके व्यक्तिगत जीवन के बारे में भी उनके इकलौते लड़के ने जितनी बातें उड़ा रखी हैं उससे ज्यादा कोई और क्या कहेगा ? कुछ वर्ष पहले सुरेशराम अपने पिता के खिलाफ़ ऐसे व्यक्तिगत आरोप लगाते घूमते थे, जिन पर विश्वास नहीं होता था। कई बार उन्होंने जवाहरलाल नेहरू, मोरारजी देसाई तथा अपने पिता के अन्य सहयोगी मंत्रियों से जाकर शिकायतें कीं। उन आरोपों से भी गंदे आरोप अब कोई क्या लगायेगा ? इसके अलावा दस साल तक इनकम-टैक्स न जमा करने का आरोप उन पर पहले ही लग चुका था और उसका वह जुर्माना भी भर चुके थे। इन सारी मुसीबतों को वह खुशी-खुशी झेल चुके थे।

जाहिर है कि कोई इससे भी गंभीर भय था जो जगजीवनराम को खाये जा रहा था।

इसका ताल्लुक़ शायद अमेरिकी पत्रों में बांगला देश-युद्ध के दौरान निक्सन-किसंजर-मंडली के कारनामों के संबंध में छपी खबरों से हो सकता है। कुछ अमेरिकी पत्रकार हर तरह की काली करतूतों का पर्दाफ़ाश करने में लगे रहते हैं और वे भारत के प्रति निक्सन-किसंजर-मंडली की दो-मुँही नीति को भी बेनक़ाब कर रहे थे। इसी सिलसिले में जैक एंडर्सन व अन्य पत्रकारों ने भारत सरकार के अंदर "रेंगते कीड़ों" पर भी प्रकाश डाला।

जैक एंडर्सन ने लिखा—"सच्चाई यह है कि भारत सरकार में हर स्तर पर सी० आई० ए० की घुसपैठ हो चुकी है और इन 'स्वतंत्र स्रोतों' ने सेना की गति-

विधियों, हथियारों, रणनीति और यहाँ तक कि प्रधानमंत्री इन्दिरा गांधी की गुप्त बातचीत से संबंधित ख़बरों को बड़े नियमित ढंग से वाशिंगटन पहुँचा दिया है।"[1]

सी० आई० ए० के लोग सरकारी अफ़सरों को घूस देकर पेशेवर ढंग से तरह तरह की सूचनाएँ एकत्र कर रहे थे। इन लोगों ने ख़बर देने वाले अपने कुछ स्रोतों को "पुराने और विश्वसनीय स्रोत" बताया था।

8 दिसंबर 1971 को जब संकट चरम सीमा पर था, सी० आई० ए० ने "श्रीमती गांधी के निकट स्रोतों" के हवाले से कुछ ख़बरें पता लगायीं। यक़ीन के साथ कानाफ़ूसी होने लगी थी कि भारत शायद पश्चिमी पाकिस्तान पर बड़े पैमाने पर हमला करे।

सी० आई० ए० की एक रिपोर्ट में कहा गया था कि "एक सूत्र के अनुसार, जिसकी पहुँच इन्दिरा गांधी के कार्यालय की गतिविधियों तक है, जैसे ही पूर्वी पाकिस्तान में स्थिति 'ठिकाने लग जायेगी' भारतीय सेना पश्चिमी पाकिस्तान पर ज़बर्दस्त हमला बोल देगी।" इस रिपोर्ट में आगे कहा गया था—"भारत सरकार को आशा है कि दिसंबर 1971 के अंत तक लड़ाई समाप्त हो जायेगी।"

एंडर्सन ने "भारतीय मंत्रिमंडल में सी० आई० ए० के सूत्रों" के बारे में भी धुँधला संकेत दिया था। कभी-कभी सी० आई० ए० अपनी रिपोर्टों में "उच्च भारतीय अधिकारियों" का हवाला देता था, लेकिन यह सभी जानते हैं कि अमेरिकी बोलचाल की शैली में मंत्रियों तक को "उच्च अधिकारी" कहा जाता है। सी० आई० ए० कुशल आधुनिकतम इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के साथ-साथ "घूस के पुराने तरीक़े" का भी इस्तेमाल करता था और कभी-कभी तो वे वाशिंगटन-स्थित अपने मुख्यालय को जो सूचनाएँ भेजते थे उनमें वही बातें होती थीं जो अमेरिकी पत्रकारों द्वारा अपनी अख़बारों को भेजी गयी ख़बरों में होती थीं। उनमें से कुछ ख़ास ख़बरें भी होती थीं, जिनके बारे में लगता था कि ये किसी उच्च भारतीय सूत्र से मिली हैं।

सी० आई० ए० की एक रिपोर्ट में कहा गया था—"हमें इस तरह की कई ख़बरें मिलती रही हैं कि भारत आज केवल पूर्वी बंगाल को ही मुक्त कराना नहीं चाहता, बल्कि वह कश्मीर की अपनी सीमा-समस्या भी सुलझा लेना चाहता है और पश्चिमी पाकिस्तान की वायु-सेना तथा बख्तरबंद सेना को भी तहस-नहस कर देना चाहता है। इस काम को पूरा करने के लिए वह पूर्व में अपना नियंत्रण क़ायम होते ही अपनी सेना के चार से पाँच डिवीज़नों को पश्चिम में भेज देगा... इन सेनाओं को भेजने का प्रारंभिक काम शुरू भी हो गया है...।"

एंडर्सन ने लिखा कि 13 दिसंबर को "उच्च भारतीय अधिकारियों ने सातवें बेड़े से संबंधित अपनी आशंकाओं के बारे में सोवियत राजदूत पेगोव से बातचीत की। उन्होंने कहा कि घबराने की कोई बात नहीं है। भारतीयों के साथ रूसियों की गुप्त बातचीत का पूरा ब्यौरा सी० आई० ए० को मिल गया है।"

जगजीवनराम शायद इसे मानने को तैयार न हों, पर अंतिम दिनों तक उन्हें सबसे बड़ा डर यही था कि इन्दिरा गांधी उन पर यह आरोप लगाने में भी नहीं हिचकिचायेंगी कि बांगला देश वाले युद्ध के कठिन दिनों में रक्षा-मंत्री के पद पर काम करते हुए जगजीवनराम सी० आई० ए० के सबसे बड़े सूत्र थे। यह अविश्वसनीय है कि जगजीवनराम-जैसे देशभक्त का इस तरह की बातों से कोई सरोकार होगा। पर वह ख़ुद जानते थे कि अगर एक बार देवीजी ने उन पर हाथ उठाना तय कर लिया तो कोई उनको रोक नहीं सकता। अगर ऐसा हुआ तो उन्हें औरों

की तरह केवल जेल में ही नहीं डाला जायेगा, वह उन पर 'देशद्रोह' का मुक़दमा भी चला सकती हैं। शायद यह मुक़दमा भी गुप्त रूप से चलाया जाये और फिर उनका सफ़ाया कर दिया जाये।

अमेरिकी पत्रकारों द्वारा अंदरूनी बातें प्रकाशित कर देने के बाद इन्दिरा गांधी के जासूस सी० आई० ए०के संभावित सूत्रों का पता लगाने में व्यस्त हो गये थे। उन्होंने अनेक व्यक्तियों के खिलाफ़ ढेर सारे 'परिस्थितिगत-प्रमाण' एकत्र कर लिये थे—और ये इतने ज़्यादा थे कि वह जिसको चाहतीं, फँसा सकती थीं।

जितने दिन बांगला देश का संकट चलता रहा, विदेशी संवाददाताओं की राजधानी में भीड़ लगी रही। ज़ाहिर है कि प्रधानमंत्री के बाद उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण सूत्र रक्षा-मंत्री ही थे। वे रोज़ाना जगजीवनराम के चारों तरफ़ मँडराते रहते थे। उस भीड़ में यह बताना मुश्किल था कि कौन क्या है और हर आदमी के काम का तरीक़ा क्या है ?

जगजीवनराम को यदि किसी काम में सचमुच मज़ा आता है तो वह है समाचार-साधनों को प्रभावित करना। वह अपनी बात कहना पसंद करते हैं और वाहवाही लूटकर ख़ुश होते हैं। इस काम में वह इन्दिरा गांधी जैसे ही हैं। हालाँकि वह नपी-तुली बात कहने के लिए मशहूर हैं, फिर भी व्यक्तिगत बातचीत में ख़ास तौर से ऐसे समय जब उन्हें किसी को प्रभावित करना हो, वह बात बढ़ाकर भी कह लेते है। हमारे नेताओं को गोरी चमड़ी के लोगों को प्रभावित करके बेहद ख़ुशी मिलती है। जब भी जगजीवनराम कोई तेज़-तर्रार टिप्पणी करते हैं तो वह चारों तरफ़ देखते हैं कि कोई उन्हें दाद दे रहा है या नहीं। उनकी बात कितनी असरदार साबित हो रही है—इसका वह बराबर ख़याल रखते हैं।

लेकिन इमरजेंसी के दिनों में उनका सारा जोश और उनकी सारी हाज़िर-जवाबी ग़ायब हो चुकी थी। हमेशा वह किसी अज्ञात भय से परेशान दिखायी देते थे। वह बहुत कुशल वक्ता रहे हैं और ख़ास तौर से हिन्दी में दिये गये उनके भाषणों का तो कोई जवाब ही नहीं है। पर इमरजेंसी के दिनों के उनके भाषणों में उनका ख़ास अंदाज़ नदारद था। इन भाषणों में न तो कोई व्यंग्य होता था, न पुराना ओज, और न कल्पना की उड़ान ही मिलती थी। मरा-मरा-सा चेहरा और मरा-मरा-सा भाषण ! पार्लियामेंट में उन्होंने 20-सूत्री कार्यक्रम के समर्थन में जो कुछ कहा उसमें आत्मविश्वास की तनिक भी झलक नहीं मिलती थी। इन्दिरा गांधी के बारे में दिये गये उनके भाषणों में भी खोखलापन ही नज़र आता था। लगता था कि वह जो कुछ कह रहे हैं उसके पीछे किसी का आदेश काम कर रहा है, और जिन लोगों को उनके व्यक्तिगत विचारों का थोड़ा आभास था वह आसानी से समझ सकते थे कि अब वह अपनी मर्ज़ी के मालिक नहीं रह गये थे।

मार्टिन वुलकाट ने 2 फ़रवरी 1977 को **गार्डियन** में लिखा था कि "भारत में जनतंत्र एक धमाके के साथ वापस आ गया है।" लेकिन जगजीवनराम की तो मानो फाँसी-घर से वापसी हुई हो ! लेकिन इनकी आशंकाओं का यह अंत नहीं था। अंतिम क्षण तक उन्होंने सतर्कता बरती थी कि किसी को पता न चले, वह क्या सोच रहे हैं।

1 फ़रवरी 1977 को तीसरे पहर वह इन्दिरा गांधी से मिलने गये। उन्होंने ख़ुद ही समय माँगा था। वह ठीक 4 बजकर 45 मिनट पर पहुँचे थे और इन्दिरा गांधी के शब्दों में कहें तो "अपनी कार से निकल कर आने में और फिर वापस

कार तक जाने में उनको ठीक-ठीक 5 मिनट लगे।" बैठते ही उन्होंने इन्दिरा गांधी से कहा था—'यदि आप इमरजेंसी हटा लें तो इससे आपकी प्रतिष्ठा बढ़ जायेगी।"

इन्दिरा गांधी ने जवाब दिया, "इस विषय पर गृह-मंत्रालय ने विचार किया है और इमरजेंसी के कई नियमों में ढील दी जा चुकी है। पूरी तरह इमरजेंसी हटाने का अभी समय नहीं आया है।"

इस पर जगजीवनराम ने कहा, "आप अपने सामान्य अधिकारों से ही हर तरह की स्थिति का सामना करने में समर्थ हैं।"

इन्दिरा गांधी का जवाब था, "मैं इस विषय में गृह-मंत्री से बात करूँगी।"

बस, बात खत्म हो गयी। अगले क्षण जगजीवनराम जा चुके थे। उन्होंने इन्दिरा गांधी को यह एहसास नहीं होने दिया कि इस मामले पर वह "बड़ी शिद्दत से सोच रहे हैं।"

लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि इन्दिरा से मिलने के लिए समय माँगने से पहले ही जगजीवनराम ने मन-ही-मन फ़ैसला कर लिया था। पाँच मिनट की इस दौड़-धूप का मक़सद यही था कि देवीजी को किसी तरह का शक न हो। वह उन्हें एक भी मौक़ा नहीं देना चाहते थे।

घर लौटने पर उन्होंने अपने साथियों—हेमवतीनंदन बहुगुणा, नंदिनी सतपथी तथा अन्य लोगों के प्रति बड़ा उदासीन रवैया अपनाया। इनसे राजनीति पर कुछ बातचीत करने की बजाय बस यही कहा, "मैं बहुत थक गया हूँ—अब आराम करूँगा।"

उनके मित्र इस विचित्र व्यवहार से क्षुब्ध होकर चले गये। उनको ऐसा लगा कि कहीं उन्होंने देवीजी से कोई साँठ-गाँठ न कर ली हो।

अगले दिन एकदम सवेरे उनके राजनीतिक साथियों और दिल्ली-स्थित प्रेस-संवाददाताओं के टेलीफ़ोनों की घंटियाँ बजने लगीं। उन्हें कृष्ण मेनन मार्ग पर बुलाया गया था। जगजीवनराम ने यह एहतियात बरतना चाहा था कि अपने मित्रों और पत्रकारों की मौजूदगी में इस्तीफ़ा देने राष्ट्रपति-भवन के लिए रवाना हों, ताकि अंतिम क्षण में अगर कुछ गड़बड़ हो भी तो सबको जानकारी रहे।

बाद में उन्होंने दोस्तों को पिछली शाम के अपने व्यवहार के बारे में सफ़ाई दी—"मुझे पूरा विश्वास था कि आप लोग सारी बातें अपने तक ही रखते, पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता था। दीवारों तक के कान होते हैं। कोई ख़तरा मोल लेने से अच्छा यही था कि आप लोगों को अँधेरे में रखा जाये।"

कई महीने पहले से ही छिपे तौर पर दाव-पेंच शुरू हो गये थे। जगजीवनराम की तरह सोचने वाले बहुगुणा और नंदिनी सतपथी-जैसे लोग इन्दिरा गांधी की हरकतों से और ख़ास तौर से सत्ता की ओर बढ़ रहे उनके लड़के की गति-विधियों से काफ़ी चिंतित थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि अब कुछ करने का समय आ गया है। अन्य लोग भी जगजीवनराम से मिलने-जुलने लगे थे। उन्होंने हमेशा सहानुभूतिपूर्ण रवैया तो अपनाया, पर किसी से कोई निश्चित बात नहीं की। "यह जनता का काम है कि वह देखे और समझे कि क्या हो रहा है। आपको जो ठीक लगे आप वह करिये।" इससे ज़्यादा वह शायद ही कभी कहते थे।

गौहाटी कांग्रेस-अधिवेशन होने तक बात काफ़ी आगे बढ़ चुकी थी। इन्दिरा गांधी ने संजय को एक तरह से अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। कम्युनिस्टों पर उनका प्रहार तेज़ हो गया था। सभी विरोधी बेचैन थे, लेकिन

उनमें इतना साहस नहीं था कि कोई प्रत्यक्ष क़दम उठा सकें।

लोक-सभा के चुनाव की घोषणा हुई तो ऐसा लगा, मानो बाढ़ ने बाँध तोड़ दिया हो। कांग्रेस के संसद-सदस्य रामधन, जिन्हें चन्द्रशेखर के साथ ही गिरफ़्तार किया गया था व पार्टी से निकाला गया था, जेल से छूटकर आये। वह जगजीवन-राम के बहुत नज़दीक थे, और वह बाहर आते ही जगजीवनराम व विरोधी दल के उन नेताओं के बीच, जिन्होंने बाद में जनता पार्टी के उदय की घोषणा की, एक सक्रिय कड़ी बन गये।

गौहाटी कांग्रेस-अधिवेशन के दिनों में ही जगजीवनराम से पश्चिम बंगाल के उनके कुछ साथियों के ज़रिये सम्पर्क क़ायम कर लिया गया था। आमतौर से उनके पुत्र सुरेशराम के ज़रिये ही सम्पर्क होता था। सुरेशराम बिहार में विधा-यक थे और राजनीति में भी कुछ दख़ल रखते थे। उड़ीसा में नंदिनी सतपथी के निकाले जाने के बाद गुप्त दाव-पेंचों का सिलसिला और तेज़ हो गया था। सबसे ज़्यादा सक्रिय थे हेमवतीनंदन बहुगुणा, जिन्हें उत्तर प्रदेश में मुख्यमंत्री-पद से अलग होने के लिए मजबूर किया गया था। इन लोगों ने विभिन्न राज्यों में अपनी विचारधारा से मेल खाने वाले कांग्रेस-जनों की तलाश शुरू कर दी थी।

लोक-सभा के चुनाव की घोषणा के बाद कांग्रेस पार्टी के अंदर जो तूफ़ान उठ खड़ा हुआ उससे काफ़ी मदद मिली। हर राज्य में कांग्रेसियों में ज़बर्दस्त मतभेद थे और हर जगह लड़ते हुए बच्चों की तरह उन्होंने अपने भाग्य दिल्ली में बैठी उदार 'माँ' की मर्ज़ी पर छोड़ दिये थे। लेकिन वह उदार 'माँ' सब-कुछ अपने प्रिय पुत्र को देना चाहती थी, जिसने योजना बनायी थी कि लोक-सभा में कम-से-कम दो सौ सीटों पर क़ब्ज़ा किया जाये, ताकि निर्विवाद रूप से दिल्ली की गद्दी उसे मिल सके।

बहुगुणा, सतपथी तथा अन्य लोगों ने महसूस किया कि देवीजी से बदला लेने का शायद यह आख़िरी मौक़ा है। उन्होंने विभिन्न राज्यों में कांग्रेस वालों को हर तरह से समझाया कि वार करने का समय यही है। अभी हमला नहीं किया तो कभी नहीं होगा। तय हुआ कि 23 जनवरी को कुछ किया जाये। लेकिन तारीख़ आयी और चली गयी और कुछ भी नहीं हुआ। कुछ लोग डर गये।

कुछ विरोधी नेता भी जगजीवनराम की ओर मुख़ातिब हुए। बहुगुणा पहले से ही उन्हें तैयार करने में लगे थे। बीजू पटनायक, सोशलिस्ट-नेता सुरेन्द्रमोहन, रामधन, चन्द्रशेखर तथा कई अन्य नेता जगजीवनराम से अनुरोध करने लगे कि वह उनका नेतृत्व करें।

चालाक और सतर्क जगजीवनराम यह आश्वासन पाना चाहते थे कि उन्हें किस तरह का समर्थन मिलेगा। उनके पास जो भी आता था उससे वह यही सवाल करते थे—"मुझे कौन समर्थन देगा?" बीजू पटनायक, रामधन और चन्द्रशेखर ने जनता पार्टी की ओर से उन्हें आश्वासन दिया। उन्होंने जन संघ के नेता नानाजी देशमुख से भी इसी तरह का आश्वासन प्राप्त कर लिया। नंदिनी सतपथी और के० आर० गणेश दौड़े-दौड़े अजय-भवन गये और लौटकर बताया कि कम्युनिस्ट भी आपका समर्थन करेंगे। लेकिन वह फिर भी विचार के लिए समय चाहते थे। वह जल्दबाज़ी में किसी तरह का फ़ैसला नहीं करना चाहते थे।

उन्हें ख़बर मिली कि बिहार तथा अन्य राज्यों में तक़रीबन उनके सभी आदमियों को टिकट देने से इंकार किया जा रहा है। ख़ुद अपने बारे में भी उन्हें पक्का यक़ीन नहीं था कि टिकट मिलेगा या नहीं। 24 जनवरी 1977 को सुभद्रा

जोशी जगजीवनराम से मिलने गयीं। वह इन्दिरा गांधी की बहुत पुरानी सहयोगी थीं, लेकिन अब उनके सम्बन्ध खराब हो चुके थे। सुभद्रा जोशी ने जगजीवनराम से अनुरोध किया कि अब उन्हें कुछ करना चाहिए। "लेकिन क्या किया जा सकता है ?" जगजीवनराम ने सवाल किया और इन्दिरा गांधी पर सामूहिक दबाव डालने की संभावनाओं के बारे में दोनों लोग बात करने लगे। जगजीवनराम ने कोई निश्चित बात नहीं की।

इस 'टाइम-बम' के विस्फोट के लिए 2 फ़रवरी 1977 का दिन निश्चित किया गया। विस्फोट तो हुआ, लेकिन जगजीवनराम, बहुगुणा तथा अन्य लोगों की घनघोर तैयारी के बावजूद प्रधानमंत्री-पद हाथ से निकल गया।

जगजीवनराम ने अपने राजनीतिक मित्रों से एक दिन कहा था, "इस कम्बख़्त मुल्क में चमार कभी प्राइम-मिनिस्टर नहीं हो सकता है !"

बात 1974 की है, जब उत्तर प्रदेश में चुनाव चल रहे थे और कांग्रेस को विरोधी दलों की ज़बर्दस्त चुनौती का सामना करना पड़ रहा था। कुछ कांग्रेसियों का यह कहना था कि इन्दिरा गांधी नहीं चाहतीं कि जगजीवनराम उत्तर प्रदेश में चुनाव-प्रचार के लिए जायें। लेकिन जिन लोगों ने राज्य का दौरा किया था, वे कहते थे कि जगजीवनराम के जाने से कांग्रेस को काफ़ी वोट मिलेंगे, खास तौर से हरिजनों का भारी समर्थन प्राप्त होगा। सुभद्रा जोशी और उनके सहयोगी डी० आर० गोयल ने जगजीवनराम से भेंट की और चुनाव-प्रचार के लिए उत्तर प्रदेश जाने का उनसे अनुरोध किया।

जगजीवनराम ने चिढ़कर जवाब दिया, "कोई नहीं चाहता कि मैं वहाँ जाऊँ।" यह पूछने की ज़रूरत नहीं थी कि 'कोई नहीं' से उनका क्या मतलब है। उनके और इन्दिरा गांधी के बीच भीतर-ही-भीतर जो तनाव चल रहा था, वह किसी से छिपा नहीं था।

फिर भी जब सुभद्रा जोशी और गोयल चुनाव-प्रचार के लिए उत्तर प्रदेश गये तो उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी से विधिवत 'माँग' की कि कुछ दिन के लिए जगजीवनराम को भेजा जाये। इन्दिरा गांधी को थोड़ी खीझ तो हुई लेकिन वह इंकार नहीं कर सकीं, और जगजीवनराम चुनाव-प्रचार के लिए उत्तर प्रदेश गये।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के इलाक़ों की यात्रा के दौरान वह एक रात गोंडा के डाक-बँगले में रुके। सुभद्रा जोशी ने, जो काफ़ी दिन से इन्दिरा गांधी और जगजीवनराम के मतभेद दूर कराने में लगी थीं, सोचा कि बातचीत करने का अच्छा मौक़ा है। वह गोयल के साथ उनसे मिलने गयीं तो इस विषय पर बात करते हुए उन्होंने जगजीवनराम व इन्दिरा गांधी के बीच पैदा तनाव पर चिंता व्यक्त की।

जगजीवनराम ने कहा, "कौन कहता है कि कोई तनाव है। केवल इन्दिराजी ही यह महसूस करती हैं कि हमारे बीच तनाव है। मेरी बात तो बहुत साफ़ है। सरकार में जो व्यक्ति भी है उसे प्रधानमंत्री बनने की आकांक्षा रखने का अधिकार है।" फिर उनका असंतोष फूट पड़ा और वह बोले, "इस कम्बख़्त मुल्क में चमार कभी...।"

जगजीवनराम ज़िंदगी में कहाँ-से-कहाँ पहुँच गये हैं ! बिहार के एक गाँव की अँधेरी चमारटोली से चलकर केन्द्रीय नेताओं की पहली क़तार में पहुँचने में उन्होंने उल्लेखनीय यात्रा पूरी की है, और इस यात्रा के लिए उन्हें धैर्य, संकल्प, प्रतिभा

और सबसे अधिक दूसरों के सहारे व क़िस्मत की ज़रूरत थी—और ये सभी उनके पास प्रचुर मात्रा में थे। वह केन्द्र में अपने समकालीनों में सबसे अधिक दिन से हैं, लेकिन उनका लक्ष्य और ऊँचा उठना है।

बीस वर्ष से भी अधिक समय से प्रधानमंत्री की कुर्सी पर उनकी नज़र लगी हुई है। जब कभी जवाहरलाल नेहरू अपना पद छोड़ने की बात करते, जगजीवन-राम के दिल में उम्मीद की एक नयी लहर दौड़ जाती। एक महान प्रधानमंत्री बनने के लिए अपनी योग्यता पर जितना विश्वास जगजीवनराम को है उतना किसी दूसरे नेता को नहीं है। नेहरू ने 1954 में, 1958 में या जब कभी अवकाश ग्रहण करने की बात उठायी तो उनका मक़सद था पार्टी और सरकार पर अपना नियंत्रण और भी मज़बूत करना। ऐसे मौक़ों पर जगजीवनराम अपनी अदम्य महत्वाकांक्षा छुपा न सके, जिससे नेहरू-परिवार में और ख़ास तौर से नेहरू की बेटी के अंदर जगजीवनराम के बारे में संदेह मज़बूत होते गये। एक बार जब जवाहरलाल नेहरू मोरारजी देसाई को कांग्रेस संसदीय दल का उप-नेता बनने से रोकने के लिए चिंतित थे, उन्होंने जगजीवनराम को दावेदार के रूप में खड़ा कर दिया। नेहरू को उम्मीद थी कि उनका नाम आने पर देसाई ख़ुद ही बैठ जायेंगे। लेकिन जब देसाई ने चुनाव लड़ने का फ़ैसला कर लिया तो नेहरू ने झट से चाल बदल दी और देसाई तथा जगजीवनराम दोनों से उप-नेता बनने का सुअवसर छीन लिया। जगजीवनराम ने इस पर उतना ही असंतोष व्यक्त किया जितना देसाई ने, और नेहरू को यह समझने में तनिक भी दिक़्क़त नहीं हुई कि जगजीवन-राम देसाई से कम महत्त्वाकांक्षी नहीं हैं। कामराज-योजना के अंतर्गत दोनों ही मंत्रिमंडल से बाहर निकाल दिये गये—यह नेहरू की तरफ़ से इन्दिरा के रास्ते में आने वाली रुकावटों को हटाने के लिए पहली संजीदा कोशिश थी।

लेकिन बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने में और हवा के रुख के साथ बहने में जगजीवनराम जितने निपुण हैं उतना शायद ही दूसरा कोई राजनीतिज्ञ हो। इन्दिरा गांधी की तरह वह भी सिद्धांतों और विचारधाराओं के चक्कर में ज़्यादा नहीं पड़ते। लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद एक बार तो जगजीवनराम ख़ुद भी प्रधानमंत्री-पद के उम्मीदवार हो गये थे, लेकिन जब उन्होंने देखा कि उनकी दाल नहीं गलने वाली है तो वे देसाई के ख़ेमे में शामिल हो गये। लेकिन उन्होंने तुरंत ही भाँप लिया कि उनसे ग़लती हो गयी। जब उन्होंने देखा कि हवा का रुख़ इन्दिरा गांधी के पक्ष में है और उन्हें पक्का यक़ीन हो गया कि इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री बनने जा रही हैं तो वह भी इन्दिरा के ख़ेमे में शामिल हो गये।

1967 के आम चुनावों के बाद एक ख़बर फैली कि जगजीवनराम अपने पचास समर्थकों के साथ कांग्रेस से अलग हो जायेंगे। साथ ही यह भी अफ़वाह थी कि विरोधी दलों ने उन्हें प्रधानमंत्री बनाने को कहा है। लेकिन जगजीवनराम ने ताड़ लिया कि यह बहुत ख़तरनाक क़दम होगा और कहीं मंत्री की कुर्सी से भी हाथ न धोने पड़ें। इन्दिरा गांधी के साथ बने रहने पर कम-से-कम कुर्सी तो सुरक्षित है। वह विरोधी दलों को झाँसा दे गये।

जब एक संवाददाता ने उनसे सीधा सवाल किया कि क्या वे कांग्रेस से अलग होने जा रहे हैं तो उनका जवाब था, "मैं क्यों कांग्रेस छोड़ूंगा ? मुझे कांग्रेस में ही अपना भविष्य बेहतर नज़र आ रहा है।"

1969 में जगजीवनराम इन्दिरा के ज़बर्दस्त समर्थक बन गये और सिंडीकेट

कांग्रेस के दिग्गज नेताओं पर करारे वार करने में वह सबसे आगे थे। जगजीवनराम और फ़ख़रुद्दीन अली अहमद इन्दिरा गांधी के उस रथ के दो सारथी थे, जिस पर बैठकर वह मल्का-ए-हिन्दुस्तान वनने चली थीं। 1969 के उत्तेजनात्मक दिनों में जगजीवनराम और फ़ख़रुद्दीन अली अहमद का जंगी नारा था—"हमारी कांग्रेस ही सच्ची कांग्रेस है और केवल हम ही सच्चे कांग्रेसी हैं।" कई दिन तक वे लगातार तत्कालीन कांग्रेस-अध्यक्ष एस० निजलिंगप्पा पर पत्रों से प्रहार करते रहे और लोग उन्हें 'इन्दिरा के मज़बूत स्तम्भ' के रूप में जानने लगे।

जगजीवनराम को ही इस बात का श्रेय है कि उन्होंने "अंतरात्मा की आवाज़ के अनुसार वोट" देने का आह्वान किया, जिससे अंततः पार्टी का विभाजन हो गया।

उन नाजुक दिनों में भी, जब जगजीवनराम इन्दिरा गांधी की तरफ़ से लड़ रहे थे, इन्दिरा गांधी के मन में अपने इस नये समर्थक के इरादों के बारे में संदेह बना रहा। हरिजनों का समर्थन बनाये रखते हुए जगजीवनराम को अपने रास्ते से हटाने के लिए इन्दिरा गांधी ने राष्ट्रपति-पद के लिए उनका नाम रखा, लेकिन कांग्रेस संसदीय दल ने दो के मुक़ाबले चार मतों से उसे नामंजूर कर दिया। जगजीवनराम के ख़िलाफ़ वोट देने वालों में मोरारजी देसाई भी थे। उन्होंने इन्दिरा गांधी से कहा कि यदि इतने ऊँचे पद के लिए किसी हरिजन का चयन करना हो तो हमारे सामने केवल दो नाम हैं—जगजीवनराम और डी० संजीवैया। लेकिन देसाई ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इन्कम-टैक्स और वेल्थ-टैक्स को लेकर जो घपले हुए हैं उनकी वजह से वह जगजीवनराम का समर्थन नहीं कर सकते। देश का राष्ट्रपति एक ऐसा व्यक्ति बने जिसने दस साल तक इन्कमटैक्स ही नहीं दिया हो तो लोग क्या कहेंगे! देसाई ने लिखा है, "मेरी यह स्पष्ट राय थी कि उन्हें (जगजीवनराम को) मंत्रिमंडल में भी नहीं रहने देना चाहिए और मैंने उस समय प्रधानमंत्री से बातचीत के दौरान इसका संकेत भी दे दिया था।"[2]

जब इन्दिरा गांधी का प्रस्ताव विफल हो गया तो उन्होंने चिढ़कर अपने सहयोगियों से कह दिया, "आपको इसके नतीजे भुगतने होंगे।"

कांग्रेस के टुकड़े होने के बाद जगजीवनराम नयी कांग्रेस के अध्यक्ष बनाये गये और दिसम्बर 1969 में बंबई अधिवेशन में इन्दिरा गांधी के समर्थन में उन्होंने ज़ोरदार भाषण दिया, "मुझे तनिक भी संदेह नहीं कि जब यह सारा विवाद शांत हो जायेगा तो वर्तमान और भावी पीढ़ी प्रधानमंत्री को स्वस्थ जनतांत्रिक परंपराओं के प्रवर्तक के रूप में याद करेगी...।"

कुछ ही दिन में जगजीवनराम को पता चलने लगा कि मामला क्या है। इन्दिरा गांधी अपने अलावा किसी और के पास कोई ताक़त नहीं रहने देना चाहती थीं। जगजीवनराम भी कांग्रेस के अध्यक्ष होकर किसी के तावेदार बने रहना नहीं चाहते थे। धीरे-धीरे अपने शक्तिशाली सचिव पी० एन० हक्सर की मदद से देवीजी दिनोंदिन मज़बूत होती चली गयीं। इसमें उनको अपने नये साथियों अर्थात कम्युनिस्टों और कम्युनिस्टों के सहयात्रियों द्वारा लगाये गये प्रगतिशील नारों से काफ़ी मदद मिली। उनके इर्द-गिर्द जमा हो गये उग्रवादी तत्व लगातार इस कोशिश में थे कि तथाकथित समाजवादी ताक़तों के साथ कांग्रेस का गहरा तादात्म्य स्थापित हो जाये। लेकिन जगजीवनराम, पार्टी के अंदर अपनी ताक़त मज़बूत बनाने में लगे थे और वामपंथी गुटों के साथ प्रोग्राम पर आधारित समझौता करने या चुनाव के लिए गँठजोड़ करने के रास्ते में अड़ंगा साबित हो

रहे थे। वामपंथियों की ओर से इन्दिरा गांधी पर दवाव डाला जा रहा था कि वह स्वयं कांग्रेस की अध्यक्षता ले लें। खुद वह भी चाहती थीं कि जगजीवनराम को उनकी औक़ात वता दें और वह अपने सिपहसालार ललितनारायण मिश्र को उनके कार्य-क्षेत्र विहार में ही उनकी स्थिति कमज़ोर करने के लिए इस्तेमाल कर रही थीं।

उन्होंने तथाकथित युवा तुर्कों के एक सदस्य मोहन धारिया को भी जगजीवनराम के ख़िलाफ़ इस्तेमाल किया। मोहन धारिया ने माँग की कि जव तक जगजीवनराम कांग्रेस-अध्यक्ष-पद पर काम कर रहे हैं, उन्हें तव तक के लिए मंत्रिमंडल से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। मोहन धारिया ने जगजीवनराम और कांग्रेस कार्य-समिति के सदस्यों को पत्र लिखकर कहा कि "आज की ऐतिहासिक आवश्यकता यह है कि कांग्रेस-अध्यक्ष व अन्य कांग्रेस पदाधिकारी पार्टी के कार्य के प्रति पूरी तरह निष्ठावान हों और इसमें पूरा समय लगायें।" यह सावित करने के लिए कि एक ही व्यक्ति को कांग्रेस-अध्यक्ष और मंत्रिमंडल का सदस्य नहीं रहना चाहिए, उन्होंने कुछ 'बुनियादी तर्क' पेश किये। उनकी दलील थी कि "ऐसा अध्यक्ष जो केन्द्रीय मंत्रिमंडल में मातहत की स्थिति में हो अपनी भूमिका कारगर ढंग से नहीं निभा सकेगा।" कांग्रेस संसदीय दल की ख़ास तौर से बुलायी वैठक में भी धारिया ने जगजीवनराम के ख़िलाफ़ दो पदों पर बने रहने के लिए अपना हमला जारी रखा। कई सदस्यों ने धारिया के इस आचरण पर नापसंदगी ज़ाहिर की। पर इन्दिरा गांधी ने अपनी कोई राय नहीं दी, जिससे साफ़ पता चल गया कि धारिया उनकी इजाज़त से बोल रहे हैं।

लेकिन जगजीवनराम किसी भी पद से हटने को तैयार नहीं थे। वह धीरे-धीरे एक हमलावर रवैया अख़्तियार कर रहे थे, हालाँकि यह सीधे-सीधे इन्दिरा गांधी पर वार नहीं कर रहे थे। उन्होंने एक वयान दिया कि कांग्रेस को 'मध्य मार्ग' अपनाना चाहिए। इस वयान का यह मतलब लगाया गया कि वह उग्र विचारों के प्रति इन्दिरा गांधी के बढ़ते हुए झुकाव को नापसंद करते हैं।

1971 के लोक-सभा-चुनावों के समय यह तनाव खुले रूप में आ गया। सी० पी० आई० की विहार यूनिट ने जगजीवनराम पर आरोप लगाया कि पार्टी व कांग्रेस में हुए चुनाव-समझौते की उन्होंने अवहेलना की। जगजीवनराम ने पलट कर जवाव दिया कि सी० पी० आई० के साथ उन्होंने कभी कोई समझौता नहीं किया, प्रधानमंत्री ने 'किसी और' के ज़रिये से किया था। एक संवाददाता-सम्मेलन में उन्होंने कहा, "अध्यक्ष के अलावा कांग्रेस में किसी को इस तरह के समझौते करने का अधिकार नहीं है।" उन्होंने आगे कहा, "मैं कोई सोता हुआ अध्यक्ष नहीं हूँ।"

जव उनका ध्यान एक अखवार में छपी इस ख़बर की ओर दिलाया गया कि चुनावों के वाद कांग्रेस संसदीय दल के नेता का विधिवत चुनाव नहीं होगा तो उन्होंने एक रहस्यमय ढंग से जवाव दिया, "अखवार कुछ भी कह सकते हैं।" इसका व्यापक तौर पर यह अर्थ लगाया गया कि नेतृत्व का मसला अभी वना हुआ है। जिन लोगों ने चुनाव-प्रचार के दौरान उनके भाषणों को लगातार सुना था उनको जगजीवनराम के वयानों से कोई आश्चर्य नहीं होता था।

भोपाल में एक भाषण में जगजीवनराम ने इस पर खेद प्रकट किया था कि भंग लोक-सभा में अपने विरुद्ध आये अविश्वास प्रस्ताव से अपना वचाव करने के लिए कांग्रेस को सी० पी० आई० का सहारा लेना पड़ा था। उन्होंने साफ़ शब्दों

में कहा कि वह सी० पी० आई० का सहयोग नहीं चाहते हैं।

यह उसका बिलकुल उलटा था जो इन्दिरा गांधी अपने चुनाव-भाषणों में कह रही थीं।

सी० पी० आई०-विरोधी भाषणों ने जगजीवनराम को अचानक अपने पुराने विरोधियों के क़रीब ला दिया। संगठन कांग्रेस के अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने कहा, "कम्युनिज्म के बारे में उनकी बातों से मैं सहमत हूँ। मैं इससे भी सहमत हूँ कि वह सोते हुए अध्यक्ष नहीं हैं।" लखनऊ में चौधरी चरणसिंह ने, जो तब भी बी० के० डी० के अध्यक्ष थे, जगजीवनराम को बधाई दी।

राजनीतिक प्रेक्षकों से यह छिपा नहीं रहा कि जगजीवनराम के इन भाषणों का मक़सद क्या है। दरअसल वह इन्दिरा गांधी को बता देना चाहते थे कि पार्टी-अध्यक्ष-पद से हटने का उनका कोई इरादा नहीं है। और वह उनके (इन्दिरा गांधी के) नेतृत्व को चुनौती देंगे।

1971 के लोक-सभा-चुनावों से पहले बहुत कम लोगों को आशा थी कि इन्दिरा गांधी की इतनी भारी जीत होगी। यहाँ तक कि कुछ वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं ने भी यही सोचा था कि कांग्रेस को बहुमत नहीं मिल सकेगा और वे चुनाव-बाद की अपनी रणनीति पर विचार-विमर्श करने लगे थे।

चुनाव से कुछ दिन पहले जगजीवनराम के निवास-स्थान पर एक गुप्त बैठक हुई। उसमें डी० पी० मिश्रा, कांग्रेस के तत्कालीन महामंत्री हेमवतीनंदन बहुगुणा और उमाशंकर दीक्षित ने भाग लिया। उन्होंने सी० पी० आई० की मदद से इन्दिरा गांधी द्वारा सरकार बनाने के 'ख़तरे पर' विचार किया और फ़ैसला किया कि ऐसी हालत में उन्हें इन्दिरा गांधी को छोड़कर संगठन कांग्रेस के साथ सरकार बनाने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसलिए जहाँ तक संभव हो उन लोगों को टिकट दिये जायें जो कांग्रेस पार्टी के प्रति निष्ठावान हों, न कि इन्दिरा गांधी के प्रति।

उनके सारे अनुमान बेबुनियाद साबित हो गये। इन्दिरा गांधी पहले ही यह कह चुकी थीं कि उनके खिलाफ़ एक और 'महागँठबंधन' तैयार हो रहा है। अब अपनी भारी जीत के बाद उन्होंने तय कर लिया कि किस-किसको निशाना बनाना है।

जगजीवनराम से पार्टी की अध्यक्षता ले ली गयी। इन्दिरा गांधी ने इसके लिए कार्य-समिति की मंजूरी लेना भी ज़रूरी नहीं समझा। इनकम-टैक्स वाले मामले में उन पर जुर्माना हो चुका था। यह तो उनकी मेहरबानी थी जो फिर भी उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल कर लिया गया था। इन्दिरा गांधी जगजीवनराम को खूब अच्छी तरह जानती थीं और उन्हें पक्का यक़ीन था कि हर तरह के अपमान के बावजूद वह मंत्री-पद स्वीकार कर लेंगे।

जगजीवनराम के आत्मसम्मान को सबसे ज्यादा चोट आम लोगों के इस विश्वास से लगती है कि हरिजन-नेता होने की वजह से ही वह केन्द्रीय मंत्रिमंडल के एक स्थायी सदस्य माने जाने लगे हैं। यह धारणा उनके अन्दर किसी नाजुक रग में कसक पैदा करती रहती है।

बचपन में जगजीवनराम को बड़े अपमान झेलने पड़े थे, महज़ इसलिए कि उनका जन्म हरिजन-परिवार में हुआ था। स्कूल में पानी पीने के लिए एक कोने में दो घड़े रखे रहते थे—एक हिन्दुओं के लिए और दूसरा मुसलमानों के लिए। जब कुछ हिन्दू लड़कों ने जगजीवनराम को अपने घड़े से पानी लेते देखा तो विरोध

किया और हेडमास्टर से शिकायत की। तब से अछूतों के लिए अलग घड़ा रखा जाने लगा। इस अपमान-जनक भेदभाव से क्षुब्ध होकर जगजीवनराम ने स्वयं उस घड़े को फोड़ दिया जो उनके लिए रखा गया था और फिर हेडमास्टर से शिकायत की कि हिन्दू लड़कों ने दुश्मनी के कारण उनका घड़ा फोड़ दिया है। नया घड़ा मँगाया गया, पर जगजीवनराम ने इसे भी फोड़ दिया। हेडमास्टर ने समझा कि फिर हिन्दू लड़कों ने बदमाशी की है। इससे नाराज़ होकर हेडमास्टर ने आदेश दिया कि अब जगजीवनराम हिन्दुओं के लिए रखे घड़े से ही पानी पियेंगे, जिनको एतराज़ हो वे अपने लिए अलग इंतज़ाम कर लें। जगजीवनराम की जीत हो गयी, पर वह खुश नहीं थे। उन्होंने महसूस किया कि वह अब भी हिन्दू लड़कों के लिए पहले ही की तरह स्वीकार्य नहीं हैं।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में उन्होंने अपने प्रति छिपे विद्वेष को और भी गहराई से महसूस किया। अक्सर उन्हें लगता था कि हिन्दू लड़के उन्हें इस तरह देख रहे हैं, गोया वह कोई तरस खाने वाली चीज़ हों। वैसे तो कोई उनकी उपेक्षा नहीं करता था, फिर भी वह महसूस करते थे कि कोई उन्हें स्वीकार नहीं करता है। होस्टल का वातावरण उन्हें इतना घुटन-भरा लगता था कि उन्होंने बाहर रहने का फ़ैसला ले लिया। और फिर एक दिन उस नाई ने, जो काफ़ी दिन से उनके बाल बनाता था, अचानक यह जानने पर कि वह 'अछूत' हैं उनकी हजामत बनाने से इनकार कर दिया।

आश्चर्य की बात है कि खुद उनके गाँव में हरिजनों के साथ ऐसा व्यवहार नहीं किया जाता था। गाँव की पाठशाला, जहाँ उन्होंने अक्षर-ज्ञान प्राप्त किया था, कपिल मुनि तिवारी नामक एक ब्राह्मण गुरु के बरामदे में लगती थी, और तिवारीजी का व्यवहार हर छात्र के साथ एक जैसा था—चाहे वह ब्राह्मण हो या अछूत। तिवारीजी जगजीवनराम को विशेष रूप से पसन्द करते थे। 1923 में जब भीषण बाढ़ में जगजीवनराम का पुश्तैनी मकान ढह गया तो उनके समूचे परिवार को तिवारीजी ने अपने घर में जगह दी, और जब तक मकान दुबारा नहीं बन गया, वे लोग वहीं रहे।

जगजीवनराम के पिता अपने एक रिश्तेदार के साथ पेशावर चले गये थे। उन्होंने हिंदी के अलावा टूटी-फूटी गोराशाही अँग्रेज़ी बोलना भी सीख लिया था, जिससे 12 साल की उम्र में उनको सैनिक अस्पताल में चपरासी की नौकरी मिल गयी। वह पेशावर व रावलपिण्डी के अस्पतालों में रहे। मुलतान में वह 'शिवनारायण संत' सम्प्रदाय के संपर्क में आये और बाद में स्वयं संत बन गये थे।

जगजीवनराम पाँच वर्ष के थे, जब उनके पिता की मृत्यु हो गयी। पर उन्हें अपने 'संत-जैसे पिता' की धुँधली याद आज भी है। बाद के जीवन में शोभीराम बेहद धार्मिक व्यक्ति हो गये थे और उनको अपनी शारीरिक सफ़ाई का बड़ा ध्यान रहता था। बिना नहाये और बिना हवन-पूजा किये वह खाना नहीं छूते थे और शाम को 'संध्या' करना ज़रूरी समझते थे। पूजा करने के बाद वह अपना एकतारा लेकर बैठ जाते और तुलसीदास, संत शिवनारायण तथा कबीर के भजन गाते रहते।

चाहे अपने अत्यंत धार्मिक पिता का असर रहा हो, या कपिल मुनि तिवारी के घर का, जगजीवनराम को जीवन-भर 'ब्राह्मण' बनने की धुन रही है। आज भी उनका घर पूजा-पाठ की सामग्री से वैसे ही भरा रहता है जैसे किसी ब्राह्मण का। सच कहें तो वह ब्राह्मण के घर का बढ़ा-चढ़ा रूप लगता है—शायद ब्राह्मणों

से भी अच्छा दिखायी देने की कोशिश की जाती है। जगजीवनराम को उस समय बेहद खुशी होती है जब कोई ब्राह्मण उनके पैर छूता है। उन्हें ऐसा लगता है कि गोया अब उन्हें स्वीकार कर लिया गया। फिर भी उन्हें शांति नहीं मिलती। उनके अंदर कहीं गहराई में एक ग्रंथि बन चुकी है, जिसे वह निकाल नहीं पाते।

महात्मा गांधी ने जब अछूतों को हरिजन कहना शुरू किया तो जगजीवनराम ने इसका तीव्र विरोध किया। उन्हें लगा कि इससे खाई पटने की बजाय और चौड़ी होगी और अलगाव बढ़ेगा, उसे बढ़ावा मिलेगा। उन्होंने सवर्ण हिन्दुओं के तथाकथित लोकोपकारवाद की कड़ी आलोचना की, और कहा, "वे हमारे सुधार का नाटक करते हैं ताकि उनके अपने हितों पर कोई आँच न आये।" एक बार जगजीवनराम ने दलित-वर्ग के ज़ोरदार प्रवक्ता डॉक्टर अम्बेडकर की भूरि-भूरि प्रशंसा की। उन दिनों डॉक्टर अम्बेडकर राष्ट्रीय आंदोलन के विरोधी थे।

गांधीजी ने डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद को लिखा कि वह जगजीवनराम से स्पष्टीकरण माँगें। राजेन्द्रप्रसाद ने जगजीवनराम से कहा कि उनका सवर्ण हिन्दुओं की निंदा करना, 'हरिजन' शब्द पर आपत्ति करना, और अम्बेडकर की तारीफ़ करना 'बहुत ही आपत्तिजनक' है। राजेन्द्रप्रसाद ने आगे कहा कि लगता है, उन्होंने अपना भाषण बहुत जल्दबाज़ी में तैयार किया था। जगजीवनराम ने स्वीकार किया कि वह वक्तव्य उन्होंने जल्दबाज़ी में तैयार किया था और वह सवर्ण हिन्दुओं के बारे में की गयी टिप्पणी में सुधार करने के लिए तैयार हैं। पर वह वक्तव्य के बाक़ी हिस्सों को बदलने के लिए तैयार नहीं थे।

1930 वाले दशक के प्रारंभिक वर्षों में गांधीजी, राजेन्द्रप्रसाद तथा अन्य लोग जगजीवनराम को 'अम्बेडकर का कांग्रेसी जवाब' के रूप में सामने लाये। उस समय यह भावना काफ़ी फैल रही थी कि कांग्रेस मुसलमानों से अलग पड़ती जा रही है और दलित वर्ग के लोग दूसरे खेमों की तरफ़ आकर्षित हो रहे हैं। कांग्रेस यह दिखाने के लिए बेचैन थी कि वह देश के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, जिसमें दलित वर्ग, मुसलमान, सिख तथा शेष सभी शामिल हैं। कांग्रेस जगजीवनराम को अपने मंच पर दलित वर्गों के प्रवक्ता के रूप में लाना चाहती थी।

जब कांग्रेस ने जगजीवनराम को आगे बढ़ाने का फ़ैसला किया तो सवाल पैदा हुआ कि उनके भरण-पोषण की क्या व्यवस्था हो? बिड़ला हाउस से कहा गया कि वह जगजीवनराम को एक मासिक भत्ता दे। तब से आज तक जगजीवनराम कभी भी बिड़ला-परिवार के प्रति 'बेवफ़ा' नहीं साबित हुए।

लेकिन जिस क्षण से उन्हें इस काम के लिए चुना गया और सहारा दिया गया, उनके अंदर की आग बुझने लगी। सत्ता और सम्पत्ति उनके पास बहुत आसानी से आ गयी। वह जल्दी ही सत्ता की चकाचौंध में डूब गये। इसका शिकंजा उन पर और उनके परिवार पर ऐसा कसा कि वह कभी इससे अपने को मुक्त नहीं कर सके, यहाँ तक कि उस समय भी वे उसकी पकड़ में जकड़े रहे जब वह सत्ता से बाहर थे, केवल उसकी चकाचौंध बाक़ी थी।

1946 में केन्द्र की अंतरिम सरकार में मंत्री बनने के बाद वह अपने परिवार को लाने पटना गये। उनकी पत्नी इन्द्राणी देवी उन दिनों के उत्साह का वर्णन इस प्रकार करती हैं—"उन्होंने (जगजीवनराम ने) मुझे बताया कि दिल्ली का बँगला बहुत बड़ा है। उसमें एक बड़ा-सा लॉन है। मैंने पूछा—क्या बख्शी साहब के मकान जैसा बड़ा लॉन है? उन्होंने जवाब दिया—नहीं, उससे भी बड़ा लॉन है।

मैं हैरान थी कि इतना बड़ा मकान और इतना बड़ा लॉन हम लोग क्या करेंगे। लेकिन मन-ही-मन मैं बहुत खुश थी...आखिरकार चलने का समय भी आ गया ...अटेंशन की मुद्रा में पुलिस वाले खड़े थे। मुझे देखते हुए बड़ा अजीब-सा लग रहा था, उन्होंने सैल्यूट लिया...स्टेशन पर भी चारों तरफ़ पुलिस तैनात थी। लोगों की भीड़ जमा थी और वे समझ नहीं पा रहे थे कि इतनी पुलिस क्यों तैनात है। लोग आपस में फुसफुसा रहे थे कि पुलिस के लोग मेरे पति को गार्ड ऑफ़ ऑनर देने आये हैं। फूल-मालाओं से लदे हुए हम लोग डिब्बे में अन्दर पहुँचे। मुझे बताया गया कि इसे सैलून कहते हैं। यह मिनिस्टरों के सफ़र करने के लिए बनाया गया था। इसमें दो-तीन सोने के कमरे, एक ड्राइंग-रूम, गुसलखाना और रसोईघर भी था जिसमें हमारा खाना बन रहा था। अचानक मुझे याद आया कि कुछ दिन पहले मैंने यात्रियों से ठसाठस भरे थर्ड क्लास के डिब्बे में रात-भर गठरी बनी बैठे रहकर कानपुर से पटना तक का सफ़र किया था। मेरी गोद में सुरेश (उनका पुत्र) था, जो बीमार था और मुझे पैर फैलाने की भी जगह नहीं मिल पा रही थी। और आज सारा नक़्शा ही बदला हुआ है। मैं हैरान थी—ईश्वर की भी माया कितनी अपरंपार है...!"

उस दिन के बाद से आज तक उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। वे अछूतों के हितों के लिए लड़ने वाले 'योद्धा' थे, लेकिन अस्पृश्यता एक ऐसा अभिशाप था जिसे वे काफ़ी पीछे छोड़ आये थे। जगजीवनराम सामाजिक अन्याय के विरुद्ध भाषण देकर अपना काम चला लेते हैं। कभी-कभी वे हरिजनों पर हो रहे निरंतर अत्याचारों तथा अपमानों के विरुद्ध ज़ोरदार शब्दों में विरोध भी प्रकट कर देते हैं। लेकिन ख़ुद उनके अंदर सवर्णों की सारी रूढ़ियाँ मौजूद हैं। चंदवा गाँव की चमारटोली के एक बूढ़े नागरिक ने ठीक ही कहा है कि वह "अछूतों के बीच एक ब्राह्मण हैं।"

जगजीवनराम का गाँव देखें तो आँखें खुली रह जाती हैं। जर्जर झोंपड़ों और टूटे-फूटे मकानों वाली इस ठेठ हरिजन-बस्ती के बीच उनकी कोठी खड़ी है—यह समाज के दलित लोगों को दिये गये उनके महान नेतृत्व का प्रतीक है। लगता है, इसे नयी दिल्ली के गोल्फ़ लिंक्स या महारानी बाग जैसे किसी समृद्ध इलाक़े से उठाकर यहाँ ला खड़ा किया गया है। इस कोठी के अंदर एक बार पहुँच जाने पर बाहर की दुनिया से नाता टूट जाता है, यह खबर नहीं रहती कि बाहर, क्या हो रहा है, बाहर के रेंगते कीड़ों का डर नहीं रहता। खिड़कियों से बाहर देखने पर ही—जिसकी आम तौर से कोई ज़रूरत नहीं होती—यह पता चलता है कि दुनिया कितनी अजीब है। बारह कमरों के इस बँगले के चारों ओर है चमारों की अँधेरी दुनिया, उन चमारों की जिन्हें गांधी ने 'हरिजन' नाम दिया था और जो अभी भी धरती के अभागों की कोटि में हैं।

इस कोठी का निर्माण भी गाँव के लिए एक महत्वपूर्ण घटना थी। समय-समय पर अपने औज़ारों और उपकरणों के साथ भवन-निर्माताओं के दल पहुँचते रहे। सर्वेक्षकों, भवन-विशेषज्ञों, कारीगरों, बढ़ईयों और इलैक्ट्रिशियनों की भीड़ लगी रहती थी। इनमें से अधिकांश लोग दूर 'राजधानी' से आते थे। इन लोगों ने उसी स्थान पर एक आधुनिक भवन का निर्माण किया, जहाँ किसी ज़माने में जगजीवनराम का मिट्टी का मकान था। इस इमारत के बाहर, संगमरमर की एक शिला लगायी गयी जिस पर लिखा है :

गुरु संत पति
संत शोभी राम
माँ बसंती देवी
स्मृति सदन

9 मार्च, 1976
चँदवा, आरा

इस महान नेता के एक ग़रीब पड़ोसी ने बताया, "बाबूजी जब आते हैं तो यहाँ मेला लग जाता है। लोग इस गली में लाइन में लगे रहते हैं और उनसे मिलने के लिए अपनी बारी का इंतज़ार करते हैं।" यह बातें गाँव के लोग इस तरह बताते हैं जैसे वह मकान कोई मंदिर हो, जिसका देवता कभी-कभी कृपापूर्वक उन लोगों को अपने दर्शन देने आ जाता हो। और जब वह मौक़ा आता है तो समूचा गाँव दर्शन के लिए उमड़ पड़ता है।

आरा क़स्बे से थोड़ी दूर बसे चँदवा गाँव के ग़रीब लोगों को जगजीवनराम की सफलता पर कोई नाराज़गी नहीं है—या कम-से-कम वे किसी तरह की नाराज़गी प्रकट नहीं करते। वे आपसे बतायेंगे कि अपने बीच इतने महान नेता को देखकर उन्हें कितना गर्व होता है।

गाँव की एक बूढ़ी हरिजन महिला ने बताया, "जिस दिन जगजीवन बाबू राजा नहीं बन सके, गाँव में किसी घर में चिराग़ नहीं जला।" उस महिला का मतलब उस दिन अर्थात् 24 मार्च 1977 से था, जिस दिन वह प्रधानमंत्री का पद नहीं पा सके थे। बूढ़ी महिला ने यह भी बताया कि "कई घरों में उस दिन खाना भी नहीं पका।"

जगजीवनराम का गुणगान वे करते तो हैं और उन पर उन्हें गर्व भी है, लेकिन कभी-कभी उनके व्यथित मन की चीत्कार भी सुनायी दे जाती है।

"हम ग़रीब कैसे रहते हैं, इसकी किसे फ़िक्र है, बाबू! जब बाढ़ आती है तो हमें एक चना भी नसीब नहीं होता।"

यह बात कही गाँव के बीच की कीचड़-भरी गली के किनारे बैठे एक बूढ़े चमार ने।

उससे पूछा गया कि उसकी टूटी झोंपड़ी के बराबर बने इस महल के बारे में उसकी क्या राय है।

उसने कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन दुमंज़िली इमारत के शानदार बरामदे की ओर वह जिस तरह देख रहा था और उसके बाद उसने जिस मुद्रा में अपनी थकी-माँदी आँखों को फेर लिया था, उसके बाद उसे कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं रही। उसकी निगाहें कह रही थीं कि 'यह ग़रीबों का अपमान है।'

चँदवा या बेलची या देश के किसी भी हिस्से में जो कुछ हो रहा है वह राजनीति की दुनिया के लिए एकदम बेमानी है। राजनीति की दुनिया के लिए इस बात का भी कोई अर्थ नहीं है कि किसी नेता का पुत्र अपने पिता के विरुद्ध कैसे अवर्णनीय आरोप लगाता घूमता है। इसका भी कोई अर्थ नहीं है कि एक नेता अपनी बुद्धि के ज़ोर से बिना किसी तरह का सुराग छोड़े घिनौने ढंग से धनवान बनता जाता है।

राजनीति में बहुत दिन तक सफलतापूर्वक बने रहने के लिए ज़रूरी हैं—

थोड़ी-सी मुलायमियत, पाखण्ड रचने की क्षमता और दोमुँही बातें करने की सलाहियत तथा परोपकार का मुखौटा पहने रहना।

यदि इन्दिरा गांधी के पास एक संजय था, बंसीलाल के पास एक सुरेन्दरसिंह और मोरारजी देसाई के पास एक कांतिलाल, तो जगजीवनराम के पास भी एक सुरेशराम है। पिता के अंदर कुछ ऐसी ग्रंथियाँ बनी हुई हैं जिन्हें वह कई दशकों तक आराम-तलबी से भरी ज़िंदगी बिताने के बाद भी नहीं दूर कर सके, पर बेटे के कंधों पर अतीत का ऐसा कोई बोझ नहीं है। बेशक यह नहीं कहा जा सकता कि सुरेशराम सोने के पालने में पैदा हुए थे, लेकिन उन्हें जल्दी ही वह मिल गया। वर्षों तक वह जंगली हिरन की तरह जिधर सींग समाये घूमते रहे, और उन्हें अपने घर की गंदी कहानियों को प्रसारित करने में कोई संकोच नहीं हुआ। एक समय ऐसा भी आया जब सुरेशराम अपने पिता के लिए एक सड़े हुए घाव की तरह हो गये थे।

राजनीति की माया से प्रभावित होने से काफ़ी पहले उन्हें पैसे की माया ने जकड़ लिया था। अपनी पंजाबी पत्नी के साथ मिलकर बिहार में एक आॅटो-मोबाइल एजेंसी और महाराष्ट्र में एक बेनामी एजेंसी उनको व्यस्त भी रखती थी और अच्छा-ख़ासा मुनाफ़ा भी देती थी। जगजीवनराम के मकान में सुरेशराम के साले और सालियों की बड़ी इज्ज़त है। कहा जाता है कि जिन दिनों निजी तौर पर अंतरप्रदेशीय व्यापार पर प्रतिबंध था, उनके साले को अनाज का अंतर्राज्यीय व्यापार करने का लाइसेंस मिला हुआ था। हो सकता है कि यह एक इत्तफ़ाक़ ही हो कि उस समय जगजीवनराम कृषि-मंत्री थे।

सुरेशराम ने जब राजनीति के मैदान में आने का फ़ैसला किया तो बिहार विधान-सभा की एक सीट पाने में उन्हें कोई समस्या नहीं हुई। हाँ, कुछ लोगों ने नाक-भौं सिकोड़ी और कुछ ने टिप्पणियाँ कीं, लेकिन ये बातें बहुत नगण्य हैं। सुरेश की प्रतिभा के फलने-फूलने के लिए बिहार सही स्थान नहीं था। वह ज़रूरत से ज़्यादा छोटी जगह हैं और वहाँ काम धीरे-धीरे होता है।

जनता सरकार के गठन के कुछ महीने बाद जब एक संवाददाता सुरेशराम से मिलने गया तो उसने देखा कि वह मुख्य-मंत्रियों और मंत्रियों से घिरे हुए हैं। वे सब किसी-न-किसी रूप में उनकी कृपा चाहते थे, लेकिन सुरेशराम ने उस संवाददाता को बताया कि उनका अब राजनीति से कोई सरोकार नहीं है, सिवाय इस बात के कि वह उस मकान में रह रहे हैं।

"यह मत भूलिये कि जगजीवनराम बहुत चालाक राजनीतिज्ञ हैं।" यह टिप्पणी एक पुराने कांग्रेसी नेता ने की, जो उन्हें तब से लगातार देख रहा है जब 1946 में 38 वर्ष की उम्र में वह अंतरिम सरकार के केन्द्रीय मंत्रिमंडल में लिये गये थे। "मंत्रिमंडल में सबसे कम उम्र के मंत्री यही थे। उस समय उनकी एक-मात्र ताक़त यह थी कि वे हरिजनों के नेता थे। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने अपना सिक्का जमा लिया। अब वह किसी भी रूप में हरिजन नहीं हैं। यह बात और है कि उनके द्वारा छुयी गयी मूर्ति को आज भी कोई बेवकूफ़ गंगा-जल से धोने की ग़लती कर बैठता है।"

केन्द्रीय मंत्रिमंडल में उनके वर्षों के जीवन में जगजीवनराम के पास ऐसे मंत्रालय रहे हैं जिनमें निचोड़ने को काफ़ी रस रहता है। मसलन—रेल, रक्षा, कृषि तथा कई अन्य। "आपको नहीं पता कि ये मंत्रालय सोने की खान हैं। रेल-मंत्रालय में लोहे के रद्दी सामान की नीलामी होती है। देश के विभिन्न हिस्सों में

इनके ढेर लगे होते हैं, लेकिन नीलामी एक ही स्थान पर होती है, और तीन करोड़ तक कभी-कभी चार करोड़ तक की बोली लगती है। यदि ठेकेदार इसमें से 25 लाख रुपया दे भी दे तो भी उसे सौ फ़ीसदी मुनाफ़ा हो सकता है। ठेकेदार भी खुश और लेने वाला भी खुश। यह तो एक बहुत छोटा उदाहरण है। कृषि-मंत्रालय को ही देखिये। यहाँ हर साल लाखों टन अनाज का आयात होता है। देश के विभिन्न हिस्सों में इस अनाज को पहुँचाने के लिए ठेका देकर कई लाख रुपये पाये जा सकते हैं। रक्षा-मंत्रालय में यदि केवल छोटी-मोटी चीज़ों पर ही ध्यान दें, तो बड़ी संभावनाएँ नज़र आती हैं। यह मंत्रालय पाँच लाख रुपये की तो हल्दी ही एक बार में ख़रीद लेता है। अब इसमें अगर डेढ़ लाख आपने ले भी लिया तो ठेकेदार को कोई नुक़सान नहीं है...।"

उस बूढ़े आदमी ने बताया, "जगजीवनराम बहुत व्यावहारिक राजनीतिज्ञ हैं। 1971 के चुनाव में कुछ राजपूतों ने उन्हें हराने का फ़ैसला कर लिया। बताया जाता है कि जगजीवनराम ने लाखों रुपये खर्च करके सैकड़ों गुंडे इकट्ठे किये और उनको जीपों में भर कर भेज दिया। इन गुंडों ने राजपूतों की गर्मी शांत कर दी।"

जगजीवनराम बहुत चालाक और घाघ राजनीतिज्ञ हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि वह जानते हैं कि विस्फोट करने का सही समय कौन-सा है।

टिप्पणियाँ

1. जैक एंडर्सन, एंडर्सन पेपर्स।
2. मोरारजी देसाई, द स्टोरी ऑफ़ माइ लाइफ़।

5

हेमवतीनंदन बहुगुणा—
एक बदमाश जिस पर प्यार आता है

सी० वी० गुप्ता कहते हैं—"बहुगुणा के नाम से उसकी असलियत मालूम हो जाती है।" गुप्ता ख़ुद ही तिकड़मों में माहिर हैं, लेकिन बहुगुणा उनसे भी एक क़दम आगे हैं। बहुगुणा बहुत दिन तक उनके लिए सिर का दर्द बने हुए थे। सी० वी० गुप्ता की 1974 के चुनाव में ज़मानत ज़ब्त होने पर, और वह भी लखनऊ शहर में जिसे वह अपनी व्यक्तिगत जागीर समझते थे, अपनी ज़िंदगी में सबसे बड़ा सदमा पहुँचा। उन्हें पक्का यक़ीन है कि बहुगुणा ने ज़रूर कोई-न-कोई हरकत की थी।

1977 के लोक-सभा के चुनाव के दौरान बहुगुणा गुप्ता से मिलने गये। राज-नीति के चक्कर ने दोनों को एक मुक़ाम पर लाकर खड़ा कर दिया था और अब वे इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ एक-साथ लड़ाई लड़ रहे थे। बहुगुणा से मिलते ही उन्होंने कहा, "बहुगुणा, अब तो साफ़-साफ़ बता दो कि 1974 में क्या किया था?"

बात तो मज़ाक के लहजे में कही गयी थी, लेकिन बहुगुणा झेंप गयें।

"अरे बोलो नटवरलाल, अब तो बोलो, क्या किया था?" गुप्ता ने कहा। वह बहुगुणा को राजनीति का 'नटवरलाल' कहते थे। नटवरलाल ऐसा धोखेबाज़ था कि सालों पुलिस को चकमा देता रहा।

"छोड़िये बाबूजी, इन बातों को।" बहुगुणा ने कहा और विषय बदल दिया।

1977 में जब मतदान का काम पूरा हो गया और मतपेटियों को सुरक्षित स्थान पर रखा जाने लगा तो बहुगुणा ने इस बात की विशेष रूप से ऐहतियात बरती कि उस कमरे के रोशनदान अच्छी तरह से बंद हों। यह देखकर सी० वी० गुप्ता ने चुटकी ली, "अब मैं समझा कि मेरी ज़मानत किधर से ज़ब्त हुई थी।"

बहुगुणा ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के एक उद्दण्ड छात्र-नेता के रूप में अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत की। कुछ वर्ष मज़दूर सभाओं का नेतृत्व किया और फिर गुप्ता-जैसे तिकड़मी राजनीतिज्ञों की भीड़ के बीच राजनीति के

मैदान में अपने लिए जगह बनाते रहे। इसी सिलसिले में उन्होंने गुप्ता की कला में भी महारत हासिल कर ली।

बहुगुणा निडर और दुस्साहसी राजनीतिज्ञ हैं। वह यह मानकर चलते हैं कि बिना ख़तरा उठाये फ़ायदा नहीं हो सकता। चुनौतियाँ स्वीकार करना उन्हें अच्छा लगता है। जब उन्हें उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनाकर भेजा गया तो 1974 के विधान-सभा-चुनाव के लिए महज़ तीन महीने बाक़ी थे। यह चुनाव बहुत निर्णायक साबित होने वाला था। उन्होंने इन्दिरा गांधी से वायदा किया कि वह कांग्रेस को ज़रूर जितायेंगे। उत्तर प्रदेश में कांग्रेस-विरोधी माहौल था और हेमवतीनंदन बहुगुणा को छोड़कर किसी को भी वह उम्मीद नहीं थी कि कांग्रेस फिर सत्तारूढ़ होगी।

बहुगुणा लखनऊ पहुँचे तो उनका ऐसा स्वागत हुआ, मानो बहुत बड़े नेता हों। उन्होंने विरोधी पार्टियों के साथ युद्ध का संचालन करने के लिए स्टेट गेस्ट-हाउस को अपना मुख्यालय बनाया। उनके साथ उनके दो व्यक्तिगत सहयोगी थे, जिनमें से "एक नौकर और दूसरा जोकर जैसा दिखायी देता था।"

बहुगुणा ने एक हैलीकॉप्टर लेकर ख़ुद ही समूचे राज्य का दौरा किया और हर तरह की कठिन स्थितियों में रहने की क्षमता का परिचय दिया। हर रोज़ वह दूर-दूर तक के इलाक़ों में जाते थे और दर्जनों सभाओं में भाषण देते थे। वह एक बहुत अच्छे वक्ता साबित हुए और दोस्तों को वश में करने तथा दूसरों को प्रभावित करने के लिए डेल कार्नेगी के बताये नुस्ख़े उन्होंने पूरी तरह पचा लिये थे। अपने राजनीतिक जीवन के शुरू के दिनों से ही वह नेहरू की नक़ल करने लगे थे। नेहरू की तरह ही वह बच्चों पर अपनी फूल-मालाएँ फेंक देते और ग़रीबों के कंधों पर हाथ रखकर फ़ोटो खिचवाते। बहुगुणा जहाँ कहीं भी जाते थे वहाँ के डिप्टी-कमिश्नरों और पुलिस-सुपरिंटेंडेंटों को गले से लगा लेते और तरह-तरह से प्यार जताकर उनकी व्यक्तिगत वफ़ादारी हासिल कर लेते थे। अपनी चतुराई, शासन-कला और पैसे के ज़ोर का इस्तेमाल करके उन्होंने विधान-सभा की 425 सीटों में से 213 सीटों पर कांग्रेस को सफलता दिला दी, अन्य तीन सीटें लाठी-चॉर्ज और वोटों की बार-बार गिनती कराके हासिल कर लीं, और बाद में दलबदलुओं की कृपा से संख्या और बढ़ा ली।

बहुगुणा को कुछ लोग मशहूर जादूगर गोगिया पाशा के नाम से पुकारते हैं और कुछ कहते हैं कि वह "ऐसा बदमाश है जिस पर प्यार आता है।" यहाँ तक कि मुख्यमंत्री-पद से हटने के बाद भी वह जब कभी विधान-सभा में आते तो लोगों को उनकी मौजूदगी का एहसास हो जाता। वह हाथ हिलाते हुए हर रोज़ प्रेस-गैलरी की तरफ़ से आते। सफ़ेद बुर्राक़, चूड़ीदार पायजामा और कुर्ता पहने, सर पर तिरछी टोपी लगाये जिसमें से जान-बूझकर दो-चार बाल बाहर निकले रहते थे, वह कुछ लोगों को तबलची जैसे लगते और कुछ लोग उनकी तुलना फ़िल्मी हीरो से करते। मुसकराते हुए वह सरकारी बैंचों की तरफ़ बढ़ते तो विधायक उनकी तरफ़ दौड़ पड़ते। उनके कुछ शागिर्द पैर छूने के लिए झुकते, लेकिन वह उन्हें बीच से ही उठाकर सीने से चिपटा लेते और पीठ थपथपाने लगते। कुछ मिनट वहाँ रहकर वह तो गवर्नर के आने वाले रास्ते से बाहर चले जाते, लेकिन वहाँ सारे दिन उनकी ही चर्चा होती रहती।

उनके राजनीतिक दुश्मन भी यह मानते थे कि बहुगुणा ने मुख्यमंत्री-पद को एक नयी गरिमा दी। अपने काम के दौरान वह एक मशीन की तरह सक्रिय रहते,

ग़लती करने वाले अफ़सरों और राजनीतिज्ञों को डाँटते तथा अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ काम करने वालों की पीठ थपथपाते हुए वह अपना प्रशासन मज़बूती से चलाते थे।

बहुगुणा नफ़ासत-पसंद आदमी हैं। हैलीकॉप्टर का इस्तेमाल वह ऐसे ही करते थे जैसे आम आदमी साइकिल का। एक बार उनकी पत्नी पूर्वी यूरोप के देशों की यात्रा से वापस लौट रही थीं। रात में दो बजे जब उनका जहाज़ पालम पर उतरा तो उन्हें देखकर बड़ी ख़ुशी हुई और हैरानी भी कि उनके पति ने सरकारी हैलीकॉप्टर के साथ अपने लड़के विजय को उन्हें तुरंत लखनऊ ले जाने के लिए भेज दिया है। उनके स्वागत के लिए उत्तर प्रदेश के रेज़िडेंट कमिश्नर तथा अन्य उच्च अधिकारी भी मौजूद थे।

बहुगुणा अब इतने महत्वपूर्ण हो चुके थे कि इन्दिरा गांधी की आँखों में खटकने लगे।

इन्दिरा गांधी ने जब बहुगुणा से मुख्यमंत्री बनकर उत्तर प्रदेश जाने के लिए कहा, तो वह बोले, "मुझे यू० पी० मत भेजिये। वह बहुत बड़ा राज्य है। अगर मैं सफल रहा तो अपने से बहुत बड़ा नज़र आने लगूँगा और अगर असफल रहा तो ज़रूरत से ज़्यादा छोटा दिखायी दूँगा।"

दरअसल इन्दिरा गांधी ने बहुगुणा को बड़े बेमन से मुख्यमंत्री बनाया था। दोनों लोगों के बीच कटुता के बीज काफ़ी पहले ही पड़ चुके थे। शुरुआत संजय गांधी के कुख्यात 'जीप स्कैंडिल' से हुई थी। यह 1971 के लोक-सभा-चुनाव के कुछ महीने पहले की बात है। संजय गांधी ने उन दिनों राजनीति में दिलचस्पी लेना शुरू कर दिया था और चुनाव-प्रचार के लिए बहुत-सी नयी जीपों को जुटा लिया था। ये सारी जीपें धीरेन्द्र ब्रह्मचारी के योग-संस्थान के अहाते में खड़ी रहती थीं। एक प्रेस-फ़ोटोग्राफ़र ने इन जीपों का फ़ोटो लेना चाहा तो संजय गांधी ने उसे थप्पड़ मार दिया और दिल्ली के एक अख़बार ने विस्तार से ख़बर छाप दी। बहुगुणा उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव थे। उन्होंने संजय गांधी को सुझाया कि यह कह दें कि ये जीपें कांग्रेस पार्टी की हैं, तो किसी पचड़े में नहीं पड़ना पड़ेगा। लेकिन शाहज़ादे को लगा कि बहुगुणा उसके काम में दखल दे रहे हैं। उसने उनसे कह दिया कि आपसे कोई मतलब नहीं, आप अपना काम देखिये।

जब बहुगुणा संचार राज्य-मंत्री हुए तो उन्होंने मंत्रालय में तबादलों और नियुक्तियों के लिए एक नयी पद्धति निकाली। इस पद्धति के अंतर्गत काफ़ी अधिकारियों के तबादले हुए। इनमें से एक असिस्टेंट इंजीनियर भी था, जिसकी संजय से बड़ी घनिष्ठता थी। बहुगुणा से उसके तबादले को रद्द करने के लिए कहा गया। उन्होंने इंकार कर दिया और तबादलों की नयी पद्धति समझाने के लिए अपने निजी सचिव को संजय गांधी के पास भेजा। संजय गांधी ने इसकी कोई परवाह नहीं की और फिर तबादला रद्द करने के लिए कहा। जब बहुगुणा ने दोबारा इंकार किया तो संजय आपे से बाहर हो गये।

बहुगुणा ने तय किया कि वह ख़ुद जाकर संजय गांधी को सारी बातें समझा दें। लेकिन संजय गांधी बिगड़ पड़े, "मुझे इससे कोई मतलब नहीं कि आपने क्या नियम बनाये हैं। मैं यही जानता हूँ कि यह फ़ैसला ग़लत है और यह तबादला रुकना चाहिए।"

वहुगुणा से वर्दाश्त नहीं हुआ। उन्होंने कहा, "देखो संजय, अगर मैंने कोई ग़लती की है तो मैं इस्तीफ़ा दे दूंगा।"

अपनी माँ पर संजय के प्रभाव के वारे में उन दिनों बहुत कम लोगों को मालूम था, लेकिन वहुगुणा को यह समझते देर नहीं लगी कि अचानक उनके प्रति इन्दिरा गांधी का रवैया क्यों बदल गया है। उत्तर प्रदेश के उनके राजनीतिक दुश्मन चन्द्रजीत यादव, बी० पी० मौर्य तथा अन्य लोगों का इन्दिरा के दरवार में काफ़ी रुतवा था। धीरे-धीरे वहुगुणा को कांग्रेस पार्टी की लगभग सभी समितियों से अलग कर दिया गया---यहाँ तक कि पार्टी की पत्रिका **सोशलिस्ट इंडिया** की समिति से भी उनका नाम हटा दिया गया, जिसके लिए वहुगुणा ने वहुत काम किया था। उनके दुश्मनों ने प्रधानमंत्री के कान भरने शुरू किये कि वहुगुणा इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ हैं और जव कांग्रेस के महासचिव थे उन्होंने इन्दिरा गांधी को हटाने के लिए कांग्रेस-अध्यक्ष जगजीवनराम के साथ मिलकर एक षड्यंत्र रचा था।

लेकिन जव इन्दिरा गांधी के सामने उत्तर प्रदेश की वेहद कठिन समस्या आयी तो वहुगुणा के अलावा उन्हें कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं दिखायी दिया जो वहाँ की हालत सुधार सके। कमलापति त्रिपाठी के 'वहू-राज' और पी० ए० सी०-विद्रोह ने उत्तर प्रदेश के प्रशासन को तहस-नहस कर दिया था। चुनाव के दिन वहुत नज़दीक थे। मुख्यमंत्री-पद के लिए जिन संभावित नामों पर विचार-विमर्श हुआ उनमें वहुगुणा से वेहतर कोई नहीं लगा। 1971 के लोक-सभा-चुनाव में वही कांग्रेस के मुख्य संगठनकर्ता थे और इन्दिरा गांधी को पता था कि चुनाव के दाव-पेंच में वहुगुणा से ज़्यादा माहिर दूसरा कोई नहीं है। इन्दिरा गांधी की खूवी है कि जव तक कोई आदमी उनके लिए उपयोगी रहता है वह उसका पूरा इस्तेमाल करती हैं। इसीलिए उन्होंने वहुगुणा को यू० पी० भेजने का फ़ैसला कर लिया।

"क्या आपको विश्वास है कि मैं इस काम के लिए उपयुक्त हूँ?" वहुगुणा ने इन्दिरा गांधी से पूछा।

इन्दिरा गांधी ने जवाव दिया, "यदि मुझे यक़ीन नहीं होता तो मैं आपको क्यों भेजती?" वहुगुणा ने उन 'आपत्तियों' की तरफ़ इशारा किया जो उनके प्रति इन्दिरा गांधी के मन में थीं, लेकिन इन्दिरा गांधी ने कहा, "पुरानी बातों को भूल जाइये।"

लेकिन कुछ ही दिनों के अंदर इन्दिरा गांधी को अपने फ़ैसले पर खेद होने लगा। लखनऊ में वहुगुणा का जो ज़वर्दस्त स्वागत हुआ था उससे इन्दिरा गांधी को खुशी नहीं हुई। दिल्ली से लखनऊ तक के तीन सौ मील के इस सफ़र में हर स्टेशन पर हज़ारों की संख्या में प्रशंसकों की भीड़ के कारण वहुगुणा को रात-भर जागते रहना पड़ा था। कई स्टेशनों पर भीड़ की वजह से ट्रेन को देर तक रुकना पड़ा। अगले दिन सवेरे चारवाग स्टेशन पर अद्भुत दृश्य देखने को मिला। लोग भारी संख्या में स्वागत के लिए खड़े थे। और दो दिनों वाद जव उन्होंने मुख्यमंत्री का पद संभाला तो लगभग एक लाख लोग उनकी जय-जयकार करने के लिए इकट्ठा हुए। उनमें से लगभग आधे राज्य के विभिन्न कोनों से आये थे। एक समाचार-पत्र ने अपनी ख़बरों में लिखा कि कांग्रेसियों ने सैंकड़ों बसें किराये पर ली थीं, जिनमें भरकर लगभग पचास हज़ार प्रदर्शनकारी वहुगुणा के स्वागत के लिए लखनऊ आये।

अगर यही सब इन्दिरा गांधी के लिए किया जाता तो कोई हर्ज नहीं था,

लेकिन उनको यह बर्दाश्त नहीं था कि किसी और का ऐसे स्वागत किया जाये। और फिर आग पर घी डालने के लिए लोग उनसे कहते कि बहुगुणा की महत्वाकांक्षाएँ बहुत ऊँची हैं। उन्हें बताया गया कि बहुगुणा ने अपने किसी राजनीतिक मित्र से कहा था कि "यदि बीजू पटनायक एक करोड़ रुपया इकट्ठा करके उड़ीसा के मुख्यमंत्री बन सकते हैं तो क्या मैं एक सौ करोड़ रुपये इकट्ठा करके भारत का प्रधानमंत्री नहीं बन सकता ?"

कहा जाता है कि मुख्यमंत्री के रूप में बहुगुणा चंदा जुटाने में बड़े माहिर साबित हुए। नेताओं के जन्म-दिन पर थैलियाँ भेंट करने के मामले में उत्तर प्रदेश बहुत आगे है। सी० बी० गुप्ता ने शायद ही कभी बिना किसी थैली के जन्म-दिन मनाया हो। जब इन्दिरा गांधी के जन्म-दिन पर थैली भेंट करने की बात आयी तो ज़ाहिर है कि इसके लिए बहुत ज़्यादा रक़म जुटाने की ज़रूरत थी। कहा जाता है कि उत्तर प्रदेश के चीनी मिल-मालिकों से ही 75 लाख रुपये इकट्ठे किये गये, लेकिन बताया गया कि केवल 45 लाख जमा हुए हैं, जिसमें से राज्य-भर में हुए जन्म-दिवस-समारोहों पर 25 लाख रुपये ख़र्च हो गये। इस प्रकार सफ़दरजंग रोड तक केवल 20 लाख रुपये ही पहुँचे।

इन्दिरा गांधी के प्रमुख एजेंट यशपाल कपूर को ठीक-ठीक पता था कि कितनी रक़म जमा हुई है और उन्होंने इन्दिरा गांधी को इसकी जानकारी दे दी। इन्दिरा गांधी ने कपूर से कहा कि उत्तर प्रदेश की गतिविधियों पर "कड़ी निगाह" रखो।

अपने ही जैसे लोगों को दोस्त बनाने में कुशल यशपाल कपूर ने बहुगुणा के एक "मुख्य कारीगर" से, जो उनका व्यक्तिगत सचिव था, सबंध क़ायम कर लिया। यह सचिव आल-इंडिया कांग्रेस कमेटी के ऑफ़िस में उस समय क्लर्क था, जब बहुगुणा कांग्रेस-महासचिव थे। इसने अपने आक़ा का बहुत बड़ा उपकार किया था—जिस लड़की से कहा गया उसी से शादी करली। वह लड़की भी वहीं क्लर्क थी, सुन्दर मानी जाती थी और परेशानी में पड़ गयी थी। इस 'एहसान' के लिए उसे अच्छा-ख़ासा मुआवज़ा भी दिया गया। वह बहुगुणा का अत्यंत विश्वासपात्र बन गया था, जो दोनों के लिए फ़ायदेमंद साबित हुआ। कुछ ही दिनों में उसने दिल्ली में एक बहुत बड़ी कोठी खड़ी कर ली। और उसके पास इतनी रक़म हो गयी कि वह अपने ढंग से अपनी ज़िन्दगी बसर कर सके। बाद में पता चल गया कि यशपाल कपूर के साथ उसके सबंध बन गये हैं।

कपूर ने बहुगुणा-सरकार का हिसाब-किताब रखना शुरू कर दिया।

शारदा सहायक गोमती जलसेतु के लिए टेंडर तो चार करोड़ बीस लाख रुपया मंजूर किया गया, लेकिन 11 करोड़ रुपये पर तय हुआ। बाद में बढ़ाकर 14 करोड़ पर सौदा हुआ। नये टेंडरों को मँगाने की ज़रूरत नहीं समझी गयी।

बिड़ला पर बिजली की मद में चार करोड़ रुपये बक़ाया थे। सरकार ने पुराने आदेशों के अनुसार वसूली के लिए दबाव डालने के बजाय मामले को पंच-फ़ैसले के सुपुर्द कर दिया। पंच-फ़ैसले में ऐसा जोड़-तोड़ बैठाया गया कि बिड़ला को वह डेढ़ करोड़ भी नहीं देना पड़ा जिसे देने के लिए वह पहले तैयार थे। मोदी और सिंघानिया जैसे अनेक उद्योगपतियों के कारख़ानों को दी जाने वाली बिजली में भारी कटौती कर दी गयी थी। वे बिजली की सप्लाई फिर से मनोनुकूल कराने के लिए "कुछ भी करने को" तैयार हो गये।

राज्य विजली बोर्ड में लगातार हड़तालों की वजह से बिजली-सप्लाई की स्थिति वहुत ख़राव थी, और डीज़ल पंपिंग सेटों की ख़रीद के लिए भगदड़ मची हुई थी। अचानक सरकार ने घोषणा की कि किसानों का उन फ़र्मों से ही आयल-इंजन खरीदने के लिए ऋण दिया जायेगा, जिनके पास सरकारी लाइसेंस हैं। उन फ़र्मों ने, जिन्हें सरकारी लाइसेंस प्राप्त करने के लिए "बहुत सतर्कता से चुना गया था," लगभग चालीस करोड़ रुपये में एक लाख से ज्यादा इंजन बेचे। कहा जाता है कि इस काम में काफ़ी रक़म की हेरा-फेरी हुई।

मुख्यमंत्री के पुत्र विजय ने तभी इलाहावाद हाई-कोर्ट में वकालत शुरू की थी। उनको दर्जनों फ़र्मों ने अपना वकील बना लिया। और इन फ़र्मों से विजय को नियमित रूप से बँधी हुई फ़ीस मिलने लगी। जब तक उसके साथियों को पता चला उसके पास अपार सम्पत्ति जमा हो चुकी थी।

इलाहाबाद नगर-निगम के तत्कालीन प्रशासक एक व्यक्तिगत झंझट में पड़ गये, क्योंकि उन्होंने एक ऐसी विदेशी महिला से शादी कर ली जिसकी पहले ही निगम के एक डॉक्टर से शादी हो चुकी थी। उसने नौजवान वकील के लिए एक काफ़ी बड़ा मकान बनवा दिया और उसकी सारी मुसीबतें ख़त्म हो गयीं। (कहा जाता है कि चौधरी चरणसिंह ने केन्द्रीय गृह-मंत्री बनने के बाद उस अधिकारी को भ्रष्टाचार के आरोप पर मुअत्तिल कर दिया।)

सरकार की "गतिशीलता" के पीछे लालच और भ्रष्टाचार की वही चिर-परिचित कहानियाँ हैं।

बहुगुणा को अपने बचपन के दिन बहुत अच्छी तरह याद हैं। वह गढ़वाल में थे और उनकी एक ही महत्वाकांक्षा थी कि आई० सी० एस० बन जायें। एक बार की बात है—वह टट्टू पर बैठकर पहाड़ पर जा रहे थे और उनके पटवारी-पिता उनके साथ पैदल चल रहे थे कि तभी दूसरी तरफ़ से घोड़े पर सवार एक गोरा अफ़सर आता हुआ दिखायी दिया। उस अफ़सर को देखकर डर के मारे पिता की हालत खराब हो गयी और उन्होंने लड़के से कहा, "जल्दी उतरो, टट्टू से जल्दी उतरो।" लेकिन दस साल की उम्र का वह बालक टट्टू से नहीं उतरा और अपने भयभीत पिता से साफ़-साफ़ कह दिया कि "वह मेरा साहब तो नहीं है।"

साहब के नज़दीक आते ही बहुगुणा के पिता ने झुककर सलाम किया।

वह साहब आई० सी० एस० अफ़सर था और ज़िले का डिप्टी-कमिश्नर। उसने लड़के की तरफ़ देखते हुए पूछा, "रेवतीनंदन, यह किसका लड़का है?"

"हजूर, यह मेरा लड़का है।" पिता ने जवाब दिया।

"तुम्हारा क्या नाम है, लड़के?" साहब ने पूछा।

"हेमवतीनंदन बहुगुणा।" लड़के ने तनिक भी डरे बिना जवाब दिया। उसके साहस को देखकर पिता हैरान रह गये। जब साहब काफ़ी दूर चले गये तब कहीं जाकर पिता की जान में जान आयी।

बहुगुणा ने अपने पिता को इतना डरा कभी नहीं देखा था और इसलिए उनके मन में यह बात बैठ गयी कि "आई० सी० एस० अफ़सर ज़रूर दुनिया का सबसे बड़ा आदमी होता होगा।"

उसी दिन से ही उनके मन में एक ललक पैदा हो गयी। स्कूल की अपनी सभी किताब-कापियों पर वह अपना नाम लिखा करते थे—'एच० एन० बहुगुणा, आई० सी० एस०।'

वहुगुणा-परिवार कभी बंगाल से यहाँ आया था। औरंगज़ेब के ज़माने में दो बंद्योपाध्याय-भाई अपने-अपने परिवार के साथ बद्री-केदार की यात्रा पर बंगाल से रवाना हुए। वापसी में बड़े भाई की पेचिश से मृत्यु हो गयी। शोकाकुल परिवार टेहरी-गढ़वाल राज्य की राजधानी श्रीनगर पौड़ी में रुक गया। वे एक धर्मशाला में ठहरे थे। एक दिन उन्हें मुनादी की आवाज़ सुनायी दी। साथ के पंडे ने बताया कि मुनादी के ज़रिये यह सूचना दी जा रही है कि महाराजा का बेटा बुरी तरह बीमार है, कोई उसका इलाज कर दे तो उसे काफ़ी इनाम दिया जायेगा। बंद्योपाध्याय-बंधु ज्योतिषी और वैद्य थे। मृत भाई की पत्नी ने अपने देवर से कहा कि जाकर राजकुमार का इलाज करे। वह महाराजा के दरवार में गया और लड़के की जन्म-पत्री देखकर उसने कुछ दवाएँ दीं, जिससे राजकुमार की जान वच गयी। इलाज करने के बाद उस वैद्य ने घर लौटने की इच्छा व्यक्त की, लेकिन महाराजा ने उन्हें जाने नहीं दिया और खुश होकर 'वहुगुणा' (अनेक गुणों वाला व्यक्ति) की उपाधि दे दी। महाराजा ने उन्हें ज़ोर देकर गढ़वाल में ही बसने के लिए विवश किया। बाद में राज्य-परिवार के इष्ट-देवता की पूजा-पाठ का काम भी उन्हें सौंप दिया और उन्हें 'राजगुरु धर्माधिकारी' वना दिया गया।

आजकल समूचे गढ़वाल क्षेत्र में लगभग छः सौ वहुगुणा-परिवार हैं। इन्हीं में से एक परिवार में 1921 में हेमवतीनंदन वहुगुणा का जन्म हुआ।

अपनी जीवन-कथा बताते हुए वहुगुणा कहते हैं, "वचपन से ही मैं एक उड़ता पक्षी रहा हूँ। दर्जा चार तक मैंने अपने गाँव वुगानी में शिक्षा ग्रहण की और फिर खिरसू नामक स्थान में चला गया। मैं पढ़ने में वहुत तेज़ था और हमेशा प्रथम श्रेणी में पास होता था। खेलकूद में भी मैं काफ़ी भाग लेता था, लेकिन जब मैं दर्जा छह में था तो फ़ुटबॉल खेलते समय मेरी गले की हड्डी टूट गयी। उसके वाद से मैंने खेलना बंद कर दिया। खिरसू में शिक्षा पूरी करने के वाद, मैं डी० ए० वी० स्कूल पौढ़ी-गढ़वाल चला गया और वहाँ से देहरादून। आपने ग़ौर किया कि मैं लगातार पहाड़ों से नीचे ही उतरता आ रहा था। मैं बरावर नये मैदान मारने की कोशिश करता रहा और मेरी निगाह दूर क्षितिज की ओर रहती। जगह-जगह की सैर करने के कारण हर इलाक़ा मुझे अपना समझता है और हर इलाक़े पर मैं दावा करता हूँ। मेरे साथ पढ़े लोग समूचे उत्तर प्रदेश में फैले हुए हैं।"

उनकी सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा आई० सी० एस० वनने की थी। लेकिन अँग्रेज़ी में वह वहुत कमज़ोर थे, इसलिए उन्होंने अपनी सारी ताक़त अँग्रेज़ी की पढ़ाई में ही लगा दी। जब वह छुट्टियों में घर जा रहे थे तो एक दोस्त ने उन्हें पट्टाभि सीतारमैया लिखित **हिस्टरी ऑफ़ कांग्रेस** की एक प्रति दी। कांग्रेस के बारे में कुछ पढ़ने में उनकी रुचि नहीं थी। वह अपने दोस्तों से कहा करते थे कि "जिसके पास कोई काम न हो वह कांग्रेसी वने।" लेकिन उनके दोस्त ने कहा कि इस पुस्तक की अँग्रेज़ी वहुत अच्छी है। वहुगुणा ने वह किताब रख ली।

"मेरे अंदर के आई० सी० एस० ने किताव पढ़नी शुरू की। लेकिन जब जलियाँवाला बाग़ वाला अध्याय पढ़ा तो आँखें खुल गयीं। मुझे आज भी याद है कि उस दिन दशहरा था, बड़ी बहन पूजा के लिए मेरा इंतज़ार कर रही थी और मैं किताब में डूबा हुआ था। वाद में मैंने उस अध्याय को अपनी वहन को पढ़कर सुनाया तो वह रो पड़ीं। उन आँसुओं को देखकर मैंने प्रण कर लिया कि अँग्रेज़ों को भारत से खदेड़कर रहूँगा। मेरे अंदर का आई० सी० एस० अब मर चुका था

और उसके स्थान पर एक विद्रोही का जन्म हो चुका था।"

इलाहाबाद आने पर उनका राजनीतिक जीवन शुरू हुआ। उनके कॉलेज का प्रिंसिपल एक अँग्रेज था। उसने यूनियन बनाने की इजाज़त नहीं दी, लेकिन 'पार्लियामेंट' के गठन के लिए मंज़ूरी दे दी।

"हमने विजय वीर वांचू को स्पीकर चुना। मैं प्राइम-मिनिटर था। हम अपनी पार्लियामेंट का किसी से उद्घाटन कराना चाहते थे। वांचू ने कहा कि वह अपने दादा से इसके लिए कह सकता है। मैंने पूछा कि उसके दादा का क्या नाम है। उसने बताया—जवाहरलाल नेहरू। यह सुनकर मैं रोमांचित हो उठा। नेहरू हमेशा से मेरे आदर्श नायक रहे हैं। मैंने उनके मुहावरों, उनकी पोशाक और उनके विचारों की हमेशा नक़ल करनी चाही। मैं सारी उम्र उनका प्रशंसक रहूँगा और उनको प्यार करूँगा...जवाहरलालजी उस दिन इलाहाबाद में थे, हम उनके पास गये। उन्होंने कहा कि वह दौरे पर जा रहे हैं, उनके लिए आना मुश्किल है, लेकिन उन्होंने सुझाव दिया कि हम लोग रंजीत पंडित से चलने के लिए अनुरोध करें। हम उनके पास गये और वह हमारे पार्लियामेंट का उद्घाटन करने के लिए तैयार हो गये।"

स्वराज-भवन और आनंद-भवन के साथ बहुगुणा के संबंध जुड़ने की यह शुरुआत थी। अपने फ़ुरसत के समय वह स्वराज-भवन चले जाते और वहाँ के छोटे-मोटे कामों में, मसलन डाक खोलना, पते लिखना आदि में, हाथ बँटाने लगे।

1941 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ। बहुगुणा को 'मौलाना आज़ाद स्वयंसेवक दल का इंचार्ज' बनाया गया। बहुगुणा के पिता ने इस अधिवेशन में उनको देखा तो उन्हें पहली बार पता चला कि उनका बेटा क्या कर रहा है। बहुगुणा ने खद्दर पहनना शुरू कर दिया था। लेकिन गाँव जाने के लिए वह दूसरी तरह के कपड़े रखते थे।

विश्वविद्यालय में दाख़ला लेने के बाद उन्होंने यूनियन के अध्यक्ष-पद के लिए चुनाव लड़ा, लेकिन हार गये। उनका कहना है कि "मैंने असफलता से शुरुआत की और फिर मैं दादा बन गया।" दादा से उनका तात्पय दबंग व्यक्ति से है। 1942 के आंदोलन में वह विश्वविद्यालय के दूसरे डिक्टेटर बनायें गये, भूमिगत हो गये और दिल्ली आकर इंडिया गेट पर जॉर्ज पंचम की मूर्ति की नाक उन्होंने तोड़ दी। उन्हें ज़िन्दा या मुर्दा पकड़ने के लिए पाँच हज़ार रुपये का इनाम घोषित हुआ। फ़रवरी 1943 में वह गिरफ़्तार हुए और जेल में ही उन्हें प्लूरेसी हो गयी। 1945 में जब वह रिहा हुए तो शरीर पर केवल हड्डियाँ बची थीं और चेहरे पर एक लंबी दाढ़ी लहरा रही थी।

1950 तक ज़िला कांग्रेस कमेटी के दरवाज़े उनके लिए बंद थे। इलाहाबाद में ज़िला कांग्रेस पर मुज़फ़्फ़र हसन, मंगलाप्रसाद और मसुरिया दीन का क़ब्ज़ा था। ये सभी सी० बी० गुप्ता के आदमी थे जो बहुगुणा को अंदर नहीं आने दे रहे थे। मंगलाप्रसाद ने तत्कालीन मुख्यमंत्री गोविन्दवल्लभ पंत के पास शिकायत की कि बहुगुणा कम्युनिस्ट हैं, और उन्हें गिरफ्तार कराने की भी कोशिश की गयी। बहुगुणा ने मज़दूर-मोर्चे पर काम शुरू कर दिया था और इलाहाबाद की लगभग सभी ट्रेड यूनियनों का संगठन कर लिया था।

बहुगुणा ने हावभाव के साथ बताया कि कांग्रेस-नेतृत्व के भीतरी व्यूह में वह किस तरह घुसे। "1951 में जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस-अध्यक्ष बने। सोशलिस्ट

कांग्रेस से अलग हो चुके थे। कांग्रेस का संगठन तहस-नहस हो गया था। कांग्रेस वाले कोई सार्वजनिक सभा करने में भी डरते थे। उन्हीं दिनों लालबहादुर शास्त्री इलाहाबाद आये और उन्होंने मुझे कहलवाया कि उनसे मिलूँ। जब मैं मिला तो उन्होंने पूछा कि क्या मैं शहर में कोई सभा आयोजित कर सकता हूँ। मैंने अपनी सहमति दे दी, और इतनी बड़ी सभा का आयोजन किया जो इलाहाबाद में वर्षों से नहीं देखी गयी थी। मैंने अपनी सभी ट्रेड यूनियनों से भाग लेने को कहा। टंडन पार्क में लोगों की भीड़ उमड़ पड़ी। यह बहुत बड़ी सभा थी, लेकिन उन लोगों ने मंच पर मुझे नहीं जाने दिया। मैं भीड़ से काफ़ी दूर खड़ा होकर चाट खाने लगा। उन दिनों आम तौर से मेरे पास इतने ही पैसे होते थे। अचानक चारों तरफ़ अँधेरा छा गया। बिजली चली गयी थी। मीटिंग में ज़बर्दस्त हो-होल्ला मच गया। भीड़ ने 'बहुगुणा ज़िंदाबाद' के नारे लगाये। हर आदमी मुझे बुला रहा था। किसी को यह नहीं पता था कि जनता को कैसे क़ाबू में करे। मैं तेज़ी से मंच की ओर बढ़ा। तभी बिजली वापस आ गयी। लोग चिल्ला रहे थे—बहुगुणा ज़िंदाबाद।"

उनके आलोचकों ने कहा कि बिजली जाने और आने की सारी योजना बहुगुणा ने पहले से बनायी थी। उन दिनों बहुगुणा को लोग बुनियादी तौर पर ऐसा 'दबंग आदमी' समझते थे, जिसका "अपराधियों से भी मेल-जोल" था। इलाहाबाद के एक बूढ़े नागरिक के अनुसार "बहुगुणा के पास रिक्शा थे, जिन्हें वह किराये पर देते थे और कभी-कभी तो ख़ुद ही चला लेते थे।" लेकिन ईर्ष्या से भरे आलोचक कहीं-न-कहीं ग़लती निकाल ही लेते हैं। सच्चाई यह है कि उस शाम की घटना ने स्थानीय राजनीति में बहुगुणा का एक विशेष स्थान बना दिया। लालबहादुर शास्त्री इस नौजवान की सक्रियता से बेहद प्रभावित हुए। बहुगुणा उत्तर प्रदेश कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष अलगुराय शास्त्री के भी चहेते बन गये।

कुछ ही दिनों बाद बहुगुणा को राजकुमारी अमृतकौर का पत्र मिला, जिसमें कहा गया था कि लालबहादुर शास्त्री चाहते हैं कि बहुगुणा हिमाचल प्रदेश जायें और वहाँ के चुनाव का संगठन करें।

बहुगुणा बड़े गर्व से यह कहते हैं, "परमार साहब (हिमाचल प्रदेश के भूत-पूर्व मुख्यमंत्री) मेरी खोज हैं।"

संगठन की उनकी क्षमता से प्रभावित होकर जवाहरलाल नेहरू ने 1952 के चुनाव में उन्हें विधान-सभा का टिकट दे दिया।

इन संघर्षों के बीच रोमांस भी चलता रहा। जेल जाने से पहले बहुगुणा को कमला से प्रेम हो गया था। वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के अध्यक्ष प्रोफ़ेसर आर० पी० त्रिपाठी की लड़की थी। पुलिस से बचने के लिए उन दिनों वे कभी-कभी कमला के यहाँ रहा करते थे। 1946 में दोनों की शादी हो गयी।

बहुगुणा गढ़वाल में एक पत्नी छोड़ आये थे। उस पत्नी से उनकी शादी तब हुई थी जब वह बहुत छोटे थे। कहा जाता है कि मुख्यमंत्री बनने के बाद एक दिन वह हैलीकॉप्टर से अपने गाँव गये, लेकिन उनकी पत्नी उस समय 'घास काटने गयी थी' और उसने बहुगुणा से मिलने से इंकार कर दिया।

दिल्ली व लखनऊ के ड्राइंग-रूमों में और दफ़्तरों में तरह-तरह की रंगीन कहानियाँ सुनायी देती हैं। इतनी स्त्रियों के नाम लिये जाते हैं कि लोगों के दिमाग़ों के उप-

जाऊपन की दाद देनी पड़ेगी। या फिर हो सकता है कि सत्ता में आने पर अपनी हर इच्छा पूरी करने के लिए सचमुच ही मौक़ा मिल जाता हो। कोई दफ़्तरों में काम करने वाली किसी सुन्दर लड़की का ज़िक्र करता है, तो कोई नैनीताल के डाक-बँगले में महिला-अध्यापकों से 'इंटरव्यू' का। हज़रतगंज में कुछ व्यापारी हर प्रकार की सुविधा की व्यवस्था कर देते हैं और लोग ऐसी जगहों पर आने-जाने का भी ज़िक्र करते हैं। विधान-सभा में एक नयी सदस्या आ गयी, जिसको सिर्फ़ इसलिए चुना गया था कि उन्होंने किसी पर बड़ी 'कृपा' की थी। इस तरह की कीचड़ बराबर उछाली जाती है।

इन प्रसंगों के बीच हलद्वानी की एक महिला अध्यापिका का ज़िक्र अक्सर आ जाता है। थोड़े ही समय के अंदर उस महिला के लिए एक काफ़ी बड़ा मकान तैयार हो गया और उसका क्लर्क पति एक ट्रक, एक बस तथा ज़मीन के एक विशाल प्लॉट के अलावा एक उद्योग का मालिक बन बैठा। उस औरत को अचानक एम० एल० सी० बना दिया गया और सैर के लिए श्रीलंका भेज दिया गया। और फिर अचानक 1977 में वह सी० एफ़० डी० की ओर से विधान-सभा के लिए उम्मीदवार बनकर चुनाव के मैदान में आ गयी। सी० एफ़० डी० के नेताओं ने अपनी बदनामी की परवाह न कर उसे जिताने के लिए एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया।

जनता लहर के बावजूद वह चुनाव हार गयी।

बहुगुणा के चहेते लोगों में उनके शिक्षा-मंत्री अम्मार रिज़वी थे। एक बार एक विधायक ने स्पीकर से कहा कि वह सदन में एक टेप सुनाना चाहता है, जिसमें कुछ ऐसी आवाज़ें हैं जो बहुत से राज़ खोल देंगी। स्पीकर ने वायदा किया कि वह अगले दिन इसकी अनुमति देंगे। लेकिन कहा जाता है कि इस बीच अम्मार रिज़वी ने मुख्यमंत्री को धमकी दी कि यदि टेप सुनाने की अनुमति दी गयी तो वह भी पर्दाफ़ाश कर देंगे। वह टेप कभी नहीं सुनाया जा सका।

ये सारी बातें संभवतः नेहरू की परंपराओं के अनुरूप ही हैं—यह बात और है कि इनका रूप विकृत हो गया है।

"जब तक मैं बहुगुणा को निकाल बाहर नहीं करूँगा तब तक लखनऊ में अपना चेहरा नहीं दिखाऊँगा।" यशपाल कपूर, कालटन होटल में बौखलाये हुए टहल रहे थे। उनके उम्मीदवार के० के० बिड़ला को राज्य-सभा के चुनाव में ज़बर्दस्त हार मिली थी। कपूर बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे कि जिस खेल में उनको महारत हासिल है उसमें बहुगुणा बाज़ी मार ले जाये।

मार्च 1974 में यशपाल कपूर ने लखनऊ पहुँचते ही मुख्यमंत्री बहुगुणा के सरकारी-निवास में अपना डेरा डाल दिया था। वहाँ विधायकों को ख़रीदने का पुराना खेल चलने लगा। बिड़ला निर्दलीय उम्मीदवार थे, लेकिन उन्हें इन्दिरा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त था। चूंकि मुख्यमंत्री के निवास से ही सारा काम हो रहा था, लोगों को लगा कि बहुगुणा भी इस उद्योगपति का समर्थन कर रहे हैं। उस समय बहुगुणा दिल्ली में थे। जब वह वापस लखनऊ पहुँचे तो उनके सचिवों ने बताया कि उनकी ग़ैर-हाज़िरी में यहाँ क्या होता रहा है—दिन-भर राजनीतिक दाँव-पेंच चलते हैं और रात में अय्याशी। बहुगुणा को एक अजनबी औरत के बारे में भी बताया गया जो उनके मकान में इस बीच आती-जाती देखी गयी थी। बहुगुणा आग-बबूला हो उठे। अतीत में यशपाल कपूर के साथ कई मामलों में

उनकी हिस्सेदारी रही है तो क्या हुआ ! अब तो वह मुख्यमंत्री थे, उनके अपने कुछ अधिकार थे। उन्हें मुख्यमंत्री-निवास की 'पवित्रता' की रक्षा करनी थी।

उन्होंने यशपाल कपूर का सामान घर से बाहर फेंक देने का आदेश दिया। कपूर वहाँ से क्लार्क्स अवध होटल चले गये। तब तक उनके संरक्षक के० के० बिड़ला भी अपने दलबल-सहित कार्लटन होटल पहुँच चुके थे, जहाँ राजनारायण के समर्थकों ने उनका घेराव कर दिया था। राजनारायण भी राज्य-सभा की सीट के उम्मीदवार थे।

यशपाल कपूर ने बिड़ला के लिए बहुगुणा की मदद चाही और उन्होंने कहा, "इन्दिराजी चाहती हैं कि बिड़ला जीत जायें।" बिगड़कर बहुगुणा ने कहा, "इन्दिराजी ख़ुद मुझसे कहें तो जानूँ।" मतदान से तीन दिन पूर्व कांग्रेस के 51 संसद-सदस्यों ने दिल्ली से एक वक्तव्य जारी कर इस बात पर खेद प्रकट किया कि काले धन की मदद से राजनीति को नियंत्रित करने की कोशिश की जा रही है। अपने वक्तव्य में उन्होने बिड़ला को 'करारी' हार देने की माँग की। यशपाल कपूर को इसमें तनिक भी संदेह नहीं था कि यह वक्तव्य बहुगुणा ने दिलवाया था, क्योंकि वह उस दिन दिल्ली में ही थे। वक्तव्य जारी होने के दूसरे दिन उत्तर प्रदेश विधान-सभा में चौधरी चरणसिंह की बी० के० डी० के दो सदस्यों द्वारा पेश किये गये विशेषाधिकार प्रस्ताव पर बहस के दौरान हस्तक्षेप करते हुए मुख्य-मंत्री बहुगुणा ने सदन को बताया कि के० के० बिड़ला की उम्मीदवारी से उनकी पार्टी को कुछ लेना-देना नहीं है। उन्होंने यह भी उम्मीद ज़ाहिर की कि इस उद्योगपति को एक 'धक्का' लगेगा।

यशपाल कपूर ने ग़ुस्से में कहा, "बहुगुणा को सत्ता का नशा चढ़ गया है।" तीनमूर्ति-भवन के इस भूतपूर्व हिन्दी-टाइपिस्ट ने अनेक राज्यों में मुख्यमंत्रियों को बनाया और बिगाड़ा है। बहुगुणा की यह हरकत बर्दाश्त के बाहर थी। लेकिन प्रधानमंत्री से अपने संबंधों के बारे में बहुगुणा की कुछ और ही राय थी। बाद में उन्होंने कहा, 'जो कुछ हो रहा था मुझे उस पर बुनियादी एतराज़ था। मैंने इन्दिराजी के साथ ताश खेले हैं और आज अचानक उनके अर्दलियों और क्लर्कों की यह हिम्मत कि मुझ पर रौब डालें ! मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सका। मैं उनकी शराब, औरत और विलासिता का विरोधी था...।"

लेकिन इन्दिरा को अपने 'अर्दलियों और क्लर्कों' पर ज्यादा यक़ीन था। बहुगुणा को मुख्यमंत्री बनाकर भेजते ही उन्होंने चेन्ना रेड्डी को उत्तर प्रदेश का राज्यपाल नियुक्त किया, हालाँकि राज्यपाल अकबर अली खाँ का कार्यकाल अभी समाप्त भी नहीं हुआ था। बहुगुणा को पूरा यक़ीन था कि यह इसलिए किया गया कि अकबर अली से उनके सम्बन्ध अच्छे थे। इन्दिरा गांधी राज्य में कोई 'अपना आदमी' रखना चाहती थीं। एक राजनीतिक प्रेक्षक ने ठीक ही कहा कि उन्होंने "एक चालबाज़ पर जासूसी करने के लिए दूसरे चालबाज़ को तैनात कर दिया।" तेलंगाना पृथकतावादी आंदोलन के भूतपूर्व नेता चेन्ना रेड्डी सत्ता का केन्द्र-बिंदु बनने लगे। उन्होंने राज्य के और केन्द्र के ख़ुफ़िया विभाग के अफ़सरों को आदेश दिया कि वे उनके पास अपनी रिपोर्टें भेजा करें। यहाँ तक कि उन्होंने कुछ राज्य-अधिकारियों को भी आदेश देने शुरू कर दिये।

लखनऊ पहुँचने के कुछ ही दिन बाद चेन्ना रेड्डी ने अख़बारों के ज़रिये यह घोषणा की कि राजभवन के अहाते में वह एक गणेश-मंदिर बनवायेंगे। मंदिर की ईंट वैदिक मंत्रों के पाठ के बाद रखी जानी थी। बहुगुणा ने इस प्रस्ताव का विरोध

किया और राज्यपाल से कहा कि इससे एक 'ग़लत मिसाल' क़ायम होगी, क्योंकि कल को अगर कोई मुसलमान राज्यपाल आयेगा तो वह राजभवन के अंदर मस्जिद बनवायेगा और अगर कोई ईसाई राज्यपाल आया तो गिरजाघर बनवाने लगेगा।

मंदिर की योजना धूल में मिल गयी और चेन्ना रेड्डी बिफर गये। वह खुले आम बहुगुणा-विरोधी हो गये और उनसे मिलने विधायक जाते तो वह कहते, "मुझे पता है, आप बहुगुणा के आदमी हैं।" उन्होंने मुख्यमंत्री के प्रति अपने रवैये को छिपाने की कोई ज़रूरत नहीं समझी।

राज्यपाल ने अपने मुलाक़ातियों से एक बार कहा, "मुझे पता है कि बहुगुणा राज्य में अपना व्यक्तिगत साम्राज्य बनाना चाहता है।"

प्रदेश कांग्रेस कमेटी को बहुगुणा के ख़िलाफ़ बनाने के भी प्रयास किये जाने लगे। सबसे पहले बी० एन० कुरील को प्रदेश कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया, लेकिन वह बहुगुणा से नहीं लड़े तो उन्हें हटाकर एक 'लड़ाकू' आदमी यानी लक्ष्मीशंकर यादव को बनाया गया। फिर उन्हें भी हटा दिया गया और मोहसिना किदवई को कांग्रेस-अध्यक्षा बनाया गया। लखनऊ में आये दिन बहुगुणा-विरोधी चाय-पार्टियाँ होने लगीं। इस तरह की पार्टियाँ कभी लक्ष्मीशंकर यादव देते तो कभी भूतपूर्व 'तिलक-धारी' मुख्यमंत्री के पुत्र लोकपति त्रिपाठी। इन पार्टियों में यशपाल कपूर भी मौजूद होते, जिन्होंने बहुगुणा को निकाल बाहर करने की क़सम खायी थी।

लेकिन इन विरोधियों को एक झटका तब लगा जब इन्दिरा गांधी ने बहुगुणा-दम्पत्ति को पारिवारिक मेलजोल के लिए आनंद-भवन में निमंत्रित किया। कुछ लोगों ने समझा कि इन्दिरा गांधी अब बहुगुणा से मेल करने की कोशिश में हैं, लेकिन औरों का कहना था कि इन्दिरा गांधी इस तरह की हरकतें करके ही अपनी अगली चाल के बारे में लोगों को असमंजस में रखती हैं।

इन्दिरा गांधी के खिलाफ़ इलाहाबाद हाई-कोर्ट के फ़ैसले से बहुगुणा-विरोधियों को अपनी योजनाओं के लिए बहुत बड़ा मौक़ा मिला। उन्होंने कहा कि यह आदमी ग़द्दार है। इसने जज के साथ साँठ-गाँठ कर ली है। कहा गया कि बहुगुणा ने 12 जून 1975 के फ़ैसले के महज़ एक हफ़्ते पूर्व एक पार्टी में कहा था, "अरे, वह तो अब छह साल के लिए जा रही हैं। कपूर मुझे यह कहकर बदनाम कर रहा है कि जज से मिलकर मैंने इन्दिराजी को ख़त्म किया है—कपूर को तो मैं ख़त्म करूँगा।"[2]

उस समय तक बहुगुणा ने सोच लिया था कि वह अपने-आप में इतने मज़बूत हो चुके हैं कि कोई उन्हें हिला नहीं सकता। उन्होंने सोचा था कि उत्तर प्रदेश में उन्होंने बहुत मज़बूत आधार तैयार कर लिया है। नवाबों-बेगमों से लेकर सबसे निचले तबक़े के मुसलमानों तक के बीच वह बहुत लोकप्रिय थे। उर्दू बोलने में उन्हें महारत हासिल थी और मुस्लिम श्रोताओं के बीच भाषण करते समय बीच-बीच में वह शेरोशायरी भी करते रहते थे। उनके आलोचकों का कहना है कि बहुगुणा अपने जन-संपर्क विभाग के मुसलमान अफ़सरों से उर्दू में भाषण लिखवाते थे। बहुगुणा के एक भूतपूर्व अधिकारी ने बताया कि "वह उन भाषणों का देवनागरी लिपि में रूपांतरण करते थे और फिर उसे रट लेते थे।" इसमें कोई शक नहीं कि इस तरह की मेहनत बहुगुणा कर सकते थे। जिन दिनों वह आई० सी० एस० अफ़सर बनने के लिए अपनी अँग्रेज़ी सुधारने में लगे थे, उन्होंने पट्टाभि

सीतारमैया की उस मोटी पुस्तक हिस्टरी ऑफ़ कांग्रेस का हिन्दी में अनुवाद किया और उस हिन्दी का फिर अँग्रेज़ी में अनुवाद किया। उसके बाद उन्होंने मूल पुस्तक से अपना अनुवाद मिलाया।

चाहे रटकर बोलते हों या विना रटे, उनकी सुमधुर उर्दू से मुसलमानों के बीच उनके कई प्रशंसक पैदा हो गये। जन-संपर्क में माहिर वहुगुणा मुसलमानों के मकानों में जाते, उनके साथ बैठकर खाना खाते और उनके जलसों आदि में भाग लेना कभी न भूलते।

मुसलमानों के वीच वह इस हद तक पसंद किये जाने लगे कि उत्तर प्रदेश की एक खूबसूरत वेगम ने उन्हें वहुमूल्य अँगूठी भेंट की और एक बार जव वे वीमार पड़ गये तो उनके स्वास्थ्य की कामना करते हुए उस वेगम ने काफ़ी रक़म दान में दे दी।

उनके मुख्यमंत्री-काल की एक विशिष्ट घटना मुस्लिम-शिक्षा के वारे में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन को दिया गया ज़बर्दस्त समर्थन है। यह सम्मेलन मुस्लिम उलेमा को प्रशिक्षण देने वाले विख्यात केन्द्र नदवा द्वारा आयोजित किया गया था। इसमें मुस्लिम-जगत की वहुत वड़ी-वड़ी शैक्षणिक और धार्मिक हस्तियों ने भाग लिया। इनमें काहिरा के अल अज़हर विश्वविद्यालय के मशहूर रेक्टर भी शामिल थे। इस समारोह में वहुगुणा छाये रहे और वह जिससे मिलते उस पर फ़ौरन ही अपना प्रभाव डाल देते। फ़िलिस्तीनी मुक्ति संगठन के एक भूतपूर्व डाइरेक्टर ने लखनऊ के एक पत्रकार को वताया कि यह सम्मेलन पहले ताईवान में सी० आई० ए० से सम्वद्ध कुछ एजेंसियों द्वारा आयोजित किया गया था।

वहुगुणा वाहर की दुनिया के लोगों से सम्वन्ध क़ायम करना नहीं भूले। सोवियत रूस के साथ सीधे सम्वन्ध के महत्व को समझते हुए उन्होंने दिल्ली-स्थित रूसी राजदूत को आग्रह करके लखनऊ वुलाया और एक शानदार दावत दी। रूसी राजदूत ने भारतीय जनता का महान नेता कहकर वहुगुणा का अभि-वादन किया और रूसियों को यह कहते सुना जाने लगा कि वहुगुणा "भारत के भावी प्रधानमंत्री हैं।"

रूसी राजदूत के इस 'सर्टिफ़िकेट' की वजह से और भारत-सोवियत सांस्कृतिक समिति के जमावड़े में उत्साह के साथ शामिल होने की वजह से, वहुगुणा को उत्तर प्रदेश तथा अन्य स्थानों की सी० पी० आई० का भी समर्थन मिल गया।

लेकिन वुद्धिमान लोग सारे अंडे एक ही डोलची में नहीं रखते। उन्होंने अमेरिकियों के साथ भी संवंध वनाये रखे।

"राजनीतिक कारीगर" के रूप में उनकी ख्याति वढ़ने से उनके प्रति इन्दिरा गांधी का संदेह और भी वढ़ गया। जब वहुगुणा को विश्वास हो गया कि उन पर हमला किया जायेगा तो वह परेशान हो गये और उन सवसे मिलते रहे, जिनके वारे में उन्हें पता था कि वे इन्दिरा गांधी को समझा-वुझाकर मना लेंगे। उन्होंने रजनी पटेल और मोहम्मद युनुस से भी मुलाक़ात की, लेकिन वे किसी तरह की मदद देने में असमर्थ थे। निराश होकर वहुगुणा ने अपने आत्म-सम्मान को भी किनारे फेंक दिया और संजय गांधी से मिलने मारुति कारखाने तक गये। उस समय तक संजय की ताक़त का एहसास उन्हें हो चुका था। लेकिन संजय ने मिलने से इंकार कर दिया और निराश होकर वह वापस चले आये।

वहुगुणा अपने पद से वड़ी इज़्ज़त के साथ हट गये। कुछ ही घंटों के अंदर वह मुख्यमंत्री-निवास से अपना सामान लेकर विधायकों के लिए वने दो कमरे वाले

फ़्लैट में आ गये। लेकिन इसके वाद जो उनको वेइज़्ज़त करने का सिलसिला शुरू हुआ है तो इंतहा नहीं रही। दिल्ली के सत्ताधारियों को पता था कि लखनऊ के अखवारों को वहुगुणा का काफ़ी संरक्षण मिलता रहा है। फ़ौरन ही अखबारों को यह निर्देश दिया गया कि "वहुगुणा के बारे में हर समाचार को पहले सैंसर किया जाना चाहिए। केवल तथ्यपरक ख़वरों को ही प्रकाशित करने की ज़रूरत है।" समाचार-जगत के लिए इतना इशारा काफ़ी था। अखवारों से वहुगुणा का नाम एकदम ग़ायव हो गया।

इलाहावाद ज़िला कांग्रेस कमेटी को भंग कर दिया गया—इसकी अध्यक्षा कमला वहुगुणा थीं। स्वयं वहुगुणा को उत्तर प्रदेश कांग्रेस कार्यकारिणी और कांग्रेस संसदीय वोर्ड से हटा दिया गया।

जव उनकी इकलौती वेटी की शादी हुई तो अधिकांश कांग्रेसियों ने कोई-न-कोई वहाना करके अपने को समारोह से अलग रखना ही मुनासिव समझा। उन्हें डर था कि अगर शादी के समारोह में उन लोगों ने भाग लिया तो संजय गांधी व उनके साथी नाराज़ हो जायेंगे। कुछ लोगों को उस समारोह की भी याद आ रही थी जव वहुगुणा के वेटे की इलाहावाद में शादी थी और वहुत शानदार इंतज़ाम किया गया था। उन दिनों वहुगुणा सत्ता में थे। इन्दिरा गांधी तथा सरकार के सभी वरिष्ठ लोग इस समारोह में शामिल हुए थे। शादी के इंतज़ाम की देखभाल के लिए वड़े-वड़े उद्योगपतियों और उत्तर प्रदेश के चीनी मिल-मालिकों ने अपने वड़े अफ़सरों को तैनात कर रखा था। वताया जाता है कि हीरों के नेकलेस सहित वेशक़ीमती उपहार मिले थे। यह एक अविस्मरणीय शादी थी, लेकिन अव हालत एकदम दूसरी थी। लड़की की शादी का समारोह विलकुल फीका रहा।

कुंभ-मेले के अवसर पर इन्दिरा गांधी इलाहावाद गयी थीं। हवाई अड्डे पर स्वागत के लिए वहुगुणा अपनी पत्नी के साथ गये, लेकिन इन्दिरा गांधी ने उनकी तरफ़ इस तरह देखा, गोया पहचान भी न पा रही हों और आगे वढ़ गयीं। वहाँ मौजूद सवने महसूस किया कि वहुगुणा-परिवार को जान-वूझकर वेइज़्ज़त किया गया है।

दिसम्वर 1976 में वहुगुणा के जिगरी दोस्त और समर्थक वच्चा पांडे को विना किसी उचित कारण के मीसा के तहत गिरफ़्तार कर लिया गया। उस समय वहुगुणा दिल्ली में थे। अपने दोस्त की गिरफ़्तारी की ख़वर सुनकर वह रो पड़े, लेकिन वह एकदम लाचार थे। उनके वस में कुछ भी नहीं था। फिर भी लखनऊ वापस पहुँचने पर उन्होंने अपने उत्तराधिकारी नारायणदत्त तिवारी से भेंट की और अपने दोस्त की रिहाई के लिए अनुरोध किया। लेकिन तिवारी ने वड़ी विनम्रता के साथ इंकार कर दिया।

इन सारे अपमानों के वावजूद जव इन्दिरा गांधी ने लोक-सभा के चुनाव की घोषणा की तो वहुगुणा ने एक वधाई का तार भेजा और अपनी सेवाएँ पेश कीं।

20 जनवरी 1977 को वहुगुणा दिल्ली पहुँचे, और एक सप्ताह तक उन्होंने इन्दिरा गांधी से मिलने की "26 वार" कोशिश की, लेकिन असफल रहे। आख़िरकार उन्होंने अपनी पत्नी कमला वहुगुणा को प्रधानमंत्री से मिलने भेजा। वड़ी मुश्किल से इन्दिरा गांधी से कमला की मुलाक़ात हुई, लेकिन इस मुलाक़ात में इन्दिरा गांधी ने वस यही कहा, "मैं वहुगुणा का चेहरा दोवारा कभी नहीं देखना चाहती।"

बहुगुणा के सामने अब कोई रास्ता नहीं था। उन्होंने अंतिम तौर पर फ़ैसला कर लिया कि उनके और इन्दिरा गांधी के बीच किसी तरह की बातचीत नहीं हो सकती। फिर उन्होंने जगजीवनराम को कांग्रेस से अलग करने की अपनी कोशिशें शुरू कीं। वह जानते थे कि इस काम को बहुत ही गुप्त ढंग से करने की ज़रूरत है। बड़ी कुशलता से उन्होंने यह ख़बर फैला दी कि वह यू० पी०-निवास में बीमार होकर पड़े हैं। अनेक डॉक्टर आये और गये, जिससे लोगों को लगा कि बहुगुणा बहुत बुरी तरह बीमार हैं। रात में वह मैले धोती-कुर्ता पहनकर और कम्बल ओढ़कर गुप्त रूप से जगजीवनराम के निवास-स्थान, 6 कृष्ण मेनन मार्ग पर पहुँचते। यह सिलसिला कई दिनों तक जारी रहा। कभी वह जगजीवनराम से मिलते, तो कभी उनकी पत्नी से और कभी उनके लड़के सुरेशराम से। अपने उसी भेष में वह इमाम से मिलने जामा मस्जिद जाते। सी० एफ़० डी०-जनता की ओर से मुस्लिमों के वोट पाने में इमाम की महत्वपूर्ण भूमिका से आज सभी परिचित हैं।

जगजीवनराम और बहुगुणा का गुट अंततः सामने आ ही गया—इन्दिरा गांधी को बहुत पहले से जगजीवनराम-बहुगुणा गँठजोड़ की आशंका थी। लेकिन जगजीवनराम, बहुगुणा और उनके अन्य सहयोगी खुद को जनता पार्टी में झोंकना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे इसे विभिन्न दलों का एक ऐसा संगम मानते थे जो अधिक समय तक नहीं चल सकता। 2 फ़रवरी 1977 को बहुगुणा ने ज़ोर देकर कहा, "हमारी कांग्रेस ही असली कांग्रेस है।" कांग्रेस फ़ॉर डेमोक्रेसी के पहले बयान का मसौदा उन्होंने ही तैयार किया था। इसमें कहा गया था, "हमारा उद्देश्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सर्वोच्च परंपराओं की रक्षा करना है।"

1 मई 1977 तक, जब जगजीवनराम ने सी० एफ़० डी० को जनता पार्टी के साथ मिलने का "एकतरफ़ा" फ़ैसला किया, बहुगुणा लगातार यह कहते रहे थे कि सी० एफ़० डी० को अपना अस्तित्व अलग बनाये रखना चाहिए। पार्टी की यू० पी० यूनिट ने, जो निश्चय ही बहुगुणा के विचारों का प्रतिनिधित्व करती है, इस विलय के विरुद्ध सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव भी पास कर दिया।

जगजीवनराम के फ़ैसले से बहुगुणा को बहुत क्षोभ हुआ। लेकिन चीं-चपड़ करने के बाद उन्होंने उस फ़ैसले को स्वीकार किया। उनके लिए यह एक अस्थायी गँठजोड़ है—उनकी वहाँ जगह नहीं है।

टिप्पणियाँ

1. लेखक के साथ हेमवतीनंदन बहुगुणा की बातचीत।
2. उमा वासुदेव की पुस्तक टू फ़ेसेज़ ऑफ़ इन्दिरा गांधी में उद्धृत।

6

राजनारायण—"अखाड़ा राजनीति"

चौधरी चरणसिंह फ़ोन को पाकर हैरान भी थे और खुश भी। फ़ोन ऐसे आदमी ने किया था जिसकी आवाज़ सुनने की उन्हें उम्मीद नहीं थी। उन दिनों यह सोचा भी नहीं जा सकता था कि राजनारायण उनको फ़ोन करेंगे। इससे भी बड़ी बात यह थी कि उनकी आवाज़ काफ़ी बदली हुई लग रही थी, बहुत मुलायम और खुशामदाना!

"आप कब से मेरे ख़ादिम हो गये?" चरणसिंह ने व्यंग्य-भरे लहजे में कहा, "हाँ, मिलना चाहते हैं तो ज़रूर आइये, आपको कौन रोक सकता है?"

चरणसिंह और उनके साथ बैठे उनकी पार्टी के एक सदस्य के लिए यह बड़े आश्चर्य का विषय था। राजनारायण अपने-आपको चरणसिंह का खादिम कहें! यह अपने-आप में एक खबर थी। वर्षों से राजनारायण चरणसिंह की निंदा करते आ रहे थे। सबसे पहले उन्होंने ही बी० के० डी० के इस नेता को 'चेयर सिंह' कहा था और उनका मज़ाक उड़ाया था। सी० बी० गुप्ता के इस ढोलकिये ने अचानक कैसे रंग बदल लिया? उन लोगों ने ग़ौर किया कि फ़ोन करने के पीछे राजनारायण का क्या मक़सद हो सकता है। राज्य-सभा के चुनाव (1974) नज़दीक थे और एक उद्योगपति के० के० बिड़ला के ख़िलाफ़ राजनारायण चुनाव लड़ रहे थे। बिड़ला को इन्दिरा गांधी का आशीर्वाद प्राप्त था और विधायकों को ख़रीदने के लिए उनके पास अपार धन था। इसके अलावा यशपाल कपूर-जैसा व्यक्ति उनके चुनाव का संचालन कर रहा था। चरणसिंह ने सोचा कि फ़ोन करने की यही वजह होगी।

और सचमुच यही वजह थी। दो वर्ष पूर्व राजनारायण को अपमानित करके सोशलिस्ट पार्टी से निकाला गया था और उनके गुट में जो लोग बच रहे थे उनका महत्व इतना ही रह गया था कि कुछ गुलगपाड़ा कर सकते थे। हमेशा से राजनारायण के दो ही आदर्श रहे हैं—हनुमान और लक्ष्मण। दोनों सेवक थे। वह खुद नेता बनने में यक़ीन नहीं रखते थे। उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत लोहिया के सबसे बड़े सेवक के रूप में शुरू की थी। लोहिया की मृत्यु के

बाद राजनारायण सी० बी० गुप्ता के सेवक हो गये, जो लोहिया से सबसे ज्यादा नफ़रत करते थे। कुछ लोगों का तो यह भी कहना है कि राजनारायण ने अपने गुरु के जीवन-काल में ही सी० बी० गुप्ता के साथ चुपके-चुपके संबंध बना लिया था। लेकिन गुप्ता को खुद ही 1974 के विधान-सभा-चुनाव में पराजय का सामना करना पड़ा था। और अब नाटे क़द का वह राजनीतिज्ञ पान दरीबा-स्थित अपने मकान में बैठकर घावों को सहला रहा था और हैरान हो रहा था कि धूर्त बहुगुणा ने उसके साथ कौन-सी चाल चली थी। सी० बी० गुप्ता अब राजनीति में हिस्सा लेने के मूड में नहीं थे—कम-से-कम फ़िलहाल वह राजनीति से अपने को अलग रखना चाहते थे। अब वह राजनारायण पर भी पैसा खर्च करने के मूड में नहीं थे। बहुत हो चुका। बेचारा राजनारायण बुरी तरह से किसी नये गुरु की तलाश में था और वह किसी ऐसे आदमी को ढूंढ रहा था जो गुप्ता से नफ़रत करता हो। चरणसिंह अगर धनी किसानों के नेता हैं तो क्या फ़र्क़ पड़ता है! क्या राजनारायण उनसे भिन्न हैं? वह बनारस राज्य के संस्थापक बलवंतसिंह के साथ अपनी वंशावली जोड़ते हैं और जहाँ तक समाजवाद का प्रश्न है वह तो लोहिया के साथ ही आया और चला गया। अक्सर उनके दोस्त उनसे पूछ बैठते हैं, "आपका समाजवाद 'हनुमान चालीसा' में से कैसे निकला?" बचपन से ही वह अपनी दादी के परम भक्त रहे हैं, जिन्होंने उन्हें उस उम्र में ही 'रामायण' के दोहे रटा दिये थे। तब उन दोहों का अर्थ भी उन्हें नहीं मालूम था। बाद में राममनोहर लोहिया के चरणों में पड़े-पड़े उन्होंने अपने गुरु के सारे नेहरू-विरोधी और राजवंश-विरोधी नारों को तोते की तरह रट लिया। इन नारों से उन्हें उस समय अपने-आपको छिपाने में बड़ी मदद मिलती थी जब वे जयपुरिया और मोदी तथा मोहननगर के शराब-व्यापारियों के साथ छिपे तौर पर लेन-देन कर रहे होते थे। अंततः राजनारायण ने सही गुरु की तलाश कर ली—इस गुरु के पास पृथ्वीनाथ सेठ और मोहनसिंह ओबेराय-जैसे लोग थे। राजनारायण के लिए वही बिलकुल ठीक जगह थी।

फिर भी चरणसिंह हिचकिचाहट में पड़े रहे। वह भूल नहीं पाते थे कि राजनारायण की ही वजह से पहली बार मुख्यमंत्री-पद उनके हाथ से निकल गया। वह यह भी नहीं भूल पाते थे कि राजनारायण दिन-रात उनके ख़िलाफ़ ज़हर उगलने में लगे थे। 1969 के मध्यावधि चुनाव के अवसर पर राजनारायण ने एक पुस्तिका में लिखा—"श्री चरणसिंह का कांग्रेस की नीति से कोई मतभेद नहीं था। जो भी मतभेद थे वे व्यक्तिगत थे...हम लोग बराबर चरणसिंह से कहा करते थे कि कांग्रेस-रूपी रावण को खत्म करने के लिए उन्हें विभीषण की भूमिका निभानी चाहिए...वह अपने प्रतिक्रियावादी विचारों और कार्यों को नहीं छोड़ सके, क्योंकि लगभग बीस वर्ष तक वह कांग्रेस सरकार में मंत्री रह चुके थे। उन्होंने संविद सरकार में शामिल विभिन्न घटकों को एक-दूसरे के ख़िलाफ़ खड़ा करने की नापाक कोशिशें कीं!...चरणसिंह ने चंदे के रूप में काफ़ी बड़ी रक़म भी जुटानी शुरू कर दी।"

तभी राजनारायण के मित्र अर्जुनसिंह भदौरिया और रामनरेश कुशवाहा ने भी—जो उस समय संसोपा के क्रमशः अध्यक्ष और महामंत्री थे—चरणसिंह पर सीधा प्रहार किया—"हमने चौधरी चरणसिंह को इसलिए मुख्यमंत्री नहीं बनाया कि वह एक कुशल प्रसासक और ईमानदार आदमी थे। चरणसिंह की बजाय कोई भी आदमी अगर कांग्रेस से सोलह विधायकों को बाहर लाकर संविद में

शामिल हो जाता तो हम उसको मुख्यमंत्री बना देते...कांग्रेस से अलग होने के बाद चौधरी साहब ने एलान किया कि कांग्रेस बेईमान लोगों का एक ग्रुप है लेकिन चौधरी साहब का चरित्र उनके कार्यों से ही सामने आ जाता है।...उन्होंने मोदीनगर के एक करोड़पति पूँजीपति को 'पद्मश्री' दिलायी...वह गांधीजी के नाम पर नशाबंदी का बहुत ढोल पीटते हैं, लेकिन इन्हीं चौधरी साहब ने अपने मुख्यमंत्री के कार्यकाल में शराब-करख़ानों के मालिकों को बढ़ावा दिया। जिन दिनों वह मुख्यमंत्री थे, उन्होंने अपनी पार्टी के लिए लाखों रुपये इकट्ठे किये, लेकिन यह सारा पैसा पार्टी-कोष में नहीं जमा किया गया...चौधरी साहब किसी भी कांग्रेसी से कम नहीं हैं...।"

चरणसिंह अपने ख़िलाफ़ किये गये इन हमलों को भूल नहीं पाते हैं, लेकिन उन्होंने सोचा कि राजनारायण सी० बी० गुप्ता के हाथ का एक खिलौना-भर है और जब वह उनके सामने दण्डवत करने के लिए तैयार है तो क्यों न उसका इस्तेमाल किया जाये ? इन्दिरा गांधी और कांग्रेस इस समय ज़्यादा बड़े दुश्मन हैं और उनसे पहले निपटना ज़्यादा ज़रूरी है। के० के० बिड़ला की हार इन्दिरा गांधी की हार होगी। यह सोचकर चरणसिंह खुश हो रहे थे और उनको यह आशा भी हुई कि उत्तर प्रदेश की राजनीति में वापस आने का उनका सपना पूरा हो सकता है। उन्होंने अपनी पार्टी को निर्देश दिया कि राज्य-सभा के चुनाव में वह राजनारायण का समर्थन करे। इस प्रकार उन्हें एक सेवक मिल गया।

कुछ लोग जन्म से ही राजनीतिज्ञ होते हैं, कुछ राजनीतिज्ञ बनते हैं और कुछ के ऊपर राजनीति थोप दी जाती है। राजनारायण अंतिम क़िस्म के लोगों में से हैं। बनारस में अपने अखाड़े पर उन्हें बहुत गर्व था और आज भी वह डींग हाँकते नहीं थकते कि अगर उन्होंने कुश्ती नहीं छोड़ी होती तो आज एक "बहुत बड़े पहलवान" होते। 1930 वाले दशक के बाद के वर्षों में बनारस छात्र-आंदोलन का केन्द्र हो गया था और कम्युनिस्ट एक मज़बूत ताक़त के रूप में उभर कर आ गये थे। कम्युनिस्ट-विरोधी कांग्रेसी नेता किसी ऐसे 'दबंग छात्र' की तलाश में थे जो पहलवान भी हो। उनके लिए अखाड़ेबाज़ राजनारायण वरदान साबित हुए। उन्हें नेता बना दिया गया, लेकिन राजनीति को उन्होंने अपने अखाड़े के मैदान से ज़्यादा नहीं समझा। चाहे यह मज़दूर-आंदोलन हो या किसान-आंदोलन, उनकी शैली और तरीक़ा हमेशा अखाड़े वाला ही तरीक़ा रहा—"दाव, पेंच, लंगी, मुक्का।"[1]

जून 1970 में राजनारायण सोनपुर (बिहार) में संसोपा के अधिवेशन में गये और साथ में गुंडों का एक गिरोह लेते गये। इसके नेता थे लखनऊ विश्वविद्यालय के भूतपूर्व छात्र-नेता सत्यदेव त्रिपाठी, जो आजकल उत्तर प्रदेश में मंत्री हैं। कानपुर के एक तथाकथित मज़दूर-नेता भी हैं, जिनका संपर्क बदमाशों और सी० आई० ए० दोनों से है। वह भी एक बस में हट्टे-कट्टे लोगों को भरकर सोनपुर ले गये, ताकि ज़रूरत पड़ने पर शारीरिक बल का प्रयोग किया जा सके। उन दिनों पार्टी में अपने साथियों से राजनारायण की लड़ाई चल रही थी और यह सारी तैयारी राजनारायण का सिक्का जमाने के लिए की गयी थी। कांग्रेस संगठन के हाथों, बल्कि सी० बी० गुप्ता के हाथों, सोशलिस्टों को बेच देने के काम में राजनारायण ने कुछ उठा नहीं रखा। सम्मेलन में जैसे ही उनकी पार्टी के कुछ सदस्यों ने उन पर गुप्ता का 'एजेंट' होने का आरोप लगाया, उत्तर प्रदेश से वहाँ

पहुँची भीड़ ने ज़ोर-शोर से नारे लगाने शुरू कर दिये—"जो राजनारायण से टकरायेगा, चूर-चूर हो जायेगा।" सम्मेलन के मुख्य संयोजक ख़ुद ही बिहार के मिनी राजनारायण थे। इनका नाम था भोलाप्रसाद सिंह, जिनके नाम के साथ कई कांड जुड़े हुए हैं। सम्मेलन में भाग लेने वालों के मेज़बान थे भूतपूर्व ज़मींदार, जो अब ठेकेदारी करते थे और पास में ही एक होटल चलाते थे। इस होटल के साथ भी अजीबोग़रीब क़िस्से जुड़े हुए हैं। 'समाजवादी आंदोलन' के शुभचिंतकों को बड़े भोलेपन से यह कहते सुना जा सकता था, "इन सोशलिस्टों को क्या हो गया है!"

कुछ महीनों बाद एक अनोखा दृश्य देखने को मिला। 1970 में उत्तर प्रदेश विधान-सभा के शीतकालीन अधिवेशन में संसोपा, सिंडीकेट कांग्रेस और जन संघ के सदस्य जो इससे पहले के अधिवेशन में विपक्ष की बेंच पर बैठते थे अब बी० के० डी० के साथ ट्रेज़री बेंच पर बैठे हुए थे। सिंडीकेट कांग्रेस के सदस्य कृष्णानंद राय, जिन्होंने चरणसिंह को कभी "बेईमान और झूठा आदमी" के सिवा कुछ नहीं कहा, और संसोपा के अनंतराम जायसवाल, जो हमेशा चौधरी को "जनतंत्र का दुश्मन" कहते थे, आज बी० के० डी० के अध्यक्ष से सटकर बैठे हुए थे। चरणसिंह और सी० बी० गुप्ता को बग़लगीर देखकर ऐसा लगता था जैसे इनकी बड़ी पुरानी दोस्ती है।

सत्ता के ये नये हिस्सेदार सदन में उन्हीं क़ानूनों की दुहाई दे रहे थे, जिनको यह पहले "ग़ैर-जनतांत्रिक और तानाशाहीपूर्ण" कहा करते थे। और "लोकप्रिय जनतांत्रिक आंदोलनों के महारथी" राजनारायण समाजवादी युव-जन सभा के अपने साथियों को डाँटने में लगे थे, क्योंकि वे लोग उसी विश्वविद्यालय (संशोधन) अध्यादेश के ख़िलाफ़ आंदोलन की कोशिश कर रहे थे, जिसे कभी राजनारायण ने "काला क़ानून" कहा था। युव-जन सभा के नेता सत्यदेव त्रिपाठी, मुख्तार अनीस, जितेन्द्र अग्निहोत्री तथा अन्य लोगों पर गरजते हुए राजनारायण बोले, "तुम लोग इन्दिरा गांधी के एजेंट हो।"

एक नौजवान ने पलट कर जवाब दिया, "तुम सी० बी० गुप्ता के एजेंट हो।"

राजनारायण के समाजवादी चोले को हटाकर अगर कोई देखने की कोशिश करे तो उसे असलियत का पता चल सकता है। हवाई जहाज़ से उनके आने-जाने का ख़र्च, टेलीफ़ोन के प्रति उनका अतिरिक्त लगाव और दारुलशफ़ा (लखनऊ में विधायकों का निवास-स्थान) में उनके ज़िगरी दोस्तों का ख़र्च—इन सब पर मिलाकर उन दिनों राजनारायण कम-से-कम दस हज़ार रुपया महीना ख़र्च करते थे। सबको पता था कि जिस फ़िएट कार में वह दिन-रात घूमते रहते हैं, सी० बी० गुप्ता ने दी है। सिंडीकेट के इस नेता ने राजनारायण के अख़बार जनमुख को भी कई लाख रुपये देने का वायदा किया था। इसके अलावा उद्योगपतियों और शराब-व्यापारियों तथा राजनीतिक समर्थकों के लिए शराब के लाइसेंस और कोल्डस्टोरेज बनवाने के परमिट का इंतज़ाम करने में भी फ़ायदा-ही-फ़ायदा था। "दारुलशफ़ा में उनके व्यक्तिगत स्टाफ़ में एक रसोईया, कुछ नौकर, मालिश करने के लिए एक तगड़ा आदमी, एक हिंदी टाइपिस्ट, एक हिंदी ड्राफ़्ट्समैन, एक अँग्रेज़ी टाइपिस्ट (जी हाँ, अँग्रेज़ी टाइपिस्ट), और नियमित आने-जाने वाले कुछ लोग शामिल थे। इसके अलावा महीने में कम-से-कम दस बार वह हवाई जहाज़ से सफ़र करते थे। चार सौ से पाँच सौ लिटर पैट्रोल ख़र्च करते थे, तक़रीबन एक

हज़ार फ़ोन आते-जाते थे और कम-से-कम पचास ट्रंककाल महीने में किया करते थे। इन सबको अगर एक साथ देखें तो उनके औसत ख़र्च का अंदाज़ा लग जायेगा...।"[2]

समाजवादी युव-जन सभा के आंदोलनकारियों के विरोधी रवैये को देखकर राजनारायण ने नये दाव-पेंच का सहारा लिया। उन्होंने एक लड़के को छाँट लिया और उससे वायदा किया कि यदि प्रदर्शन के संयोजकों को मात देने के लिए वह भारी संख्या में युवकों की भीड़ इकट्ठी कर सके तो उसे समाजवादी युव-जन सभा की राज्य शाखा का अध्यक्ष बना दिया जायेगा। वह लड़का जाल में फँस गया, लेकिन कुछ कर नहीं सका। राजनारायण को डर था कि अगर प्रदर्शनकारियों ने पुलिस का घेरा तोड़ दिया और लाठी-चार्ज हो गया तो उनकी बड़ी बदनामी होगी। असल में उन्होंने ही सरकार में संसोपा को शामिल होने के लिए मजबूर किया था। सरकार में शामिल होने के पक्ष में दी गयी सारी दलीलों की छीछालेदर होने का ख़तरा पैदा हो गया था।

वह दौड़ते हुए दारुलशफ़ा के उस फाटक की तरफ़ बढ़े जो विधान-सभा मार्ग की ओर खुलता था। जैसे ही प्रदर्शनकारी वहाँ पहुँचे राजनारायण ने उन्हें रोक दिया और कहा, "तुम लोग जीत गये। तुम्हारा मक़सद पूरा हो गया। अब पुलिस की गाड़ी में तुम लोग बैठ जाओ।" वह ड्यूटी पर तैनात पुलिस-अफ़सर की तरफ़ बढ़े और उनसे अनुरोध किया कि ऐसी कोई कार्रवाई न की जाये जिससे लड़के भड़क जायें। उन्होंने कहा कि "वे आपकी गाड़ी में ख़ुद ही बैठ जायेंगे।" वह चुपचाप खड़े गिरफ़्तारी देखते रहे। प्रदर्शनकारियों में मौजूद जनेश्वर मिश्र को यह सब बहुत नाटकीय लगा और वह चीख़ पड़े, "यह डिमांस्ट्रेशन है या नौटंकी?" वह इसे असली राजनारायण-छाप तमाशा बनाना चाहते थे और सड़क पर चित्त लेट गये, ताकि पुलिस उन्हें अपनी गाड़ी में न ले जाये। फिर उन्हें ज़बर्दस्ती टाँग कर पुलिस वालों ने उठाया। राजनारायण बहुत ख़ुश होकर यह सब देखते रहे। उन्हें ख़ुशी थी कि उनकी पार्टी जिस सरकार में शामिल है उस सरकार ने एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन की अनुमति दे दी।

1971 के लोक-सभा-चुनाव में संसोपा को करारी हार मिली, जिससे पार्टी की हालत ख़राब हो गयी। अपनी नुमायशी मुद्राओं और उलट-फेर के बावजूद लोहिया तथ्यों और आँकड़ों का एक ऐसा तानाबाना बुन सकते थे, जिससे यह भ्रम होता था कि कोई बहुत गहराई में जाकर नीति तैयार कर रहे हैं, लेकिन उनकी मृत्यु के बाद यह भांड राजनारायण सामने आये, जो एक स्टंटबाज़ के अलावा और कुछ नहीं हैं। इनकी पार्टी ने 1971 में 17 राज्यों में 93 सीटों पर चुनाव लड़ा था, जिसमें से केवल तीन सीटों पर उसे कामयाबी मिली, साठ उम्मीदवारों की ज़मानतें ज़ब्त हो गयीं। 1967 में पार्टी को कुल 72 लाख वोट मिले थे, 1971 में यह संख्या घटकर 45 लाख हो गयी और इसी प्रकार कुल वोट 4.92 प्रतिशत से घटकर 3.42 रह गये। बिहार में संसोपा-समर्थित संयुक्त मोर्चा-सरकार के होने के बावजूद पार्टी के वोट 18 प्रतिशत से घटकर 7 प्रतिशत रह गये थे और ख़ुद राजनारायण के राज्य में यह 10.27 प्रतिशत से घटकर 3.7 रह गये थे।

पार्टी के महासचिव जॉर्ज फ़र्नांडीज़ ने राजनारायण को एक पत्र लिखा कि वह उत्तर प्रदेश में संविद सरकार से संसोपा को बाहर निकाल लें। लेकिन राजनारायण तैयार नहीं हुए। बिहार में कर्पूरी ठाकुर मुख्यमंत्री-पद की कुर्सी से चिपककर बैठे रहे।

अप्रैल में पटना में पार्टी का अधिवेशन हुआ, जिसने दंगल का रूप ले लिया। गरमागरम बहस के दौरान फ़र्नांडीज़ पत्रकारों को लेकर वग़ल के कमरे में चले गये और उन्होंने आरोप लगाया कि "धोखाधड़ी, पैसा, षड्यंत्र और दाव-पेंच" के ज़रिये राजनारायण और रामसेवक यादव का गुट पार्टी पर क़ब्ज़ा करना चाहता है।

राजनारायण के बड़े क़रीवी दोस्त यादव को हावड़ा स्टेशन पर आवकारी विभाग के अधिकारियों ने अवैध रूप से नशीली दवाएँ ले जाने के आरोप में एक फ़र्स्ट क्लास के डिब्बे से पकड़ लिया था। राजनारायण के अनेक घनिष्ठ मित्र और रिश्तेदार भारत-नेपाल-सीमा पर चालू लोगों की सूची में हैं। इनमें से एक संदिग्ध व्यक्ति, जो गोरखपुर में संसोपा के कार्यकर्ता थे, आज यू० पी० में मंत्री हैं। राजनारायण का एक भाई, जो बनारस का एक कुख्यात वदमाश है, अक्सर विहार-यू० पी०-सीमाचौकी पर देखा जाता रहा है। इसी चौकी से होकर सारी तस्करी होती है और अवैध चीज़ें आती-जाती हैं। आवकारी विभाग का एक इंस्पेक्टर गाँजे की तस्करी के आरोप में मुअत्तिल किया गया और आश्चर्य की बात है कि उसके राजनारायण से बड़े घनिष्ठ संबंध थे। शायद ऐसे लोगों के साथ उनके संबंधों की वजह से ही पार्टी के उनके अन्य मित्रों ने वार-वार यह आरोप लगाया है कि वह "गाँजे के तस्करों के प्रति उदार हैं।" एक लोहिया-भक्त पर यह आरोप लगाया जाना कैसा हास्यास्पद है!

पटना अधिवेशन में राजनारायण के विरोधियों ने जितनी उनको दवाने की कोशिश की वह उतने ही दंगल के चैंपियन वनकर सामने आ गये। "साधन और भीड़ जुटाने" में माहिर राजनारायण के ख़िलाफ़ उनके विरोधियों की दाल नहीं गल सकी।

अपने एक समय के आक़ा लोहिया से उन्होंने वस एक ही गुरुमंत्र प्राप्त किया था—"विरोध और आंदोलन।" उनका जीवन लिखने के वारे में उत्सुक एक अनुयायी को राजनारायण ने लिखाया था—"...राजनारायण कभी छुट्टी नहीं मनाते। गर्मी हो या सर्दी, वह हमेशा चलते रहते हैं। उनकी ज़िंदगी घटनाओं के इर्द-गिर्द चक्कर लगाती है। वह ख़ुद ही घटनाएँ पैदा करते हैं, कहीं कुछ हो गया तो फ़ौरन वहाँ के लिए रवाना हो जाते हैं और प्रत्येक घटना में से वह कोई और घटना पैदा करने की कोशिश करते हैं...।"

राजनारायण कहीं जाने के लिए तभी राज़ी होते हैं जव उन्हें यह यक़ीन हो जाये कि उनके पहुँचने पर एक तूफ़ान खड़ा हो जायेगा। उनके लिए विधान-मंडल और संसद कुश्ती के अखाड़ों से ज़्यादा महत्व नहीं रखते। 1953 में जव वह पहली वार उत्तर प्रदेश विधान-सभा में पहुँचे तो वहस के दौरान वह एक मुद्दे पर अड़ गये और उन्होंने ऐसा उपद्रव मचाया कि उनको घसीट कर वाहर निकालने के लिए माशल को बुलाना पड़ा। इस घटना के वारे में अख़वारों में चर्चा हुई, जिससे उन्हें भविष्य के लिए भी इसी शैली को अपनाने के लिए प्रोत्साहन मिला। विधान-सभा में अपने पहले दिन के नाटक के वारे में वह वताते हैं, "वह एक ऐतिहासिक दिन था, 4 मार्च 1953। उसी दिन रूस का खूँख़ार तानाशाह स्टालिन मरा था।" यदि किसी के पास धीरज हो तो वह अपने महान कार्यों की 'ऐतिहासिक तारीख़ों' को गिनाते जायेंगे, जिनमें वह दिन और समय भी शामिल होगा जव उन्होंने सी० बी० गुप्ता के सर पर से गांधी टोपी उतार ली थी। कहा जाता

है कि उस टोपी को अपनी बहादुरी की यादगार के रूप में वह आज भी रखे हुए हैं।

उनके जीवन का एक महान क्षण सितम्बर 1958 में आया, जब वह और उनके कुछ सोशलिस्ट दोस्तों ने उत्तर प्रदेश विधान-सभा में एक तरह से दंगा मचा दिया और इन लोगों को सदन से बाहर निकालने के लिए लौह-टोपधारी पुलिस की मदद लेनी पड़ी। उन्होंने साढ़े तीन मन वज़न के अपने शरीर को फ़र्श पर डाल दिया और लोगों को धक्का देने और खींचने के लिए छोड़ दिया। लगभग आधा दर्जन पुलिस के जवानों ने मिलकर उन्हें खींचना शुरू किया और तब कहीं उन्हें बाहर निकाला जा सका। इस खींचतान में सबसे पहले उनका कुर्ता फटकर तार-तार हो गया और जब तक उन्हें बाहर सड़क तक पहुँचाया गया, उनके शरीर पर केवल एक लँगोटा रह गया था। वहाँ खड़े दर्शकों को ऐसा लगा जैसे वह अखाड़े में चित्त पड़े किसी पहलवान को देख रहे हों।

जे० पी० ने जब बिहार में अपना आंदोलन छेड़ा तो राजनारायण अपने नये मालिक चरणसिंह का पगहा तुड़ा कर पटना की ओर भागे। अपने साथियों के बीच ठहाके लगाते हुए और शोरगुल मचाते हुए वह पंजाब मेल से एक छोटे-मोटे बवंडर की तरह बाहर निकले। लेकिन इसके साथ ही उनकी तीखी निगाहें गंभीर और खिन्न चेहरा लिये किनारे खड़े पुलिस-अफ़सरों और जवानों पर चली ही गयीं। पुलिस की तरफ़ से वह तब तक बेखबर बने रहे जब तक एक अफ़सर ने आकर यह नहीं बताया कि उन्हें बिहार राज्य से बाहर निकाल देने का आदेश मिला है। राजनारायण तनिक भी घबराये नहीं। इस तरह की स्थितियाँ तो वह पसंद ही करते हैं। उनकी आँखों में एक नयी चमक आ गयी।

"कहाँ है वह ऑर्डर ?" उन्होंने झगड़े की मुद्रा में सवाल किया।

जब वह अफ़सर कोई लिखित आदेश नहीं दिखा सका तो राजनारायण ने उसे व उसके स्टाफ़ को किनारे कर दिया और प्लेटफ़ार्म से बाहर निकलने वाले फाटक की तरफ़ अकड़ते हुए बढ़ चले। पीछे-पीछे उनके लँगोटिया यारों का हुजूम चल रहा था।

थोड़ी देर बाद पुलिस के अफ़सरों और जवानों ने उन्हें उनके मित्र भोलाप्रसादसिंह के घर पर पकड़ लिया। इस बार उनके पास लिखित आदेश था, लेकिन वह सोचते रहे कि यह आदेश कैसे उन्हें दिया जाये ; वे राजनारायण को नहीं जानते थे। लगभग आधी रात हो चुकी थी और भोलाप्रसादसिंह के ड्राइंग-रूम में बैठा मजिस्ट्रेट लगातार इंतज़ार करता रहा और बग़ल के कमरे में राजनारायण अपने दोस्तों के साथ गप करने में मशगूल थे। अंत में अपने कमरे से निकलने के बाद वह गरज पड़े, "कहाँ है वह ऑर्डर ?"

पुलिस-अफ़सर ने उन्हें आदेश दिखाया। चेहरे पर अजीब नाखुशी का भाव लिये राजनारायण उस आदेश को देखते रहे और फिर मजिस्ट्रेट को वापस लौटाते हुए उन्होंने कहा, "इस ऑर्डर से काम नहीं चलेगा।"

वह अफ़सर आश्चर्यचकित रह गया और विनम्रता से उसने पूछा, "क्यों, सर ?"

"क्यों ? क्योंकि तुम्हारा ऑर्डर यह कह रहा है कि मुझे बिहार में घुसने की इजाज़त नहीं है। ठीक है ? अब तुम देखो कि मैं बिहार की सीमा में इतनी दूर तक चला आया हूँ और मैं अपने दोस्त के घर तक पहुँच गया हूँ। तुम अब मुझे कैसे बिहार में घुसने से रोक सकते हो ? इसलिए तुम्हारे इस ऑर्डर से काम नहीं

चलेगा।" आखिरकार राजनारायण ने भी तो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से एल-एल० बी० किया था! इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है कि उन्होंने महज़ एक-दो दिन ही वकील की पोशाक पहनी? "इस ऑर्डर से काम नहीं चलेगा—राजनारायण की इस बात को मान लो।" उन्होंने उस अफ़सर से फिर कहा और घबराहट में खड़े पुलिस-अफ़सर को पीछे छोड़ते हुए राजनारायण खाना खाने के लिए कमरे के अंदर चले गये।

एक घंटे बाद जब वह ड्राइंग-रूम में वापस पहुँचे तो उन्हें उस ऑर्डर में एक और ख़ामी नज़र आयी, "यह ऑर्डर तो मेरे लिए है भी नहीं।" उन्होंने पुलिस-अफ़सर से कहा और वह पहले से भी ज़्यादा हैरान हो गया। "राजनारायणजी, मैं आपकी बात समझ नहीं सका।" उसने हकलाते हुए कहा।

"तुम ख़ुद ही इस ऑर्डर को पढ़ लो। यह 'वाराणसी के राजनारायण' के लिए है। वाराणसी में सैकड़ों राजनारायण होंगे। तुम यह कैसे साबित कर सकते हो कि यह मेरे ही लिए है?"

"सर, यह आप ही के लिए है।" मजिस्ट्रेट ने घबराकर कहा।

"कौन कहता है कि यह मेरे लिए है? मैं वाराणसी का राजनारायण नहीं हूँ बल्कि संसद-सदस्य राजनारायण हूँ...।"

पुलिस-अफ़सर ने उस कागज़ को ग़ौर से देखा और सचमुच उसमें उसे कोई ऐसी बात नहीं मिल सकी जिससे वह निश्चित रूप से साबित कर सके कि यह आदेश संसद-सदस्य राजनारायण के लिए ही है।

वहाँ मौजूद एक पत्रकार ने पुलिस-अफ़सर की तरफ़ से बातचीत में हस्तक्षेप किया और कहा, "बिहार के सारे अफ़सर केवल एक राजनारायण को जानते हैं, जिसका वज़न साढ़े तीन मन है।"

ठहाकों के बीच राजनारायण ने "फिर से विचार करने के लिए" उस आदेश को अपने हाथ में ले लिया।

"लगाओ फ़ोन चरणसिंह को।" उन्होंने अपने मेज़बान से कहा।

जब कई बार नम्बर घुमाने पर भी चरणसिंह से बात नहीं हो सकी तो राजनारायण ने कहा, "गवर्नर को फ़ोन लगाओ।"

उन लोगों ने राज-भवन का नम्बर घुमाना शुरू किया, लेकिन उधर से कोई जवाब नहीं आया। रात का एक बज रहा था। दो बजने तक भी किसी से बात नहीं हो सकी, तब उन्होंने ग़ुस्से में कहा, "इन्दिरा के ग़ुलाम भी वैसे ही हैं।" थोड़ी देर रुककर उन्होंने फिर आदेश दिया, "फिर लगाओ चीफ़-मिनिस्टर को।"

मुख्यमंत्री अब्दुल ग़फ़ूर उतनी रात में भी जगे हुए थे और वे मिल गये।

"यह सब क्या तमाशा मचा रखा है?" राजनारायण फ़ोन में चीख पड़े और साथ ही अपने लँगोटिया यारों की तरफ़ आँख मारते हुए मुसकरा पड़े। वहाँ मौजूद सारे लोग मज़ा ले रहे थे।

थोड़ी देर तक अब्दुल ग़फ़ूर से बहस होने के बाद राजनारायण ने कहा, "ठीक है, ठीक है, जो मन में आये करो। कृष्णवल्लभ सहाय (बिहार के एक भूतपूर्व मुख्यमंत्री) ने भी मुझे 1967 में राज्य से बाहर निकलने का आदेश दिया था और आप भूले नहीं होंगे कि उनके साथ क्या हुआ। आप भी ऐसे ही जाओगे।"

अपने ख़ास लापरवाह अंदाज़ में अब्दुल ग़फ़ूर ने कहा, "ठीक है, एक दिन तो सबको जाना है।"

राजनारायण ने तपाक से जवाब दिया, "आप सही फ़रमाते हैं, लेकिन जल्दी जाने और देर में जाने में फ़र्क़ है।"

उन्होंने फ़ोन पटक दिया और चिल्लाते हुए तथा डींग मारते हुए कमरे में चहल-क़दमी करने लगे, लेकिन माहौल में किसी तरह का तनाव नहीं आया। आधी रात को भाण्डों-जैसे नाटक के दौरान राजनारायण को सबसे ज़्यादा चिंता यह थी कि अगले दिन सवेरे अखबारों में इस घटना की सही खबर आती है कि नहीं। उन्हें यक़ीन था कि वहाँ रुके तो एक मामूली-सी सभा में भाषण देना होगा, लेकिन बिहार से सवेरे निकाल दिये गये तो उनको बहुत ज़्यादा फ़ायदा होगा।

लखनऊ में अपने एक आंदोलन के दौरान राजनारायण ने पुलिस के साथ मिलकर पहले से यह इंतज़ाम कर रखा था कि चार जवान उन्हें टाँगकर पुलिस की गाड़ी तक ले जायेंगे, ताकि प्रेस-फ़ोटोग्राफ़रों को एक नाटकीय तस्वीर खींचने का मौक़ा मिले। पुलिस के जवानों ने जब उन्हें उठाया तो पता चला कि वह तो बहुत भारी हैं। उन्होंने राजनारायण को धप से ज़मीन पर पटक दिया। जब तीन बार उन्हें ऐसे ही उठा-उठा कर पटका गया तो वह ग़ुस्से में चीख़ते हुए उठ खड़े हुए और बोले, "मैं ख़ुद ही चला जाऊँगा।"

रायबरेली से विजयी होकर जब वह लौटे तो पहले से भी ज़्यादा हास्यास्पद हो गये थे, उनकी चाल पहले से ज़्यादा इतरायी हुई थी, बातचीत में पहले से ज़्यादा मौजीपन था, और उनके मज़ाकों में एक नया फूहड़पन था। वह 'जायंट-किलर' थे—भीम-मर्दक—और यह दावा कर सकते थे कि अकेले ही उन्होंने भारतीय इतिहास की धारा को मोड़ दिया। वह पालम हवाई अड्डे के बाहर खड़ी कार के ऊपर चढ़ गये और फिर 'राजनारायणपन' की हरकतें शुरू कर दीं। इस तरह की हरकतें अब तो इतनी ज़्यादा हो चुकी हैं कि अब उनमें मज़ा नहीं आता है, पर आनंद के उन दिनों में "मम्मी-मम्मी, कार गयी, कार गयी सरकार गयी" के नारों के बीच रायबरेली के उस महारथी के मुँह से जो कुछ भी निकलता था लोग लपककर उसे रोक लेते थे। अपने ऊँचे मंच से अपने अल्यूमीनियम के सोटे को हिलाते वह वेदों और क़ुरान के उद्धरण दे रहे थे, लेकिन यह पता नहीं चल रहा था कि इन मंत्रों व आयतों का मौक़ा क्या है। वह कह रहे थे, "इस्लाम के पैग़म्बर का कहना है कि जिस दिन से तुमने इस्लाम को क़ुबूल कर लिया तुम मुसलमान बन गये, पहले तुम चाहे जो रहे हो। गीता का भी यही कहना है कि...।" उनका मतलब शायद जनता पार्टी में उन लोगों के शामिल होने से था। फिर वह कार से नीचे उतरना चाहते थे, लेकिन भीड़ उन्हें उतरने ही नहीं दे रही थी। भीड़में खड़े लोग उनसे बहुत-कुछ सुनना चाहते थे और राजनारायण भी यह बताने के लिए बहुत बेताब थे कि किस तरह उन्होंने "इन्दिरा-नेहरू-गांधी" को चुनाव में हरा दिया। वह तब तक बताते रहे जब तक बोलते-बोलते हाँफने नहीं लगे और उनका चेहरा पसीने से तर-बतर नहीं हो गया। उनकी लहराती हुई दाढ़ी पसीने से गीली हो चुकी थी और चेहरे से पसीने की बूँदें टपक रही थीं। भीड़ को यह देखकर काफ़ी मज़ा आ रहा था कि वह बार-बार अपने बेहद लंबे कुर्ते के एक सिरे को उठाकर उससे चेहरा और सिर पोंछ लेते थे।

अगले कुछ दिन तक वह अपने भूतपूर्व संरक्षक सी० बी० गुप्ता की देख-रेख में राजनीतिक जोड़-तोड़ में लगे रहे। सी० बी० गुप्ता ने अब तक उनके लिए जो कुछ किया था उसकी पूरी क़ीमत लिये बिना राजनारायण को छोड़ा नहीं।

सी०बी० गुप्ता ने ही इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ ऐतिहासिक मुक़दमे में उनकी मदद की थी और पैसे दिये थे और उन्होंने ही शांतिभूषण से अनुरोध किया था कि वह राजनारायण की तरफ़ से मुक़दमे में पैरवी करें।

प्रधानमंत्री का चुनाव होने के बाद राजनारायण सीधे आगरा के पास की गुफ़ाओं में बैठे अपने महान गुरु समई बाबा के पास गये। लोक-सभा के चुनाव-प्रचार के दौरान जब वह आगरा के पास किसी सभा में भाषण देने गये थे तो उनके एक मित्र ने उन्हें बाबा के दर्शन कराये थे। राजनारायण का कहना है, "मैंने बाबा से आशीर्वाद चाहा था। बाबा ने थोड़ी देर के लिए अपनी आँखें बंद कर ली थीं और अचानक गेंदे के फूल से बनी एक माला उठाकर कुछ मंत्र पढ़ते हुए उसमें से दस फूल निकालकर मुझे दिये थे। बाबा ने उन फूलों को खा जाने का आदेश दिया और मैंने वे सारे फूल खा लिये थे। बाबा ने अपना हाथ मेरे सिर पर रखते हुए कहा था—चुनाव लड़ो, तुम्हारी विजय होगी। मुझे अपनी जीत के कारणों का पता है। ये कारण हैं—भगवान शिव की भक्ति, जेल में मेरी तपस्या और समई बाबा का आशीर्वाद।" राजनारायण फिर बाबा से सलाह और दीक्षा लेने जा रहे थे। "बाबा ने मुझसे कहा कि मंत्रिमंडल में मुझे शामिल हो जाना चाहिए और उन्होंने मुझे कुछ पेड़े दिये।"

अगले दिन वह अपनी अकड़ी हुई चाल से राष्ट्रपति-भवन के अशोक हाल में पहुँचे। उनके साथ लगभग एक दर्जन उनके लँगोटिया यार थे। उन्होंने गंभीर मुद्रा में बैठे मोरारजी देसाई के सामने झुककर उन्हें पेड़ा दिया। शिष्टाचार के आग्रही देसाई ने राजनारायण की तरफ़ इस तरह देखा जैसे वह मन-ही-मन कह रहे हों कि 'यह आदमी कभी नहीं बदल सकता;' और फिर वह मुसकरा पड़े। इस बीच राजनारायण इस महत्वपूर्ण अवसर के उपयुक्त गंभीरता से बैठे अपने अन्य साथियों की ओर बढ़ गये। यदि किसी व्यक्ति को देखकर यह कहा जा सकता था कि तीस-वर्षीय कांग्रेस-शासन का अंत हो चुका है तो वह राजनारायण ही थे। मंच की तरफ़ शपथ-ग्रहण करने के लिए जाने से पूर्व उन्होंने कार्यकारी राष्ट्रपति बी० डी० जत्ती के मुँह में थोड़ा-सा पेड़ा ठूंस दिया।

अब स्वास्थ्य-मंत्री राजनारायण का भाण्डपन शुरू हो गया था—"परिवार नियोजन? मैं इस शब्द से नफ़रत करता हूँ। इससे नसबंदी की बू आती है। यह बहुत अमानवीय काम है। आप मवेशियों को बधिया बनाइये, आदमियों को नहीं। अब इसका नाम परिवार नियोजन से बदलकर परिवार कल्याण कर दिया जाये।" डॉक्टरों और अपने मंत्रालय के अफ़सरों के साथ होने वाली बैठकों में जो कुछ होता था वह किसी नाटक के लिए पर्याप्त मसाला है। मंत्रालय में एक क़िस्सा काफ़ी प्रचलित है और अपने अमेरिकी पाठकों के लिए वेद मेहता ने इसी क़िस्से का वर्णन इस प्रकार किया है—

राजनारायण ने अपने बड़े-बड़े अफ़सरों को बुलाया और पूछा, "किस अधिकार से आप लोगों ने अपने भाईयों की नसबंदी की?"

"सर, आप जानते हैं कि किसने आदेश दिये थे।"

"कहाँ हैं वे आदेश? मुझे दिखाओ। उस आदेश के साथ के कागज़ कहाँ हैं?"

"सर, वह आदेश कभी लिखित रूप में नहीं मिला।"

उन्होंने अपने हर एक अफ़सर को पत्थर पकड़ाया और अपने क्लर्क को कमरे के बीचोंबीच खड़ा करते हुए कहा, "इस क्लर्क को आप लोग पत्थर मारो। मैं

आदेश देता हूँ...मैं इस पर पत्थर मारने का आदेश दे रहा हूँ और आप लोगों में कोई हरकत नहीं हो रही है, लेकिन जब उसने एक आदेश दिया था तब तो अपने भाईयों के लिए चाकू उठाने में भी आप नहीं हिचकिचाये।"[4]

मंत्री-महोदय का मकान एक पागलखाना-जैसा लगता है। चाहे आप किसी भी समय क्यों न जायें, इस मकान पर आपको राजनारायण के कई छुटभये मिल जायेंगे। कोई सोफ़े पर पसरा होगा तो कोई फ़र्श पर, और कोई तख़्तपोश पर ख़र्राटे ले रहा होगा। मंत्री-महोदय ख़ुद फ़र्श पर चटाई बिछाकर उस पर बैठकर काम करना पसंद करते हैं। उनके चारों तरफ़ दीवारों पर माला पहने देवताओं की तस्वीरें लगी होती हैं और इनके बीच में लोहिया की एक तस्वीर होती है। मेज़ और अलमारी में दवाओं के ढेर दिखायी पड़ेंगे। कमर में एक लुंगी लपेटे वह मालिश कराते होंगे और अटेंशन की मुद्रा में डॉक्टर खड़े मिलेंगे। राजनारायण उनसे लगातार सवाल करते जायेंगे—इनमें ज़्यादा सवाल डायबिटीज़ के बारे में होंगे, क्योंकि वह ख़ुद भी इस रोग से पीड़ित हैं और इस बीमारी के कारण उनको खाने की आदतों पर रोक लगानी पड़ी है। कमरे के बराबर में "कुँआरे लोगों के अड्डे" के सदस्य-जैसे लोग आते-जाते नज़र आयेंगे।

लेकिन 61-वर्षीय राजनारायण कुँआरे नहीं हैं। कुँआरा होना दूर रहा, उनका अपना एक बहुत बड़ा परिवार भी है। लेकिन वह उसके बारे में बात करना पसंद नहीं करते। अगर कोई उनकी पत्नी और बच्चों के बारे में सवाल करता है तो वह ऐसी मुद्रा बनाते हैं कि उनसे किसी पिछले जन्म के बारे में पूछा जा रहा हो। वह जवाब देते हैं, "मुझे कुछ नहीं पता। मैं काफ़ी दिन से ब्रह्मचारी हूँ, लेकिन जहाँ तक मेरा खयाल है, मेरी पत्नी बनारस में रहती है। मेरा ख़याल है कि मेरा एक लड़का खेती-बाड़ी का काम देखता है। मेरा एक लड़का शायद कहीं सरकारी नौकरी में है और एक लड़का कहीं पढ़ रहा है।"[5]

क़िस्सा यह है कि मंत्री बनने के बाद उनके कुछ समर्थक लोग गाँव से जाकर उनकी पत्नी को ले आये। राजनारायण ने अपनी पत्नी को देखकर पूछा, "यह कौन है?"

उनके प्रशंसकों ने जब बताया कि वह उनकी पत्नी है तो उन्होंने कहा, "अच्छा यही है? मैंने वर्षों से नहीं देखा।" और अगले ही क्षण 'नेताजी' अपने और भी बड़े 'परिवार' में डूब गये! अपने आस-पास के जमावड़े में तल्लीन हो गये।

उनके एक प्रशंसक ने उनके बारे में लिखा है, "कुछ लोगों के लिए राजनीति एक पेशा है, लेकिन राजनारायण के लिए यही उनकी ज़िंदगी है।"

राजनारायण का पारिवारिक संबंधों और पत्नी और बच्चों के प्रति सामान्य मानवीय संवेदनाओं से कुछ भी लेना-देना नहीं है। कई वर्ष पहले की बात है, लखनऊ में संसोपा की एक बैठक में वह भाग ले रहे थे कि उन्हें पता चला कि बनारस से उनके नाम ट्रंक-काल आया है। वह उठकर बाहर गये और फ़ोन से बातचीत करने के बाद लौट आये। बैठक पहले की तरह चलती रही, लेकिन बीच में ही लोहिया ने उनसे पूछा कि फ़ोन किसका था। राजनारायण ने उनसे बताया कि बनारस से एक सूचना थी कि उनके सबसे बड़े लड़के की मृत्यु हो गयी है। जितने साधारण ढंग से राजनारायण ने बताया उससे लोहिया सन्न रह गये। उन्होंने जल्दी-जल्दी एक शोक-प्रस्ताव पास किया और बैठक स्थगित कर दी, लेकिन राजनारायण घर नहीं गये।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के बारे में राजनारायण के विचार वहीं से निकले हुए लगते हैं जहाँ उनके समाजवादी विचारों का जन्म हुआ है। गाँव की भीड़ में बोल रहे हों, या अंतर्राष्ट्रीय समारोह में, उनका अंदाज़ यही रहता है—"स्वास्थ्य ही देश के स्वास्थ्य की कुंजी है।" अगला वाक्य होता है—"समझे ? कुछ नहीं समझे।" और इसके बाद वह राम, कृष्ण और मोहम्मद साहब का उदाहरण दे-देकर यह साबित करने में जुट जाते हैं कि छोटा परिवार ही सर्वोत्तम परिवार है।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण-मंत्री बनने के फ़ौरन बाद उन्होंने एलान किया कि सरकार हर उस व्यक्ति को पाँच हज़ार रुपये बतौर मुआवज़ा देगी जिसकी ज़बर्दस्ती नसबंदी की गयी है। जब उनसे बताया गया कि इस घोषणा का क्या असर पड़ सकता है तो उन्होंने कहा, "एकदम बकवास। अगर कोई धनी आदमी विमान-दुर्घटना में मर जाता है तो उसे क़ानूनी तौर पर एक लाख रुपये मुआवज़े के रूप में मिलते हैं और अगर मेरी ज़बर्दस्ती नसबंदी की गयी है तो क्या मुझे पाँच हज़ार भी नहीं मिल सकता ?"

अपने नये आक़ा चरणसिंह के लिए राजनीतिक जोड़-तोड़ करने और समई बाबा तथा अन्य योगियों, गुरुओं, तांत्रिकों के दर्शन करने के लिए की जाने वाली यात्राओं के बीच से राजनारायण इतना समय निकाल लेते हैं कि वह "नंगे-पैर डॉक्टरों" और "लैंगिक संयम" की आवश्यकता के बारे में अपने सिद्धांतों को प्रतिपादित कर सकें। यहाँ तक कि उन्होंने लंदन में रहने वाले भारतीयों को भी जाकर बता दिया कि जनता पार्टी का मंत्री कैसा होता है। उन्होंने अँग्रेज़ी-विरोधी के रूप में प्राप्त अपनी शोहरत को बनाये रखने की कोशिश की और वहाँ के भारतीयों के बीच बोलते हुए कहा, "मैंने शेक्सपीयर, हिल्टन, मिल्टन आदि सबको पढ़ा है, लेकिन मैं यह नहीं बर्दाश्त कर पाता हूँ कि अँग्रेज़ तो चले गये, पर अँग्रेज़ी अभी चल रही है...मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि क्यों अँग्रेज़ी रानी बनी रहे और तेलुगु दासी।"

अगर लंदन के भारतीयों को राजनारायण के शब्दों से और व्यवहार से किसी शर्मिंदगी का सामना करना पड़ता है तो इसमें राजनारायण की कोई ग़लती नहीं है। अगर प्रवासी भारतीय नेहरू, मेनन और पहले आने वाले तमाम भारतीय मंत्रियों की याद नहीं भूल पाते हैं तो इसमें राजनारायण का कोई क़ुसूर नहीं है। राजनारायण आज भी वही हैं जो पहले थे। समय या स्थान या श्रोताओं के स्वभाव से उनके अंदर कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता। बनावट के लिए वह अपनी शैली और तौर-तरीक़ों को नहीं छोड़ सकते। भारत में जिस तरह ट्रेनों और हवाई जहाज़ों को देर कराने की आदत पड़ गयी है, उसी के अनुसार कुवैत में एक अंतर्राष्ट्रीय उड़ान पर जा रहे विमान को देर कराने का उन्हें कोई अफ़सोस नहीं था। वह बड़े आराम से बैठे रहे और इस बीच उनका सहायक ड्यूटी-फ्री शॉप से एक ट्रांज़िस्टर ख़रीद कर दौड़ता हुआ वापस पहुँच गया। जहाज़ के कप्तान ने अपनी लॉग-बुक में इस विलंब का कारण 'यातायात' की भीड़ बतायी। कुवैत एयर इंडिया ने इसके कारण वाले कॉलम में लिखा—'वी० वी० आई० पी०'।

देश और विदेश में लगातार मनोरंजन की सामग्री जुटाने वाले राजनारायण ने एक मंत्री के रूप में भारत के स्वास्थ्य के लिए एक बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया है—उन्होंने शोध करने के लिए अपना मस्तिष्क दान में दे दिया है !

टिप्पणियाँ

1. राजनारायण के एक पुराने साथी से लेखक की बातचीत।
2. दारुलशफ़ा में राजनारायण के एक पड़ोसी की लेखक से बातचीत।
3. लखनऊ के एक पुलिस-अफ़सर का विवरण।
4. वेद मेहता की राजनारायण से बातचीत, द न्यूयार्कर, 17 अक्तूबर 1977
5. वही

7

चन्द्रशेखर—बलिया का उग्र सुधारवादी

जे० पी० का वस चलता और अपनी वात पर अड़े रहने की उनमें ताक़त होती तो वह चन्द्रशेखर को ही जनता सरकार का पहला प्रधानमंत्री वनाते।

मार्च 1977 में जनता पार्टी की जीत के वाद जे० पी० ने कई वार कुछ नौजवान क़रीवी लोगों से, जो चन्द्रशेखर के मित्र थे, इस 'दिली ख्वाहिश' का इज़हार किया था। जे० पी० इस सरकार को एक 'नया युवा-रूप' देना चाहते थे—वह नहीं चाहते थे कि शुरू से ही यह सरकार बीते दिनों के बूढ़े दक़ियानूस लोगों का वोझ ढोती रहे।

मोरारजी देसाई के प्रति जे० पी० के मन में कभी कोई लगाव नहीं रहा। दोनों के भीतर एक-दूसरे के प्रति गाँठें वनी हुई थीं। ज्यादा दिन नहीं गुज़रे हैं जव देसाई ने उन्हें "एक ऐसा डोलता हुआ पेंडुलम" कहा था "जिस पर भरोसा नहीं होता।" उन्होंने ज़ोर देकर कहा था कि जे० पी० के घोर कम्युनिस्ट-विरोध का कारण उनके "विश्वास नहीं · उनकी निराशा और असफलताएँ हैं।"[1] इन टिप्पणियों को जे० पी० आसानी से नहीं भुला सके।

चौधरी चरणसिंह के वारे में तो जे० पी० ने इतना सोचा भी नहीं—उन्हें यक़ीन ही नहीं था कि चरणसिंह जाट-स्थान से आगे भी कुछ सोच सकते हैं। चरणसिंह ने जे० पी० के आंदोलन का खुले आम विरोध किया था और संयुक्त विरोधी दल वनाने की उनकी योजनाओं का गुड़ गोवर किया था। प्रधानमंत्री-पद पर चरणसिंह को विठाने के लिए जे० पी० कभी राज़ी नहीं हो सकते थे।

जनता-त्रिमूर्ति के तीसरे व्यक्ति जगजीवनराम के प्रति जे० पी० के मन में हमेशा स्नेह रहा है। जगजीवनराम इन्दिरा-मंत्रिमंडल के एक वरिष्ठ मंत्री थे, जिन्होंने विहार-आंदोलन के दौरान कभी जे० पी० पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं किये थे। वह जे० पी० के व्यक्तित्व की खुले आम प्रशंसा करते थे, जिससे उनके वारे में इन्दिरा गांधी का शक और भी गहरा हो गया था। जब तक विहार-आंदोलन चलता रहा, जे० पी० को यह आशा वनी रही कि जगजीवनराम इन्दिरा गांधी का खुले आम विरोध करके उनकी तरफ़ आ जायेंगे। लेकिन जगजीवनराम

ने इन्दिरा गांधी का साथ देकर व देवीजी के प्रति अपनी चाटुकारिता का खुला प्रदर्शन कर जे० पी० को बहुत निराश कर दिया था।

इसीलिए जनता पार्टी के तीनों दिग्गजों में से किसी के प्रति जे० पी० के मन में उत्साह नहीं था। लेकिन वह अपने विचारों को खुले आम व्यक्त नहीं कर सके। उन्होंने बहुधा प्रसोपा के पुराने सदस्य चन्द्रशेखर की तारीफ़ की है—एक उग्र सुधारवादी के रूप में चन्द्रशेखर चर्चित हो चुके थे। इससे भी बड़ी बात यह थी कि वह उन विरले कांग्रेसियों में थे, जिन्होंने इन्दिरा गांधी का विरोध किया था और अपनी पत्रिका यंग इंडियन में अपने हस्ताक्षर से लिखी गयी संपादकीय टिप्पणियों में इन्दिरा गांधी को चेतावनी दी थी कि सरकार की समूची ताक़त भी जे० पी० को शिकस्त नहीं दे सकती, क्योंकि जे० पी० का हथियार ही दूसरा है। चन्द्रशेखर को प्रलोभन दिया गया कि वह जे० पी० को समर्थन देना बंद कर दे तो उन्हें इन्दिरा गांधी मंत्री बना देंगी, लेकिन उन्होंने परवाह न की। चन्द्रशेखर विरोधी दल के नेताओं के साथ जेल में रहे। लोक-सभा-चुनाव की घोषणा के बाद इन्दिरा गांधी ने उनको अपनी तरफ़ मिलाने की कोशिश की, लेकिन वह नहीं माने।

इस पृष्ठभूमि में लगता था कि जे० पी० जैसा प्रधानमंत्री चाहते हैं, वैसे चन्द्रशेखर ही हैं। लेकिन जे० पी० अपने विचार कुछ ऐसे लोगों को छोड़कर, जिनका कोई महत्व नहीं था, किसी के सामने नहीं रख सके। जे० पी० और चन्द्रशेखर के चारों ओर मँडराने वाले कुछ नौजवानों की इच्छा थी कि भूतपूर्व "युवा-तुर्क" नेता के समर्थन में जे० पी० खुले आम बोलें। जे० पी० की ख़ामोशी पर उनको बहुत झल्लाहट हुई। जे० पी० के बारे में उनकी धारणा यह बन गयी कि "वह ऐसे बूढ़े व्यक्ति हैं जो अपना काम तो कराना चाहते हैं, लेकिन ज़बान से कहने में शर्माते हैं।"

शराफ़त की बात अलग रही, जे० पी० जानते थे कि उन्होंने चन्द्रशेखर का नाम लिया तो एक तूफ़ान खड़ा हो जायेगा। बूढ़े नेता उन पर टूट पड़ेंगे और खिसियानी बिल्ली की तरह उन्हें नोचने लगेंगे। यह हुआ तो जनता पार्टी को टूटने से कोई रोक नहीं पायेगा। सर्वोदय आंदोलन के अधिकतर सहयोगी मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री बनाने के लिए दबाव डाल रहे थे। जे० पी० शारीरिक व मानसिक तौर से इस स्थिति में नहीं थे कि इन दबावों का विरोध कर सकें। इसीलिए उन्होंने भी देसाई का ही समर्थन किया।

लेकिन वह इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि चन्द्रशेखर को कम-से-कम जनता पार्टी का अध्यक्ष तो बनाया ही जाये और इसके लिए ज़ोर देने में उन्हें कोई हिचकिचाहट नहीं हुई।

मई 1976 में जसलोक अस्पताल में और बाद में समाचार-पत्रों के एक व्यवसायी आर० एन० गोयनका के गेस्ट-हाउस में बीमारी की हालत में जब उनकी ज़िंदगी एक के बाद एक डायलेसिस पर चल रही थी, जे० पी० ने पूरी ताक़त लगाकर एक नयी पार्टी बनाने की कोशिश शुरू की थी। तब उनके कुछ नौजवान अनुयायियों ने सवाल किया कि "इस नयी पार्टी का अध्यक्ष कौन बनेगा?" जे० पी० ने कहा, "मैं चन्द्रशेखर को अध्यक्ष बनाना चाहता हूँ।"[2]

चन्द्रशेखर तब तक जेल से छूटे नहीं थे। उन लोगों ने सोचा कि बिना उनकी रज़ामंदी के अध्यक्ष के रूप में उनका नाम एलान करना ठीक नहीं होगा। दयानंदसहाय को जेल में चन्द्रशेखर से मिलने की इजाज़त पहले ही मिल गयी थी।

वह हरियाणा जाकर उनसे बातचीत करने के लिए राज़ी हो गये।

सहाय ने जब चन्द्रशेखर को जे० पी० का प्रस्ताव बताया तो चन्द्रशेखर बहुत गद्‌गद हुए, लेकिन उन्होंने कहा कि विरोधी दलों में एकता होती नज़र नहीं आती। चन्द्रशेखर की जेल-डायरी में जगह-जगह पर विरोधी दलों के नेताओं के एक जगह इकट्ठा होने, या उनमें कभी एकता क़ायम हो पाने के बारे में संदेह व्यक्त किये गये हैं। 5 मई 1976 को उन्होंने अपनी डायरी में लिखा—"विरोधी दलों की एकता के जो प्रयास चल रहे हैं उनसे कुछ ज़्यादा उम्मीद करना व्यर्थ है। कांग्रेस का विकल्प प्रस्तुत करने की बात तो दूर रही, उनके लिए साथ-साथ काम करना भी कठिन है। इतने अहंकारी लोग क्या कभी जनता की बात सुन सकेंगे?"

दयानंदसहाय ने चन्द्रशेखर से कहा, "मैं आपसे 'हाँ' सुने बिना नहीं जाऊँगा। जे० पी० ने ख़ास तौर से आपकी अनुमति लेने के लिए मुझे भेजा है। यह उनकी अंतिम इच्छा है...।"

"ठीक है, अगर यह जे० पी० की अंतिम इच्छा है तो किसी तरह की बहस का सवाल ही नहीं पैदा होता, मेरे सामने कोई दूसरा चारा नहीं है।" चन्द्रशेखर ने जवाब दिया।

दिल्ली वापस लौटने पर सहाय ने सोचा कि अशोक मेहता से मिला जाये और उनको जे० पी० के प्रस्ताव की जानकारी दे दी जाये। अशोक मेहता कुछ ही पहले जेल से छूटे थे। यह सुनते ही कि नयी पार्टी बनाने की योजना है और चन्द्रशेखर को अध्यक्ष बनाया जायेगा, वह बहुत अप्रसन्न दिखायी दिये। दयानंदसहाय से उन्होंने चिढ़कर कहा, "एक नयी पार्टी का अध्यक्ष आप लोग तय करने जा रहे हैं?"

सहाय ने बताया कि जे० पी० का ऐसा ही विचार है, लेकिन अशोक मेहता उबल पड़ और उन्होंने कहा, "दयानंद, इस बूढ़े आदमी पर तुम ठीक ढंग से नियंत्रण नहीं रख पाते। वह किस तरह की पार्टी बना सकते हैं? जो आदमी हफ़्ते में तीन दिन मरा रहता है, बिहार और यू० पी० से परे कुछ देख ही नहीं सकता, जिसकी निगाह के दायरे में गिने-चुने सोशलिस्टों को छोड़कर और कोई आता ही नहीं, वह किस बूते पर नयी पार्टी बनायेगा?"[3]

अशोक मेहता की इस प्रक्रिया से दयानंद हक्के-बक्के रह गये। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में चन्द्रशेखर, मेहता के पुराने सहयोगी थे। योजना आयोग के उपाध्यक्ष-पद पर मेहता की नियुक्ति से जो विवाद पैदा हुआ था उसको लेकर ही चन्द्रशेखर ने 1964 में प्रसोपा से इस्तीफ़ा दिया था।

फिर दयानंदसहाय चन्द्रशेखर के एक पुराने साथी कृष्णकांत से मिलने गये। उनकी भी प्रतिक्रिया कम विचित्र नहीं थी। कृष्णकांत ने कहा कि चन्द्रशेखर अभी जेल में हैं, उन्हें शायद सब लोग स्वीकार भी न करें। उन्होंने दयानंद से पूछा, "मुझे क्यों नहीं अध्यक्ष बना दिया जाता?"

कृष्णकांत ने जाकर जे० पी० सें भेंट की और उन्हें सलाह दी कि नयी पार्टी के गठन का विचार कम-से-कम छह महीने तक के लिए स्थगित रखें। उन्होंने कहा, "सबसे पहले समर्थकों को तैयार करना ज़रूरी है। आप देश-भर में बिखरे सर्वोदयी लोगों की सूची मुझे दें और छह महीने तक मैं सब जगहों का चक्कर लगाता हूँ। फिर हम नयी पार्टी बना सकते हैं।" दयानंद और चन्द्रशेखर के अन्य साथियों को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने जे० पी० से कहा कि कृष्णकांत उनकी योजना को खत्म करना चाहते हैं। उन्हें लगा कि चन्द्रशेखर के मित्र भी चन्द्रशेखर

को आगे बढ़ने देना नहीं चाहते।

जे० पी० की योजना चली नहीं। बी० एल० डी० के अध्यक्ष ने पहले ही उसे खत्म कर दिया था। 9 जून 1976 को चरणसिंह ने एक वक्तव्य के द्वारा अपनी पार्टी को निर्देश दिया कि वह संघर्ष समिति के किसी भी आंदोलन में भाग न ले। कुछ दिन बाद उन्होंने नयी पार्टी के बारे में जे० पी० की घोषणा की खुले आम आलोचना की।

जेल की कोठरी में बंद इन घटनाओं का सिंहावलोकन करते हुए चन्द्रशेखर ने भी चरणसिंह की इस राय को सही माना कि नयी पार्टी का गठन करना और आंदोलन की बात करना, दो बातें हैं जो एक साथ नहीं चल सकतीं। उनका ख़याल था कि देश में अब शांतिपूर्ण अहिंसात्मक आंदोलन की तनिक भी गुंजाइश नहीं है।

अपनी डायरी में चन्द्रशेखर ने लिखा—"काका (चरणसिंह) ने बड़ा उत्तम किया। चूं-चूं का मुरब्बा यदि न ही बने तो बड़ा भला है। अगर कहीं बनकर सड़ गया, जो होगा ही, तो एक मुसीबत होगी। हमारे-जैसे लोगों के लिए अलग बैठे रहना भी मुश्किल होगा, और इन सबका साथ निभा पाना तो असंभव जान पड़ता है।"

जिस दुर्गति की उन्हें आशंका थी उसी में उन्हें बाद में फँसना पड़ा।

1962 में जब चन्द्रशेखर राज्य-सभा के सदस्य बनकर दिल्ली आये तो आदर्शवाद उनके दिल में हिलोरें ले रहा था। अधिकतर मंत्रियों और संसद-सदस्यों के रहन-सहन और उनकी जीवन-शैली को देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। जब कभी वह दावतों या पार्टियों में उनके घर जाते तो देखकर हैरान हो जाते कि देश की समस्याओं पर बातचीत करने की बजाय ये नेता अपने मकान के फ़र्नीचर-पर्दों, ड्राइंग-रूम की सजावट व सचिवों और अफ़सरों से अपने संबंधों के बारे में ज्यादा दिलचस्पी लेते थे। चन्द्रशेखर को ऐसा लगा कि इन नेताओं ने गांधीवादी मूल्यों को पूरी तरह भुला दिया है। खुद सादा जीवन बिताकर अपने अफ़सरों के रहन-सहन में तबदीली लाने के बजाय राजनीतिज्ञों ने अफ़सरों की ही नक़ल शुरू कर दी है। एक तरफ़ तो वे त्याग और तपस्या का नाम लेते हैं, संसद-सदस्य या मंत्री के रूप में वे नाममात्र के लिए वेतन स्वीकार करते हैं और दूसरी तरफ़ रईसों की ज़िंदगी की नक़ल में लगे रहते हैं। उन दिनों चन्द्रशेखर को लगा कि यह एक बहुत बड़ा पाखण्ड है।

उनके लिए यह एक तरह का सांस्कृतिक सदमा था। जनता के जिस वर्ग से वह आये थे, वह एकदम भिन्न था, उसकी आशाएँ एकदम भिन्न थीं। आचार्य नरेन्द्रदेव की विचारधारा से ओत-प्रोत वह नेहरू के एकदम भिन्न संसार में पहुँच गये थे, जहाँ राजनीति भी अलग-अलग दर्जों और वेतनों वाली एक नौकरी की तरह थी।

इस धकापेल में शामिल होने का उनका इरादा नहीं था। राजनीति में वह इसलिए नहीं आये थे। इलाहाबाद से राजनीति-विज्ञान में एम० ए० करने के बाद उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में शोध करना चाहा था और विषय भी तय कर लिया था—"राजनीतिक आंदोलन पर आर्थिक सिद्धांतों का प्रभाव।" लेकिन उन्हीं दिनों महान समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्रदेव से उनका संपर्क हुआ और उन्होंने सलाह दी—"अगर देश बरबाद हो रहा हो तो रिसर्च करने से क्या

फ़ायदा ? तुम शोध करके क्या करोगे ? यह तुम्हारे किस काम आयेगा ?"

तब उनके जीवन की धारा ही बदल गयी। 1951 में वह प्रसोपा के होल-टाइमर हो गये और लगभग एक वर्ष बाद ज़िला प्रसोपा के महामंत्री बनकर बलिया चले गये। पार्टी के टुकड़े होने के बाद उन्हें लखनऊ भेज दिया गया, जहाँ वे 1954 में उत्तर प्रदेश प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त सचिव और 1957 में पार्टी के राज्य-सचिव बनाये गये।

जयप्रकाश नारायण से उनका पहला सम्पर्क 1951 में हुआ। उन दिनों उन्होंने इलाहाबाद शहर सोशलिस्ट पार्टी के सचिव के रूप में काम शुरू किया था। तब नौजवानों में जे० पी० एक आदर्श नायक की तरह पूजे जाते थे। चन्द्रशेखर उनके व्यक्तित्व से बेहद प्रभावित हुए, लेकिन वह कभी उनके अंध-भक्त नहीं बने। दरअसल जे० पी० जब सर्वोदय आंदोलन में शामिल हो गये तो इस फ़ैसले की आलोचना करने वालों में चन्द्रशेखर सबसे प्रमुख थे। इनकी आलोचना का स्वर भी बहुत तीखा था। उन्हें ऐसा लगा कि जे० पी० ने नौजवानों की उम्मीदों से छल किया है। "भूमिगत शेर" और "भारत के लेनिन" के नाम से एक ज़माने में विख्यात इस व्यक्ति ने अचानक अपने को राजनीति की मुख्यधारा से काट लिया। चन्द्रशेखर को लगा कि यह अपने से संबद्ध लोगों को दग़ा देना है और राजनीति की सच्चाईयों से मुँह चुराना है।

1957 में चन्द्रशेखर लोक-सभा का चुनाव लड़े, लेकिन हार गये। इसके पाँच वर्ष बाद वह राज्य-सभा के लिए प्रसोपा की ओर से चुने गये। उन दिनों नेहरू कमज़ोर पड़ते जा रहे थे और उन्होंने सारे "अच्छे सोशलिस्टों" से अपील की थी कि वे कांग्रेस के हाथ मज़बूत करें। चन्द्रशेखर उन लोगों में थे जिन्हें प्रसोपा के अंदर एक अजीब-सी बेचैनी महसूस हो रही थी। समाजवादी आंदोलन बुरी तरह टुकड़े-टुकड़े हो गया था और उसके नेताओं में कोई जान नहीं रह गयी थी। पुराने ज़माने के दिग्गजों और वर्तमान के बौने लोगों के फ़र्क़ का असर कांग्रेसियों से भी पहले सोशलिस्टों पर पड़ा। चन्द्रशेखर को लगा कि ऐसी पार्टी में बने रहने का कोई मक़सद ही नहीं है, जिसकी देश का भविष्य बनाने में कोई भूमिका न हो। उनके वरिष्ठ साथी अशोक मेहता पहले ही नेहरू-समर्थक हो चुके थे। चन्द्रशेखर अभी उस सीमा तक जाने के लिए तयार नहीं थे और अक्सर अशोक मेहता की आलोचना किया करते थे। लेकिन जब योजना आयोग के उपाध्यक्ष-पद पर मेहता की नियुक्ति का सवाल सामने आया और पार्टी के सदस्यों ने इसका ज़बर्दस्त विरोध किया तो चन्द्रशेखर ने अशोक मेहता का पूरी तरह समर्थन किया। चन्द्रशेखर उन लोगों में थे, जो यह सोचते थे कि देश की योजना बनाना सर्वदलीय काम होना चाहिए और प्रसोपा के किसी व्यक्ति को योजना आयोग का उपाध्यक्ष बनाया जाता है तो इसमें कोई हर्ज नहीं है।

प्रसोपा की राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने जब आयोग का पद ग्रहण करने के अशोक मेहता के फ़ैसले से अपने को अलग कर लिया और उनसे इस्तीफ़ा देने को कहा तो चन्द्रशेखर ने भी पार्टी छोड़ दी।

जनवरी 1965 में वह कांग्रेस पार्टी में शामिल हो गये। बहुतों का कहना है कि वह अशोक मेहता, आई० के० गुजराल, ओम मेहता, राजा दिनेशसिंह तथा अन्य लोगों के साथ "बैंक बेंचर्स क्लब" के सदस्य बन गये। ये सभी समाजवाद की बातें करते थे, पर उनका एकमात्र उद्देश्य देश की नेता के रूप में इन्दिरा गांधी की तस्वीर को उभारना था। चन्द्रशेखर आज ज़ोरदार शब्दों में कहते हैं

कि वह कभी इस 'क्लब' के सदस्य नहीं थे।

उनका कहना है, "दरअसल मैं इस गुट का कड़ा आलोचक था। मैं सोचता था कि यह फ़ालतू लोगों का गुट है जो हवा में बातें करते हैं। एक बार उनमें से कुछ ने यह कहना शुरू किया कि जनता को आंदोलित करने के लिए गांधीजी की तरह सारे देश का भ्रमण करना चाहिए। मैंने छूटते ही सवाल किया कि तुममें से कौन गांधी है! वे,ख़ामोश हो गये।"

लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु से कुछ दिन पूर्व इस गुट की एक बैठक इन्दिरा गांधी के मकान पर हुई। चन्द्रशेखर के कुछ दोस्त इन्दिरा गांधी से मिलने के लिए उन पर दवाव डाल रहे थे। "आपको उनसे एक बार बातचीत करनी चाहिए—उनका कहना था। मैं इन्दिरा गांधी के घर गया और एक घंटे तक उनसे अकेले में बातचीत की। मैंने उनसे साफ़-साफ़ कह दिया कि मैं पार्टी को समाजवादी नहीं मानता हूँ। मैं कोशिश करूँगा कि कांग्रेस को या तो समाजवाद का साधन बना दूँ या उसे तोड़ दूँ। केवल कांग्रेस के प्रति मेरे दिल में कोई प्यार नहीं है।"

ज़ाहिर है, चन्द्रशेखर अपने आदर्शवाद को बहुत महत्व देते थे, शायद ज़रूरत से ज़्यादा। कांग्रेस पार्टी के लिए वह आदर्शवाद एक बोझ था, जिसके बिना भी उसका काम चल सकता था। पर धीरे-धीरे पार्टी में उनकी जगह बनती गयी। नेहरू-परिवार के दो चमचों—राजा दिनेशसिंह व ओम मेहता—से उनकी पहले ही गहरी छनने लगी थी। बलिया के यह उग्र सुधारवादी राजनीति को त्याग व तपस्या समझते थे, लेकिन दिल्ली के उच्च वर्ग की चमक-दमक का उन पर भी असर होने लगा। वह समझने लगे कि उनकी उग्र सुधारवादी तस्वीर व उनका सादा जीवन उनके रास्ते में रुकावट भी है और उनकी पूंजी भी। उनकी यह तस्वीर लोगों के मन को भाती थी, इसलिए उन्होंने तय किया कि चाहे जो हो, इस तस्वीर को बनाये रखेंगे।

1967 में वह सर्वसम्मति से कांग्रेस संसदीय पार्टी के सचिव चुने गये तो सभी को आश्चर्य हुआ। प्रसोपा के उनके एक भूतपूर्व साथी ने कहा कि यह अग्र सुधारवादी अपना काम मज़े में बना रहा है।

यह महज़ इत्तफ़ाक़ की बात है कि वह कांग्रेस पार्टी के एक "क्रुद्ध युवा" के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हो गये। योजना आयोग की एक बैठक के दौरान, जिसमें वह सार्वजनिक लेखा समिति के सदस्य की हैसियत से मौजूद थे, उन्हें औद्योगिक लाइसेंसिंग के बारे में हज़ारी रिपोर्ट की चर्चा एक अधिकारी के मुँह से सुनने का मौक़ा मिला। उन्होंने रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि प्राप्त कर ली, जिसमें बिड़ला के उद्योग-समूह के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी थी। उन्होंने इस संबंध में प्रधानमंत्री और कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी को कई ज्ञापन दिये, लेकिन कोई नतीजा नहीं निकला।

अचानक चन्द्रशेखर बिड़ला-साम्राज्य के भयानक आलोचक बन गये थे। उन दिनों मोरारजी देसाई वित्त-मंत्री थे और राज्य-सभा में उनके और चन्द्रशेखर के बीच कई बार मुठभेड़ हो गयी। अनेक लोग उन्हें "युवा-तुर्क" कहने लगे। उनके बारे में कहा जाने लगा कि "वह कांग्रेस के अंदर ऐसा आंदोलन चला रहे हैं, जिससे पुराने दक्षिणपंथी नेता अलग पड़ जायें।"

चन्द्रशेखर को यह विश्वास होने लगा कि नौकरशाहों और बड़े व्यापारियों के प्रभुत्व वाले इस समाज में वह एक विद्रोही हैं। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी थे जो कहते थे कि चन्द्रशेखर किसी दूसरे औद्योगिक संस्थान के लिए काम करते हैं और

यह औद्योगिक संस्थान विड़ला-समूह की अपेक्षा किसी सूरत में ज्यादा अच्छा नहीं है। 1968 में कांग्रेस के फ़रीदाबाद अधिवेशन में अखिल भारतीय कांग्रस कमेटी के एक नौजवान सदस्य ने चन्द्रशेखर पर आरोप लगाया कि शांतिप्रसाद जैन-जैसे उद्योगपति उनकी मदद कर रहे हैं। चन्द्रशेखर के मित्र युवा तुर्क मोहन धारिया ने इसका तेज़ स्वर से विरोध किया और कांग्रेस-अध्यक्ष निजलिंगप्पा से आग्रह किया कि झूठे आरोप लगाने की अनुमति न दी जाये। निजलिंगप्पा ने इस आपत्ति पर कोई ध्यान न दिया और कहा कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य जो चाहें कह सकते हैं।

चन्द्रशेखर बहुत ग़ुस्से में थे और इन्दिरा गांधी के कमरे में क्रोध से टहलते हुए उन्होंने कहा कि यदि झूठे आरोपों का यह सिलसिला जारी रहा तो अधिवेशन में ही वह निजलिंगप्पा का पर्दाफ़ाश करेंगे और बतायेंगे कि उद्योगपतियों के साथ उनका क्या रिश्ता है। चन्द्रशेखर का कहना है, "इन्दिरा गांधी ने ऐसा करने से मुझे रोका। कामराज भी वहाँ मौजूद थे और उन्होंने भी मुझे रोका। मैं बहुत ग़ुस्से में था और मैंने कहा कि अधिवेशन में मैं खुलेआम कहूँगा कि वे लोग निजलिंगप्पा को बचा रहे हैं। कामराज ने रामसुभगसिंह को निजलिंगप्पा के पास भेजा और कहलवाया कि वह उस सदस्य से माफ़ी माँगने को कहें जिसने आरोप लगाये थे। और फिर कामराज ने खुद भी निजलिंगप्पा को फटकारा। बाद में उस सदस्य ने माफ़ी माँग ली।"

तूफ़ान शांत हो गया, लेकिन इस घटना से एक बात साबित हो गयी कि ये नेता-गण, जो खुद शीशे के मकानों में रहते हैं, दूसरों पर पत्थर नहीं फेंक सकते। चन्द्रशेखर ने सोचा कि वह विजयी हो गये हैं। उन्हें यह भी पता चल गया कि पाखंड और भ्रष्टाचार के बीच गुलछर्रे उड़ाने वाले जमघट में उग्र सुधारवादी का जामा पहनकर आदर्श नायक बनना कितना आसान है।

चन्द्रशेखर व्यापारियों और उन दोस्तों के बीच फ़र्क़ करना चाहते हैं, जो इत्तफ़ाक़ से व्यापार कर रहे हैं। उनके ऐसे बहुत-से दोस्त हैं जो व्यापार करते हैं, उनको घेरे रहते हैं और उनके 'उग्र सुधारवाद' का पूरा-पूरा फ़ायदा उठाते हैं। ऐसे ही लोगों में से एक व्यक्ति की कहानी सुनकर पता चलता है कि रंक से कैसे राजा बनते हैं!

1960 के दशक के शुरू के वर्षों में यह व्यक्ति मुज़फ्फरनगर के एक बीड़ी-निर्माता की दुकान में मामूली नौकर था। कुछ ही वर्षों के अंदर वह दुकान फ़ेल हो गयी और यह आरोप सुनने में आया कि उस व्यक्ति ने अपने मालिक की काफ़ी रक़म का ग़बन किया है। उसने खुद बीड़ियाँ बनाने का काम शुरू किया और वह उद्यमी तो था ही, अपनी बीड़ियों के प्रचार के लिए अक्सर विज्ञापन करने वालों का दल लेकर स्वयं इधर-उधर घूमता। कुछ ही दिन के अंदर उसने एक कांग्रेसी विधायक के घर के पास मकान किराये पर लिया और धीरे-धीरे विधायक से उसकी काफ़ी पटने लगी। उसने ज्योतिष का भी थोड़ा ज्ञान प्राप्त कर लिया। यह ज्ञान राजनीतिज्ञों से निपटने के लिए बहुत महत्वपूर्ण साबित होता है। इस व्यक्ति को सी० बी० गुप्ता के बड़े मशहूर सिपहसालार बनारसीदास का हाथ देखने का मौक़ा मिला। उसकी कुछ भविष्यवाणियाँ सच भी निकलीं। इससे सरकार से बस का एक परमिट पाने में उसे मदद मिली और किसी दूसरे की साझेदारी में उसने यह व्यापार शुरू करने की बात की। फिर उसने लगभग 45

हज़ार रुपये में अपना शेयर बेच दिया। अब वह और बड़े सपने देखने लगा। तब तक उसके दोस्त राजनीति की दुनिया में अपनी जगह बना चुके थे और उसकी मदद के लिए तैयार थे।

उस उद्यमी व्यक्ति ने दो बीड़ी-एजेंटों के साथ मिलकर एक रोलिंग-मिल शुरू की। अपने साझीदारों से उसने एक लाख बीस हज़ार से भी अधिक रुपये इकट्ठा किये और उद्योग-विभाग से काफ़ी ऋण लेने का इंतज़ाम कर लिया। उसने कुछ और ऋण लिया और काला बाज़ार से लोहे की कतरनें इकट्ठी कीं। अब वह एक स्टील फ़ैक्टरी का मालिक बन गया। उसने कलकत्ता की यात्रा की और वहाँ से हंगरी की एक बेकार पड़ी भट्ठी ख़रीद लाया।

यह व्यक्ति बीड़ी-निर्माता से अब इस्पात-निर्माता बन चुका था। उसने प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में अपनी फ़र्म का रजिस्ट्रेशन करा लिया। उसने प्रलोभनों का इस्तेमाल करके कई ऐसे राजनीतिज्ञ भी तैयार कर लिये, जो उसका ढोल बजा सकें। कई विधायक और संसद-सदस्य उसका आभार मानते थे और इनमें से एक या दो को तो वह नियमित वेतन भी देता था।

इन्हीं दिनों 'युवा-तुर्क' चन्द्रशेखर ने इस व्यक्ति को बढ़ावा देना शुरू किया। वह बलिया में संयुक्त क्षेत्र में एक लघु इस्पात कारखाना स्थापित करना चाहता था, जिसमें आठ करोड़ रुपये से भी अधिक की लागत लगनी थी। इस परियोजना के पक्ष में माहौल तैयार करने के लिए तमाम विधायकों को ठीक किया गया। उसके समर्थकों में सबसे आगे एक 'उग्र सुधारवादी' के रहने से उत्तर प्रदेश सरकार भी इस परियोजना को किसी-न-किसी रूप में आगे बढ़ाने में दिलचस्पी लेने लगी। एक उच्च-स्तरीय समिति की स्थापना की गयी और आश्वासन दिया गया कि इस क्षेत्र के अन्य दावेदारों से कहा जायेगा कि वे उसके पक्ष में अपने प्रार्थना-पत्र वापस ले लें।

अब भूतपूर्व बीड़ी-व्यापारी ने बड़े व्यापारियों की सारी चालें सीख ली थीं। उसने अकबर होटल में कुछ कमरे अपने नाम से सुरक्षित कर रखे थे, जहाँ मन-बहलाव के लिए हर संभव चीज़ उपलब्ध थी। वह व्यक्ति बाद में रौनकसिंह और बी० आर० मोहन की क़तार में शामिल कर लिया गया और मारुति प्राइवेट लिमिटेड का एक डाइरेक्टर हो गया। लेकिन यह बता देना चाहिए कि उस आदमी से चन्द्रशेखर की दोस्ती आज की नहीं है—यह दोस्ती तब से है जब वह मुज़फ्फरनगर में बीड़ियाँ बनाता था।

चन्द्रशेखर एण्ड कम्पनी का एक दूसरा 'दोस्त' गोरखपुर का एक नौजवान सरदार है, जिसके बारे में कहा जाता है कि भारत-नेपाल-सीमा पर चलने वाले जाने-माने क़िस्म के व्यापार से उसका संबंध है और अन्य तरह-तरह के कारोबार से जुड़े होने के साथ-साथ पत्रकारिता के क्षेत्र में भी उसकी पैठ है। अख़बार या पत्रिका कैसी भी हो, यह हमेशा अन्य धंधों पर पर्दा डालने के लिए बड़े अच्छे आवरण का काम करती है। सरदार के पास अपने दोस्तों और संरक्षकों के लिए एक 'खुला मकान' है, जो तरह-तरह के आमोद-प्रमोद के साधनों से सम्पन्न है। लेकिन यह बता देना ज़रूरी है कि सरदार के पिता बहुत संत स्वभाव के और धर्मभीरु व्यक्ति थे।

इतना काफ़ी होना चाहिए। ज़्यादा गहराई तक जाने पर अंधकार की इतनी परतें मिलेंगी कि देखने से भी नफ़रत होगी।

उग्र सुधारवाद की यह तस्वीर दिन-ब-दिन तेज़ होती गयी। चन्द्रशेखर का लम्बा क़द, पुष्ट शरीर और आकर्षक दाढ़ी ने इसमें मदद पहुँचायी। पार्टियों, दावतों और समारोहों में उनकी मौजूदगी बहुत साफ़ झलकती है और उनके दोस्त शराब पीकर जब लड़खड़ाते और बड़बड़ाते होते हैं, चन्द्रशेखर फिर भी गंभीर और विचार-मग्न दिखायी देते हैं। वह खुद शराब नहीं पीते, जिससे उनकी तस्वीर में और चार चाँद लग जाते हैं।

इन्दिरा गांधी के साथ उनकी सबसे बड़ी मुठभेड़ अक्तूबर 1971 में शिमला में हुई थी, जब वह देवीजी के आदेशों की अवहेलना करके केन्द्रीय चुनाव समिति का चुनाव जीत गये। इस विजय को अनेक लोगों ने मध्यमार्गी नेतृत्व के विरुद्ध वामपंथियों का विद्रोह कहा था। एक तथ्य जिसे ज़्यादा लोग नहीं जान सके, वह यह था कि चन्द्रशेखर के चुनाव का संचालन शानदार होटल के उस कमरे से हुआ था जिसमें राजा दिनेशसिंह ठहरे हुए थे, जिन्हें इन्दिरा गांधी ने दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया था। दिनेशसिंह इन्दिरा गांधी को अपनी ताक़त दिखाने पर तुले थे। चन्द्रशेखर की मदद करने वालों में कुछ अन्य असंतुष्ट कांग्रेसी भी थे, जिनमें कम-से-कम दो केन्द्रीय मंत्री और एक मुख्यमंत्री शामिल थे। ये लोग देवी-जी को यह बताना चाहते थे कि उनकी हाई कमान के गठन से वे संतुष्ट नहीं हैं।

उग्रवाद का अपना अलग ही आकर्षण है। यह ऐसी शराब है, जिसका नशा फ़ौरन होता है। इससे आपके अंदर यह एहसास पैदा हो जाता है कि आप अन्य लोगों से विशिष्ट हैं। उग्र सुधारवादी के रूप में ख्याति-प्राप्त व्यक्ति सफलता के अपने निजी मानदण्ड स्थापित करता है। यदि किसी राजनीतिज्ञ की उग्रवादिता में ईमानदारी है तो उसके पास ऐसी शक्ति आ सकती है कि कुर्सी पर बैठे लोग बहुत छोटे दिखायी देने लगें। लेकिन यदि उग्रवादिता ऊपरी है, महज़ एक चोला है तो उसी की शान धुँधली लगने लगती है और वह बेचारगी की हालत में पहुँच जाता है। चन्द्रशेखर की पत्रिका **यंग इंडियन** उग्र सुधारवादी संपादकीय टिप्पणियों से भरी रहती थी। भारतीय राजनीति और राजनीतिज्ञों की प्रकृति और शैली समझने के लिए वह बहुत शिक्षाप्रद पत्रिका थी। उसके अंकों में उग्रवाद और अनैतिक व्यापार का अनोखा मिश्रण दिखायी देता। इसके विशेषांकों के अक्षरश: आधे पृष्ठ विज्ञापनों से भरे रहते थे और इन विज्ञापनों में डालमिया और नेवटिया से लेकर मुज़फ्फरनगर के रेनबो स्टील लिमिटेड सहित तरह-तरह के व्यावसायिक संस्थानों और पूँजीपतियों के प्रतिष्ठानों के विज्ञापन शामिल होते थे। पत्रिका के महज़ एक अंक में 274 पृष्ठ विज्ञापनों से भरे देखे गये।

इन सारी बातों से इन आरोपों को बल मिलता है कि युवातुर्क हर तरह के व्यापारियों और उद्योगपतियों के साथ दाँत काटी रोटी का संबंध रखते थे। संसद में युवातुर्क हमले करते थे, लेकिन अक्सर उनकी नीयत पर शुबहा होता था। कहा जाता है कि भूतपूर्व इस्पात-मंत्री मोहनकुमारमंगलम पर संसद के अन्दर और बाहर लगातार इसलिए हमले किये जाते रहे कि उन्होंने बोकारो इस्पात कारखाने को अमेरिकियों के हाथ में नहीं जाने दिया। आज भी उस ज़माने में राजा दिनेशसिंह के मकान पर होने वाली इन उग्र सुधारवादियों की गुप्त बैठकों के क़िस्से सुने जाते हैं। वहाँ से पूरी तैयारी करके ये लोग संसद में पहुँचते थे और बोकारो से दस्तूर एण्ड कम्पनी के निकाले जाने के बारे में कुमारमंगलम पर ऐसे सवालों की बौछार शुरू कर देते थे, जिनका मक़सद उन्हें अपमानित करने के

अलावा और कुछ नहीं था। दस्तूर एण्ड कम्पनी ने इस्पात-परियोजना को अमेरिकियों के हाथ में देने की सिफ़ारिश की थी।

ये थे उग्र सुधारवादी !

टिप्पणियाँ

1. वेलेस हैंगन द्वारा आफ़्टर नेहरू हू में उद्धृत।
2. राज्य-सभा के नव-निर्वाचित सदस्य दयानंदसहाय से लेखक की वातचीत। सहाय विहार के एक युवा व्यापारी हैं और जे० पी० तथा चन्द्रशेखर के अनुयायी हैं। उनकी पत्नी विहार में जनता-सरकार में मंत्री हैं।
3. दयानंदसहाय के साथ लेखक की वातचीत।
4. चन्द्रशेखर के साथ लेखक की वातचीत।

8

वाजपेयी--"नेहरू का एक नया रूप"

कीव (सोवियत संघ) में भारतीय छात्रों को प्रधानमंत्री देसाई अपना उपदेश पिलाने में लगे थे—"शराब मत पियो...अपना खाना खुद पकाओ...अगर स्कॉलरशिप काफ़ी नहीं है तो यहाँ आने के लिए कहा किसने था...बोरिया-बिस्तर बाँधो और घर जाओ...।" बराबर बैठे वाजपेयी मुसकरा रहे थे और उपदेश का मज़ा ले रहे थे।

देसाई के अध्यापकीय प्रवचन से आहत लड़के विदेश-मंत्री से दो-चार बात करने के लिए वाजपेयी के गिर्द जमा हुए। वाजपेयी के दोस्ताना अंदाज़ से लड़कों का हौसला बढ़ा और उनमें से एक ने धीरे से कहा, "इतनी भयंकर ठंड में एकाध घूंट गले से नीचे उतारे बिना काम कैसे चल सकता है?" वाजपेयी ने बड़ी चौकस निगाहों से चारो तरफ़ देखा—कहीं देसाई इतने नजदीक तो नहीं हैं कि सुन लें। फिर कनखी मारकर धीरे से बोले, "पियो, पियो!" इन दो शब्दों से ही वाजपेयी ने उन नौजवान छात्रों के साथ एक दोस्ताना संबंध क़ायम कर लिया।

प्रधानमंत्री के सम्मान में क्रेमलिन में भोज का आयोजन था। सोवियत-नेता ब्रेझनेव मेहमानों का स्वागत कर रहे थे और घूम-घूमकर लोगों से बातचीत कर रहे थे। जब वह एक वरिष्ठ भारतीय पत्रकार के पास पहुँचे तो बड़ी गर्मजोशी के साथ हाथ मिलाते हुए बोले—"मुझे खेद है कि आपके प्रधानमंत्री शराब नहीं छूते, पर उम्मीद है आप उनकी कसर पूरी कर लेंगे।" दरअसल उन्हें यह बात अटलबिहारी वाजपेयी से कहनी चाहिए थी, क्योंकि वह अपने कमज़ोर पेट की परवाह किये बिना टेबुल पर इस तरह टूट पड़े थे, जैसे मछली को पानी मिल गया हो।

जब तक साउथ ब्लॉक (विदेश-मंत्रालय) में वाजपेयी हैं, तब तक विदेशों में फैले भारतीय राजनयिकों को चिंतित होने की ज़रूरत नहीं। नयी दिल्ली में उनसे संवाददाताओं ने पूछा कि क्या भारतीय दूतावासों में भी शराबबंदी लागू होगी? वाजपेयी ने एक आँख दबाकर अपने उसी ख़ास अंदाज़ में जवाब दिया, "कोई उम्मीद नहीं।" पत्रकार गद्‌गद मुद्रा में बाहर निकले, "कैसा प्यारा आदमी है!"

लगता है, कम्युनिस्टों को भी वाजपेयी बहुत प्रिय हैं। आप वामपंथी बुद्धिजीवियों से बात करिये और वे राशन-पानी लेकर आर० एस० एस० और जन संघ पर टूट पड़ेंगे, लेकिन वाजपेयी का नाम आते ही उनकी आवाज़ में मिठास आ जाती है—"ओह, वाजपेयी की तो बात ही अलग है। वह बहुत उदार हैं, उनके अन्दर हिन्दू कट्टरतावाद नहीं है। यही वजह है कि आर० एस० एस० के लोग भी उन पर भरोसा नहीं करते।" ऐसा लगता है, जैसे कम्युनिस्ट वाजपेयी को जन संघ में अपना आदमी समझते हों—वे उनकी तारीफ़ के पुल बाँध देते हैं। जैसे-जैसे आर० एस० एस० के कट्टर लोगों का हमला उन पर तेज़ होता जाता है, वाजपेयी वामपंथियों के चहेते बनते जाते हैं।

बलराज मधोक का कहना है कि वाजपेयी ने उनसे एक बार बताया था—"अगर मैं आर० एस० एस० में शामिल नहीं हुआ होता तो मैं निश्चय ही कम्युनिस्ट बन गया होता।" वाजपेयी 1941 में आ० एस० एस० के सदस्य बने, जब उनकी उम्र महज़ 15 साल थी। लेकिन वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भी सदस्य (1942-43 में) रह चुके हैं और 1945 में वह स्टूडेंट फ़ेडरेशन से भी संबद्ध थे।

एक बार वियतनाम की यात्रा से वापस लौटने पर वाजपेयी ने छापामार-युद्ध के सफलतापूर्वक नेतृत्व के लिए हो ची-मिन्ह की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें "आधुनिक शिवाजी" कहा था।

सितम्बर 1971 में, जब वह जन संघ के अध्यक्ष थे, मास्को की यात्रा पर गये। वहाँ से उन्होंने अपने मित्रों को एक खुला पत्र लिखा कि विदेश आने पर मालूम होता है कि भारत आज कितना अकेला पड़ा है, उसका कोई भी मित्र नहीं है। उन्होंने आगे लिखा—"आज सोवियत रूस को भी भरोसेमंद दोस्तों की बड़ी ज़रूरत है। अगर भारत इस तथ्य को महसूस कर सके और इसके अनुसार अपनी नीतियों को ढाल सके तो अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सोवियत रूस की मित्रता का इस्तेमाल कर सकता है। लेकिन भारत क्या यह कर पायेगा?"

वाजपेयी जवाहरलाल नेहरू के घोर प्रशंसक रहे हैं और उनकी विदेश-नीति की बुनियादी बातों का समर्थन करते रहे हैं। 1957 में लोक-सभा में अपने प्रारंभिक भाषणों में उन्होंने कहा था कि यदि कांग्रेस की जगह पर कोई दूसरी पार्टी भी सत्ता में आती और यदि नेहरू की जगह कोई दूसरा व्यक्ति प्रधानमंत्री होता तो भी हमारा देश दोनों महाशक्तियों से अपने को अलग रखने तथा अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर स्वतंत्र निर्णय लेने की नीति अपनाता। वाजपेयी ने लोक-सभा में अपने पहले भाषण से ही लोगों पर काफ़ी प्रभाव डाला था। उनके भाषण का यह अंश आज भी याद किया जाता है। "बोलने के लिए वाक्पटुता की आवश्यकता पड़ती है लेकिन चुप रहने के लिए वाक्पटुता और संयम दोनों ज़रूरी हैं।"—यह बात उन्होंने अनेक अंतर्राष्ट्रीय झगड़े-झंझटों में अनावश्यक रूप से भारत के उलझ जाने की आलोचना करते हुए कही थी। उनका ख़याल था कि इस तरह के झगड़ों में, जिनसे हमारा कोई मतलब नहीं, भारत को अपनी टाँग नहीं अड़ानी चाहिए। विरोधी दल के इस नये सदस्य की वाक्पटुता और शैली से काफ़ी प्रभावित नेहरू ने सदन को बताया कि वह खुद भी नहीं चाहते हैं कि दुनिया के सारे मसलों में अपने-आपको फँसाये रखें, लेकिन उन्होंने कहा, "मैं क्या कर सकता हूँ? वे मुझे चुप रहने ही नहीं देते।"

1960 वाले दशक के प्रारंभ में वाशिंगटन-स्थित भारतीय दूतावास के एक

समारोह में डाग हैमरशोल्ड से वाजपेयी का परिचय कराते हुए नेहरू ने कहा था—"भारत के उभरते हुए नौजवान सांसद।"

नेहरू की मृत्यु पर वाजपेयी ने अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा था—"सूरज डूब गया है।" उन्होंने नेहरू को बेहद ईमानदार और आदर्शवादी बताते हुए कहा था, "नेहरू कभी किसी प्रकार के समझौते से नहीं डरे, लेकिन उन्होंने कभी डरकर समझौता भी नहीं किया।" वाजपेयी उस दिन इतने भाव-विह्वल हो गये कि उनका गला भर आया था और उनकी आँखें डबडबा आयी थीं।

आज भी नेहरू का ज़िक्र आने पर वह भाव-विभोर-से हो जाते हैं। हाल ही में प्रकाशित एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा, "वे महान नेता थे। उन्होंने ग़लतियाँ की होंगी, लेकिन कौन ग़लतियाँ नहीं करता? लेकिन उन्होंने भारतीय राजनीति और संस्कृति को एक गरिमा और आभिजात्य प्रदान किया और उन्हें समृद्ध किया।"

वाजपेयी कई तरह से नेहरू की कार्बन-कॉपी ही हैं—यह कथन जनता पार्टी के युवा सांसद सुब्रह्मण्यम स्वामी का है। स्वामी वाजपेयी के घोर विरोधी माने जाते हैं। कहा जाता है कि स्वामी के इस वाजपेयी-विरोध में उन्हें कट्टरपंथी आर० एस० एस०-कार्यकर्ताओं का पूरा सहयोग प्राप्त है। "वाजपेयी भी नेहरू की तरह ही निरर्थक हैं। मैं नहीं समझता कि उनकी अपनी कोई विचारधारा है।"

अपनी ही पार्टी के अंदर से वाजपेयी पर इस प्रकार का हमला पहली बार नहीं हो रहा है। बांगलादेश के युद्ध के बाद वाजपेयी ने इन्दिरा गांधी की प्रशंसा करते हुए उन्हें दुर्गा का अवतार कहा था और जन-संघियों के हमले का शिकार बने थे। संसद के अपने उस भाषण के बाद वाजपेयी ने इन्दिरा गांधी को एक पत्र भी लिखा था। उस पत्र में वाजपेयी ने लिखा कि इस युद्ध में विजय का श्रेय सिर्फ़ इन्दिरा गांधी को ही मिलना चाहिए। इन्दिरा गांधी ने उस 'प्रमाण-पत्र' का जमकर इस्तेमाल किया। जो भी उन दिनों इन्दिराजी के घर जाता था, उसे वे वह पत्र ज़रूर दिखाती थीं। यह उस दल के अध्यक्ष का पत्र था, जिसे इन्दिरा गांधी का सबसे बड़ा विरोधी माना जाता था।

1972 में जन संघ के भागलपुर-अधिवेशन में कुछ सदस्यों ने इस पत्र पर काफ़ी शोर-गुल मचाया। उन लोगों ने इस मुद्दे पर लंबी बहस की माँग की। जनरल कौंसिल की गुप्त बैठक आरंभ हुई। बैठक आरंभ होने से पहले वाजपेयी ने स्पष्ट कर दिया कि उनका इस बैठक की अध्यक्षता करना उचित नहीं होगा, क्योंकि बैठक में आलोचना के विषय वे ही होंगे। उनका आग्रह था कि वे मंच पर भी नहीं बैठेंगे, बल्कि बहस के दौरान वे दर्शकों के बीच रहेंगे। उपाध्यक्ष डॉक्टर भाई महावीर को अध्यक्षता करने के लिए कहा गया। बहस की समाप्ति के बाद वाजपेयी ने कहा कि मैं माननीय सदस्यों की भावनाओं को समझ रहा हूँ और मैं यह भी महसूस कर रहा हूँ कि मेरे उस पत्र के कारण दल को नुक़सान उठाना पड़ा है। उन्होंने कहा, "मैंने यह नहीं सोचा था कि इन्दिरा गांधी और उनकी पार्टी के लोग मेरे उस पत्र का दुरुपयोग करेंगे। मैं भ्रम में था।"

आज नये सिरे से हो रहे आक्रमण से वाजपेयी तनिक भी विचलित नहीं हैं। "हमें जनता पार्टी की विदेश-नीति को अमल में लाना है, न कि जन संघ की विदेश-नीति को।" जब भी कोई उन पर आरोप लगाता है कि नयी विदेश-नीति लागू करने के स्थान पर वह नेहरू के नक़्शे-क़दम पर चल रहे हैं तो उनका यही सीधा जवाब होता है।

वह लोगों को यह याद दिलाते हैं कि जन संघ के अध्यक्ष के रूप में भी उन्होंने भारत-सोवियत मैत्री-संधि का स्वागत किया था। वह समझते हैं कि उनके आज के अनेक कार्यों व वक्तव्यों का खंडन करने के लिए उनके पुराने भाषण दोहराये जा सकते हैं। बांगलादेश-युद्ध के तुरंत बाद वाजपेयी ने माँग की थी कि भारत सरकार को पाकिस्तान पर मुक़दमा दायर करके उचित हर्जाने की माँग करनी चाहिए, क्योंकि युद्ध पाकिस्तान ने ही किया था। वाजपेयी ने उन दिनों यह माँग भी की थी कि बांगलादेश में भयानक नर-संहार के लिए ज़िम्मेदार लोगों पर 'न्यूरेमबर्ग ट्रायल' जैसा मुक़दमा चलाया जाना चाहिए और अपराधियों को सज़ा दी जानी चाहिए। इस तरह के और भी सैकड़ों वक्तव्य हैं, जो आज वाजपेयी को उलझन में डाल सकते हैं। लेकिन वाजपेयी पुराने वक्तव्यों से विचलित होने के बजाय विदेश जाने पर उन्हें ताक पर रख देते हैं।

अभी हाल में वे विदेश-मंत्री की हैसियत से पाकिस्तान गये, तो राष्ट्रपति ज़िया उल-हक़ ने उनके पाकिस्तान संबंधी अनेक पुराने वक्तव्यों का हवाला दिया। एकदम निरस्त्र कर देने वाली सहजता के साथ वाजपेयी ने उत्तर दिया, "मैं अपना अतीत भूल चुका हूँ। क्या मैं उम्मीद करूँ कि आप भी ऐसा ही करेंगे ?" दोनों नेताओं के बीच की दीवार उसी क्षण रेत की तरह ढह गयी।

अपनी मस्त और घुमक्कड़ जसी आदतों के लिए मशहूर वाजपेयी ने विदेश-मंत्रालय के काम को आश्चर्यजनक व्यवहार-कुशलता व सरसता प्रदान की है। जिन दिनों वह विरोधी दल के नेता थे उन दिनों की कई कहानियाँ आज भी लोग याद करते हैं। अगर उनके मन में आ गया तो उन्होंने रामलीला मैदान में ही सोकर रात गुज़ार दी और अगले दिन दिल्ली के किसी फुटपाथ पर खोंमचे वाले से गोलगप्पे खाते हुए भी उन्हें देखा जा सकता था।

एक दिन एक पत्रकार ने देखा कि जन संघ-अध्यक्ष वाजपेयी अपने फ़िरोज़शाह रोड-स्थित निवास-स्थान के बाहर टैक्सी के इंतज़ार में खड़े हैं। उन्हें विट्ठलभाई पटेल हाउस में एक बैठक में जाना था। उस पत्रकार ने अपना स्कूटर रोक दिया और बहुत हिचकिचाते हुए उसने पीछे की सीट पर बैठने का आग्रह किया। उसे पूरा-पूरा यक़ीन था कि वह कोई-न-कोई बहाना बनाकर बैठेंगे नहीं। पर उसके आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा, जब उसने देखा कि बड़ी ख़ुशी-ख़ुशी वाजपेयी उसके स्कूटर की पीछे की सीट पर बैठ गये। विदेश-मंत्री बनने के बाद भी वाजपेयी एक दिन रामलीला मैदान में जनता के साथ ज़मीन पर बैठे देखे गये, जबकि जनता पार्टी के अन्य नेता मंच से भाषण दे रहे थे।

वाजपेयी की ये हरकतें मात्र दिखावा नहीं हैं। वे बहुत ही सीधे-सादे और मस्त तबियत के आदमी हैं—उनके अंदर किसी तरह का ढोंग नहीं है। वह ओबेराय इंटरकांटीनेंटल का शानदार खाना छोड़कर दिल्ली की पराँठे वाली गली में खड़े-खड़े मनपसंद भोजन करना ज्यादा पसंद करेंगे।

वाजपेयी अक्सर कहते हैं कि राजनीति में आकर उन्होंने सबसे बड़ी ग़लती की थी। उनकी इच्छा थी कि वह अध्ययन के क्षेत्र में जायें। उनके पिता उत्तर प्रदेश में विद्यालय-निरीक्षक थे और पिता के कारण उनके अंदर साहित्यिक रुझान शुरू से ही पैदा हो गया था। नौकरी से रिटायर होने के बाद उनके पिता ने अपने पुत्र के साथ क़ानून की पढ़ाई शुरू की। पिता और पुत्र एक ही क्लास में पढ़ने लगे। इतना ही नहीं, दोनों कानपुर में एक ही होस्टल में और एक ही कमरे में

साथ-साथ रहते थे।

वाजपेयी अपने छात्र-जीवन में अच्छी कविताएँ लिख लेते थे, या कम-से-कम अच्छी कविताएँ लिखने का दावा करते थे, इसलिए उन्हें **राष्ट्रधर्म** नामक एक मासिक-पत्रिका में संपादक का काम मिल गया। यहाँ उन्हें संपादकीय टिप्पणियाँ लिखने के अलावा कम्पोज़िंग और प्रूफ़-रीडिंग भी करनी पड़ती थी और सामग्री कम हो जाने पर अपनी गद्य और पद्य-रचनाओं से पन्ने भी भरने पड़ते थे। बाद में वह जन संघ के साप्ताहिक पत्र **पाञ्चजन्य** के संपादक हो गये, जो उन दिनों लखनऊ से निकलता था। लगभग एक वर्ष तक दिल्ली से निकलने वाले पार्टी-दैनिक **वीर अर्जुन** के भी संपादक रहे।

कुछ दिनों तक वाजपेयी जन संघ के संस्थापक डॉ० श्यामाप्रसाद मुखर्जी के निजी सचिव के रूप में भी काम कर चुके हैं। डॉ० मुखर्जी ने 1951 में जन संघ की स्थापना की। 1957 में वाजपेयी पहली बार लोक-सभा का चुनाव जीतकर आये और इसके बाद से ही राजनीतिक क्षेत्रों में उन्हें लोग जानने लगे। जल्दी ही उन्होंने एक सांसद और वक्ता के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली। ज़बान को हल्की-सी जुंबिश देकर और शायराना अंदाज़ में अपनी बातें कहकर वह अपने श्रोताओं का मन जीत लेते थे।

फ़रवरी 1968 में जन संघ के अध्यक्ष दीनदयाल उपाध्याय की हत्या हो गयी और जन संघ के सामने एक बहुत बड़ी समस्या आयी कि नया अध्यक्ष कौन हो। नानाजी देशमुख ने, जिनको कुशल संगठनकर्ता के रूप में काफ़ी ख्याति मिल चुकी थी, सुझाव दिया कि अध्यक्ष-पद के लिए कोई ऐसा व्यक्ति ढूँढ़ा जाये जिसके व्यक्तित्व में जादू हो। उस समय सबके दिमाग़ में एकमात्र नाम अटलबिहारी वाजपेयी ही आया—तब उनकी उम्र महज 42 साल थी, लेकिन पार्टी में जन-नेता के रूप में उनकी बराबरी का दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था।

वाजपेयी को जब बताया गया कि उन्हें अध्यक्ष बनाने पर विचार किया जा रहा है तो वह रो पड़े,[3] "आप चाहते हैं कि मैं दीनदयालजी का स्थान लूं? मैं क़तई इस पद के लायक़ नहीं हूँ।" लेकिन उनसे बार-बार आग्रह किया गया तो उन्होंने इस ज़िम्मेदारी को अपने कंधों पर ले लिया।

लेकिन एक समस्या थी। वाजपेयी उन्मुक्त स्वभाव के व्यक्ति हैं और आर० एस० एस० के कठिन नियमों और अनुशासन-संबंधी पाबंदियों में उन्हें बाँधना मुश्किल था। स्वयं उनको ऐसा लगा कि उनके अंदर बैठे आज़ाद पक्षी का दम घुट रहा हो। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ कभी ऐसा संगठन नहीं रहा, जहाँ विचार को महत्व दिया जाता हो और यही कारण है कि संगठन के लोगों की दृष्टि हमेशा कार्यकर्ताओं के चरित्र और अनुशासन पर रहती है। इससे भी बड़ी बात यह है कि जन संघ के अंदर कोई कितने भी ऊँचे पद पर क्यों न पहुँच जाये, उसके लिए आर० एस० एस० का निर्देश हमेशा सर्वोपरि रहता है। वह अनुशासन और नियमों की सँकरी गली है, जिसमें शराब और स्त्री का नाम लेना भी मना है।

वाजपेयी की जीवन-शैली के बारे में सही या ग़लत कई तरह की बातें कही जाने लगीं। अक्सर ये ख़बरें आर० एस० एस० और जन संघ के स्रोतों से ही प्रसारित होती थीं। बलराज मधोक का कहना है कि वाजपेयी के व्यक्तिगत जीवन के बारे में पार्टी-सदस्य तरह-तरह की शिकायतें लाते थे, लेकिन उन्होंने सबसे बराबर यही कहा कि "पहले किसी नेता को आसमान पर चढ़ाना और

फिर अफ़वाहों का सहारा लेकर उसे नीचे खींचना उचित नहीं है।" पहले तो मधोक का ख़याल था कि वाजपेयी भी उनकी तरह आर० एस० एस० के प्रभुत्व के ख़िलाफ़ रहे हैं, लेकिन फिर उन्होंने समझ लिया कि "वाजपेयी हमेशा से कमज़ोर व्यक्ति हैं और उनके अंदर इतना साहस नहीं है कि वह किसी चीज़ का विरोध कर सकें।" कुछ लोगों का ख़याल था कि वाजपेयी की "कमज़ोरियों" से लाभ उठाकर आर० एस० एस० उनको अपने क़ब्ज़े में रख रहा है। संघ उनका पीछा छोड़ नहीं सकता, क्योंकि उनके पास दूसरा ऐसा कोई नेता नहीं था, जिसकी पार्टी के बाहर इज़्ज़त हो व जिसकी ओर जनता आकर्षित हो सके। वाजपेयी के दुश्मनों ने उन दिनों "दल के एक भीतरी व्यक्ति" की ओर से एक पुस्तिका भी प्रकाशित की। "आर० एस० एस० के कुछ प्रचारकों ने, जो उनके साथ 30 डॉक्टर राजेन्द्रप्रसाद रोड, नयी दिल्ली, में उनके निवास में रहते थे, उनकी व्यक्तिगत ज़िंदगी के बारे में तरह-तरह की अफ़वाहें फैला रखी थीं। उनमें से एक ने 1968 के शुरू के दिनों में प्रोफ़ेसर मधोक से भी वाजपेयी के ख़िलाफ़ एक घोटाले की चर्चा की थी। पार्टी के एक पुराने और वरिष्ठ नेता के नाते प्रोफ़ेसर मधोक ने इस तरह की बातें फैलाने के लिए उस प्रचारक को मना किया था।"[3]

आज वाजपेयी के बारे में बातें करते समय मधोक एक किताब का ज़िक्र करते हैं और कहते हैं—"आपको ऑनलुकर पत्रिका में प्रकाशित ताज़ा लेख देखना चाहिए। उसमें जिन तथ्यों का वर्णन किया गया है उससे कहीं ज़्यादा बातें अनकही रह गयी हैं।"

उस लेख की कुछ पंक्तियाँ, जिन्हें वाजपेयी का विरोध करने वाले लोग बड़े उत्साह से सबको दिखाते हैं, पढ़ने में बड़ी भोली-भाली लगती हैं। "श्रीमती कौल नाम की एक अधेड़ रोबीली महिला हैं। उनके पति के बारे में कहा जाता है कि दिल्ली विश्वविद्यालय क्षेत्र में ही रहते हैं। उन महिला को आजकल वाजपेयी के परिवार का एक अभिन्न अंग मान लिया गया है।"[4] लेकिन बात ऐसी नहीं है जैसी बतायी जाती है। उन महिला के पति भी वाजपेयी-परिवार के अभिन्न अंग हैं। कौल-परिवार से वाजपेयी का बहुत पुराना संबंध है और वाजपेयी के उन लोगों के साथ-साथ रहने की बात को कभी छिपाया नहीं गया। पहले भी, ख़ास तौर से अपने कठिन दिनों में, वाजपेयी अक्सर इस परिवार के साथ रहा करते थे।

दिल्ली की एक साप्ताहिक पत्रिका से संबंधित एक महिला-पत्रकार ने हाल ही में विदेश-मंत्री की दिनचर्या का बहुत ग़ौर से अध्ययन किया है। उनके मकान, 7 सफ़दरजंग रोड पर नाश्ते के समय के दृश्य का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है—"...वह खोये-खोये-से नाश्ता कर रहे थे, ऐसा लगता था जैसे वह विदेशी मामलों के बारे में कुछ सोच रहे हों। उनकी प्लेट में एक फ्राई किया हुआ अंडा और दो टोस्ट थे। विदेश-मंत्री ने खाना शुरू ही किया था कि एक छोटा-सा कुत्ता चुपचाप आकर अपने मालिक के पैरों के पास बैठ गया। वाजपेयी टोस्ट का टुकड़ा काट-काट कर उसके आगे डालने लगे और अपना नाश्ता भूलकर उसे खाते देखते रहे। उन्होंने हँसते हुए कहा, 'यह इस घर का पहरेदार है। हम सबको तड़के जगा देता है और जब सारा परिवार जग जाता है तो खुद सोने चला जाता है।' सुनकर हैरानी हुई कि वाजपेयी परिवार की बात कह रहे हैं, जबकि वह अविवाहित हैं। लेकिन उनका सारा ध्यान कुत्ते में लगा था और मैं भी उसी को देख रही थी—वह तब तक खाने की मेज़ पर चढ़कर इत्मीनान से बैठ गया था। मैंने महसूस

किया कि कौल-परिवार उनकी काफ़ी देखभाल रखता है। श्री कौल अधेड़ उम्र के व्यक्ति हैं। वह चाय की चुस्कियाँ लेते हुए अख़बार पढ़ने में तल्लीन थे...तभी बीस-बाईस-वर्षीय नवयुवती खिलखिलाती हुई कमरे में आयी और अपनी ज़िंदा-दिल हँसी तथा 'गुड मार्निंग' की तेज़ आवाज़ से उसने पूरे माहौल में एक रौनक़ पैदा कर दी। यह कौल-दम्पत्ति की पुत्री थी, जो अपने उत्साह, अपनी स्फूर्ति व लगातार बोलने की अपनी क्षमता से यह ज़ाहिर कर देती थी कि उसके ऊपर अपने चाचा का ही असर है। श्रीमती कौल चाय लेकर आयीं...उनकी मेहमान-नवाज़ी और गर्मजोशी से मैं बहुत प्रभावित हुई, लेकिन मुझे लगा कि 'अटलजी' की अनुमति के बिना वह कुछ भी करने में हिचकिचाहट महसूस करती हैं। बाद में दिन के समय श्रीमती कौल से बातचीत के दौरान मुझे पता चला कि वाजपेयी का इस परिवार के साथ कितना पुराना संबंध है। श्रीमती कौल ने ही बताया कि कॉलेज के दिनों में वह और वाजपेयी साथ-साथ पढ़ते थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत एलबम से श्री वाजपेयी की कुछ दुर्लभ तस्वीरें दिखायीं, लेकिन उन्हें देने से इंकार कर दिया...श्रीमती कौल बता रही थीं कि दोनों ने वर्षों तक कितने कष्ट उठाये हैं। उनकी बातें सुनकर उनसे हमदर्दी हो जाना स्वाभाविक है। बड़ी मुश्किल से अपने आँसुओं को रोकते हुए श्रीमती कौल ने बताया कि वाजपेयी और कौल-परिवार को काफ़ी दिनों तक कष्ट झेलने पड़े हैं। उधर नाश्ते की मेज़ पर कुमारी कौल ने अपनी वाक्पटुता से और दूसरों की नक़ल उतारने की क्षमता से काफ़ी मनोरंजक वातावरण पैदा कर दिया था। दरअसल वह वाजपेयी पर भी चुटकी लेने लगी कि वह अपनी खूबसूरती का कितना ख़याल रखते हैं, उन्हें 'क्रीम और सेंट से बहुत प्यार है, और जब कहीं जाना होता है तो तैयार होने में बहुत ज़्यादा समय लगाते हैं।' वाजपेयी के इस शौक के बारे में वह बिना किसी मुरव्वत के बोले जा रही थी और वाजपेयी इन बातों से इंकार कर रहे थे।"

कुँआरे होते हुए भी वाजपेयी के चारों ओर एक सुखी परिवार का माहौल रहता है। यदि आप उनके आलोचकों से पूछिये कि अपने दोस्त के परिवार के साथ रहने में क्या नुकसान है तो वे यही कहेंगे—"मामला बहुत कश्मीरी है।"

वाजपेयी जैसे खुले-दिल और निष्कपट स्वभाव वाले व्यक्ति के साथ ईर्ष्या और नीचता शब्द लगाना बहुत ग़लत होगा, लेकिन उनके पुराने साथी सुब्रह्मण्यम स्वामी उन पर यही आरोप लगाते हैं। हार्वर्ड के इस भूतपूर्व प्रोफ़ेसर का कहना है, "श्री वाजपेयी के अंदर अनेक गुण हैं, लेकिन वह दूसरे को अपने से तेज़ रफ़्तार से तरक़्क़ी करते कभी देख नहीं सकते। उनके अंदर कहीं काफ़ी गहराई में असुरक्षा की भावना बैठ गयी है। छोटी-छोटी बातें उनके लिए ईर्ष्या का कारण हो जाती हैं और वह जलते रहते हैं।"[5] सुब्रह्मण्यम स्वामी खुद भी जन संघ के एक विवादास्पद संसद-सदस्य हैं और कुछ लोग उन्हें "जन संघ का राजनारायण" भी कहते हैं। स्वामी का वाजपेयी पर आरोप है कि उन्होंने उनकी पीकिंग-यात्रा "जानबूझ कर और ईर्ष्यावश" रद्द कर दी, जबकि प्रधानमंत्री तक ने इसके लिए स्वीकृति दे दी थी। वह कहते हैं, "ख़बर मिलते ही वाजपेयी ने भुनभुनाना शुरू कर दिया। पीकिंग-स्थित भारतीय दूतावास ने उन्हें ख़बर दी कि सोवियत-विरोधी होने के नाते मेरा वहाँ ज़बर्दस्त स्वागत होगा। वाजपेयी को अचानक वे तस्वीरें दिखायी पड़ने लगी होंगी, जिनमें मैं चीन के बड़े-बड़े नेताओं के साथ खड़ा होऊँगा...वह किसी दूसरे व्यक्ति की पब्लिसिटी को बर्दाश्त ही नहीं कर सकते। यह भी एक विडम्बना है कि उनकी ही वजह से मैं राजनीति में आया। उन्होंने ही

मुझे रातों-रात जन संघ की कार्यसमिति का सदस्य बनाया और राज्य-सभा के लिए मेरा नाम प्रस्तावित किया...मैं उनका प्रशंसक था...उन्हें पसंद करता था, लेकिन उन्हें यह महसूस होने लगा कि मैं ज्यादा महत्वपूर्ण होता जा रहा हूँ। उन्हें ऐसे लोग पसन्द आते हैं जो चिकनी-चुपड़ी बातें करते हैं—खरी-खरी बातें कहने वालों को वह कभी पसन्द नहीं करते।"

स्वभाव से मुँहफट सुब्रह्मण्यम स्वामी का आरोप है कि इमरजेंसी के दौरान, जब वह भूमिगत थे तो, वाजपेयी ने उनसे कहा था कि वह सरकार के सामने आत्म-समर्पण कर दें। उन्हें इस बात का भी काफ़ी कष्ट है कि वाजपेयी ने ही उन्हें मार्च 1977 के लोक-सभा-चुनाव में उनके अपने क्षेत्र दिल्ली से निकाल बाहर किया। "जब किसी तरह से मेरा नाम कटवाने में उन्हें कामयाबी नहीं मिली तो वह ख़ुद ही दिल्ली से उम्मीदवार बन गये। उन्होंने मुझे बंबई से उम्मीदवार बनाया और इस बात का ध्यान रखा कि मुझे ऐसी जगह से टिकट दिया जाये, जिसे मैं पसन्द न करूँ। मुझे जो निर्वाचन-क्षेत्र दिया गया उसमें आधा क्षेत्र गंदी बस्तियों से भरा था, वहाँ शिव सेना के लोगों का ज़ोर था और दक्षिण-विरोधी भावना बड़ी प्रबल थी।"

स्वामी का कहना है कि वाजपेयी उनका विरोध करने में इस हद तक गये कि अक्तूबर 1977 में उन्होंने स्वामी को पार्टी से निकालने का प्रस्ताव रखा। "वाजपेयी के बारे में सही-सही अंदाज़ लगा पाना बहुत मुश्किल है। अगर उनसे आपके दोस्ताना संबंध हैं तब तो वह बहुत ही अच्छे आदमी हैं, लेकिन अपने प्रतिद्वंद्वियों को वह एकदम बर्दाश्त नहीं कर पाते। वाजपेयी बेहद ढोंगी और पाखण्डी व्यक्ति हैं।"

सुब्रह्मण्यम स्वामी को सबसे ज्यादा धक्का तब लगा जब नानाजी देशमुख ने लोगों से कहना शुरू किया कि स्वामी जो कुछ कहते हैं उनसे मेरा कोई वास्ता नहीं; स्वामी जानें, स्वामी का काम जाने। स्वामी का कहना है, "यह सुनकर मैं तीन दिन तक स्तब्ध बना रहा। दूसरा झटका मुझे जनता संसदीय दल के चुनाव के समय लगा, जब नानाजी ने मुझे हराने की कोशिश की। सबसे बुरी बात तो यह है कि पहले मुझे कहा गया कि मैं उनका यानी जन संघ का उम्मीदवार हूँ, और फिर मुझे सलाह दी गयी कि मैं अपना नाम चुपचाप वापस ले लूँ। लोगों को नीचा दिखाने का यह एक आज़माया हुआ तरीक़ा है। लेकिन मैंने कहा कि कोई बात नहीं, मैं लड़ूँगा। मैं लड़ा और जीत गया और वह भी पहली ही गिनती में...।"

लगता है कि स्वामी को सबसे बड़ी शिकायत इस बात से है कि नानाजी देशमुख को वह हमेशा अपना तरफ़दार समझते थे, लेकिन वह भी वाजपेयी के साथ चले गये।

नागपुर में रह रहे आर० एस० एस० के महंतों के मन की बात जो लोग जानते हैं, उनका कहना है कि आर० एस० एस० के साथ वाजपेयी का झगड़ा भले ही चलता हो, लेकिन जब मौक़ा आता है तो वह हमेशा उनका ही साथ देते हैं।

प्रधानमंत्री देसाई ने जब एक बयान में कहा कि मंत्रियों को आर० एस० एस० के किसी समारोह में नहीं जाना चाहिए तो वाजपेयी ने फ़ौरन स्पष्ट कर दिया कि वह कहीं भी जाने के लिए अपने को स्वतंत्र मानते हैं। इमरजेंसी के दिनों में भी जब विरोधी दलों के नेता विलय की बातचीत में लगे थे और बी० एल० डी०

के कुछ नेताओं ने जन संघ-नेताओं की 'दोहरी सदस्यता' का सवाल उठाया था तो वाजपेयी ने अपने साथी जे० पी० माथुर को एक पत्र लिखकर यह कहा था कि वे सबको स्पष्ट कर दें कि यदि आर० एस० एस० से उनके संबंधों के कारण किसी पार्टी को एतराज़ हो तो वह उस पार्टी में शामिल नहीं होंगे।

कुछ लोगों का तो यह भी कहना है कि जन संघ को अधिक स्वीकार्यता दिलाने के लिए ही वाजपेयी ने उदारवादी रोमानियत का मुखौटा पहना है—आख़िरकार जन संघ आर० एस० एस० की राजनीतिक भुजा ही तो है।

जनता पार्टी में शामिल जन संघ के नेताओं में सबसे अधिक सम्मान मिला है लालकृष्ण आडवाणी को। वह अब तक भारतीय राजनीति में सबसे खरे और ईमानदार नेता साबित हुए हैं। निर्मल, आधुनिक, व्यावसायिक दृष्टि-सम्पन्न, विनम्र, लेकिन ज़रूरत पड़ने पर दृढ़, सूचना और प्रसारण-मंत्री आज के राजनीतिक जगत में एक अनूठे व्यक्ति हैं। हालाँकि वह कभी अगली पंक्ति में नहीं रहे, लेकिन इस अंधकार में वह आशा की ज्योति की तरह खड़े हैं। कुछ लोगों ने वाजपेयी को "रेगिस्तान का फूल" कहा है, लेकिन यह विशेषण आडवाणी के लिए ज़्यादा उपयुक्त है।

आडवाणी की उम्र वाजपेयी से एक साल कम है (वह 8 नवम्बर 1927 को पैदा हुए) और वह पहली बार 1967 में जन संघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी के सदस्य बने। फिर एक वर्ष बाद पार्टी के महासचिव हो गये और 1973 में वाजपेयी के बाद पार्टी-अध्यक्ष।

उनका जन्म हैदराबाद (सिंध) में हुआ था। बँटवारे के बाद वह भारत आये। उन्होंने बंबई से क़ानून में डिग्री हासिल की। बाद में वह आर० एस० एस० के प्रचारक हो गये और राजस्थान को उन्होंने अपना कार्य-क्षेत्र चुना। राजस्थान जन संघ की विधान-मंडलीय शाखा का काम संभालते हुए उन्होंने आर्गनाइज़र के लिए भी लिखना शुरू किया और 1960 में इस अख़बार के सहायक-संपादक बनकर दिल्ली आ गये। यहाँ उनका संपर्क दीनदयाल उपाध्याय से हुआ, जिन्होंने इस शांत और निष्ठावान कार्यकर्ता की क्षमता को देखते ही पहचान लिया। प्रस्तावों का मसौदा तैयार करना आडवाणी की एक विशेषता है। उनके अन्दर गणितज्ञों जैसी सूक्ष्मता है और वह कभी जल्दबाज़ी में भी किसी ऐसे शब्द का इस्तेमाल नहीं करते जिसके लिए उन्हें बाद में अफ़सोस करना पड़े।

आडवाणी एक व्यावहारिक व्यक्ति हैं। अपनी बात दूसरों को आसानी से समझा लेते हैं। राजनीतिक पार्टी की हैसियत से जन संघ की सीमाओं को उन्होंने अच्छी तरह से समझ लिया था। बहुत-से स्वप्नदर्शी यह आशा लगाये थे कि जन संघ एक दिन अपने बूते पर सरकार पर क़ब्ज़ा कर लेगा। आडवाणी जानते थे कि लोगों के दिमाग़ों में जन संघ के बारे में क्या पूर्वाग्रह हैं, जन संघ के नाम से क्या कालिमा संबंधित है, और इन पूर्वाग्रहों व बदनामियों की वजह से ही जन संघ वहाँ से आगे नहीं बढ़ सकेगा जहाँ पहुँच गया है—वह अपनी चरमसीमा तक पहुँच चुका है। उसे आगे बढ़ना है तो अपनी रणनीति बदलनी होगी।

विरोधी दलों में जन संघ ने ही सबसे बाद में यह समझा कि बिना उन सबके विलयन के कांग्रेस को सत्ता से नहीं हटाया जा सकता है। वर्षों तक पार्टी दो तरह की विचारधाराओं में विभाजित रही। कुछ लोगों का कहना था कि विलयन हो जाना चाहिए और कुछ कहते थे कि चाहे जो हो, पार्टी को अकेले ही अपने रास्ते

पर चलते रहना चाहिए। आडवाणी ने एक-एक क़दम उठाकर विलयन की ओर वढ़ने का कार्यक्रम अपने साथियों के सामने रखकर दोनों विचारधारों के संगम के लिए वड़ी मेहनत से ज़मीन हमवार की। उन्होंने यह स्वीकार किया कि एक साथ विलयन होगा तो पार्टी को इतना सदमा पहुँचेगा कि वह वर्दाश्त नहीं कर पायेगी। वह चाहते थे कि विलयन से पहले एक-दूसरे को अच्छी तरह से जान लें। उसके वाद जनता उम्मीदवार खड़े करने का प्रयोग किया गया और फिर गुजरात में जनता मोर्चा वनाने का। दोनों प्रयोग आडवाणी की पहल पर ही हुए।

आडवाणी ही शायद जनता सरकार के एक-मात्र ऐसे मंत्री हैं, जिन्होंने पद-ग्रहण के वाद भी अपने उस साधारण फ़्लैट को छोड़ना ज़रूरी नहीं समझा, जिसमें वह राज्य-सभा के सदस्य की हैसियत से रहते थे। वह आज भी उसी फ़्लैट में रह रहे हैं। व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में निहायत ईमानदार और वेदाग़ आडवाणी को यदि कोई ग़लत काम के लिए राज़ी करना चाहे तो उसे निराशा ही हाथ लगेगी। राजनीतिज्ञ के रूप में उनके अन्दर सवसे वड़ी ख़ामी यह है कि उनमें कोई व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा नहीं है। आज के ज़माने में सत्ता उसी को मिलती है जो आँख मूँद कर उसके पीछे दौड़ता रहे। ऐसा लगता है कि आडवाणी इस धक्का-मुक्की के लिए नहीं वने हैं। दिन-भर की कड़ी मेहनत के वाद वह अपने छोटे परिवार के साथ फ़ुर्सत के क्षण विताना ज़्यादा अच्छा समझते हैं। कभी-कभी अपनी वाँसुरी पर कोई धुन वजाना पसंद करते हैं। अवकाश के क्षण विताने के लिए यदि उन्हें किसी और अच्छे मनोरंजन की ज़रूरत पड़ती है तो वह चुपचाप किसी सिनेमा-हॉल में चले जाते हैं!

टिप्पणियाँ

1. मदरलैंड, 3 अक्तूवर 1971
2. जनता पार्टी के एक नेता जे० पी० माथुर (भूतपूर्व जनसंघी) के साथ लेखक की वातचीत।
3. जन संघ, आर० एस० एस० और वलराज मधोक, मंगाराम वार्ष्णेय
4. ऑनलुकर, 1-14 दिसम्बर 1977
5. सुब्रह्मण्यम स्वामी से लेखक की वातचीत।

9

यह चिड़ियाघर !

एक-से-एक विख्यात लोग इकट्ठे हैं इस चिड़ियाघर में, इस ऊटपटाँग जमावड़े में ! इसमें शामिल हैं एक शिकरे की तरह के गांधीवादी, जिन्हें कभी किसी ने "खद्दरधारी चंगेज़ख़ाँ" कहा, तो कभी औरों ने "सर्वोच्च नेता" और अब सीधे-सादे ढंग से 'मोरारजी' कहा जाता है। बिल्लियों के बारे में कही गयी बात—कि वह नौ बार मौत के मुँह से निकल आती है—सही हो या न हो, मोरारजी ने ज़रूर ज़िंदगी में पाँच बार सदमे उठाकर भी 81 वर्ष की उम्र में अपनी मनोकामना पूरी कर ली। और अब वह सारी दुनिया से कहते हैं कि नशाबंदी के सवाल पर उनकी सरकार चली भी जाये तो उनको परवाह नहीं—नेक काम के लिए ख़त्म हो जाने में कोई बात नहीं। न उनको इसकी परवाह है कि सिक्किम के संबंध में उनके विचारों को लेकर तूफ़ान खड़ा हो गया—वह तो प्रधान मंत्री के 'व्यक्तिगत विचार' थे। जब तक गाड़ी चले, चलाये जाने से वह संतुष्ट हैं, भले ही यथास्थिति बनी रहे।

'जनता त्रिमूर्ति' के दो अन्य दिग्गज चरणसिंह व जगजीवनराम बड़ी बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं कि कब बिल्ली के भागों छींका टूटे। उनकी तलवारें एक-दूसरे के ख़िलाफ़ तनी हुई हैं। "गांधी के मार्ग" पर चलने के लिए तत्पर "भूपतियों (कुलकों) के सरदार" को हमेशा यही शिकायत रही है कि शहरी लोग उसे उसका हक़ नहीं दे रहे हैं। किसी ज़माने में वह मेरठ को अपनी 'जागीर' समझता था, पर अब तो आँधी आये या तूफ़ान, उसे सारे देश पर अपना झंडा गाड़ना है। जगजीवनराम हैं कि "संक्रमण के इस दौर के दर्द" झेल रहे हैं और अपने अन्दर की आग में झुलस रहे हैं। उनके बारे में कहा जाता है कि वह ज़ुबान तभी खोलते हैं जब समझ लेते हैं कि चुनौती देने का समय आ गया है। दूसरों के साथ सौदेबाज़ी में उन्होंने हरिजनों का नेता होने का पूरा फ़ायदा उठाया। और इसी की बदौलत तीस साल तक मंत्रिमंडल में 'जमे' रहे। एक अमेरिकी लेखक का कहना है कि "जो यह जानते हैं कि क्यों न्यूयार्क सिटी के शासन-प्रबंध में एक यहूदी, एक आयरिश कैथोलिक और एक इतालवी को रखा जाना ज़रूरी है, उन्हें यह समझने में देर नहीं लगेगी कि जगजीवनराम क्यों अभी तक दिल्ली में बने

रह सके।" यह बात उसने 1963 में लिखी थी। 15 साल और बीत गये, पर वह अब भी वहीं हैं और उस सिंहासन को पाने के लिए जी-जान से जुटे हैं जो बार-बार उनके हाथ से निकल जाता है।

और फिर समाज के निचले तबक़े को नींद से जगाने वाले देशभक्तों, दल-बदलू अवसरवादियों, असंतुष्टों और मसख़रों का एक पूरा हुजूम नज़र आता है; "इस मेले में हर आदमी की पसन्द का माल है—प्रहसन, सदाचार, विद्रूप, मूक अभिनय, आंदोलन का नाटक, तरह-तरह की घटनाएँ।"[1] इन्दिरा गांधी के पतन के एक साल बाद रायबरेली से एक खबर मिली है—"एक सरकारी भोज में श्री राजनारायण एक गिलास पानी माँगते हैं। प्रार्थना की मुद्रा में झुके अफ़सरों द्वारा फ़ौरन ही उन्हें तीन गिलास पानी और एक गिलास संतरे का रस पेश किया जाता है...।"[2]

एक दिन स्वास्थ्य और परिवार कल्याण-मंत्री राजनारायण लखनऊ हवाई अड्डे पर उत्तर प्रदेश के मंत्रियों और विधायकों की भीड़ पर गरज रहे थे—"अच्छा, तो अब मंत्रियों ने शेयरों की ख़रीद-फ़रोख़्त शुरू कर दी? मैं उन सबको ठीक कर दूँगा।" कानपुर की स्वदेशी कॉटन मिल का संकट हल करने के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने स्वदेशी पॉलीटैक्स के शेयरों को ख़रीदने का फ़ैसला किया था। लेकिन राजनारायण को तो अपने मित्र सेठ सीताराम जयपुरिया के हितों की रक्षा की ज्यादा चिंता थी—चाहे स्वदेशी कॉटन मिल भाड़ में जाती। अल्यू-मीनियम के अपने सोटे को ठोकते हुए वह चिंघाड़ रहे थे, "कहाँ हैं तुम्हारे मुख्य-मंत्री? उनसे कह दो कि अगर उनके मंत्रियों ने क़ायदे से काम नहीं किया तो मैं सबको निकाल बाहर करूँगा।"

या तो राजनारायण अपने व्यापारी-दोस्तों के हितों की रक्षा करने में लगे रहते हैं, या फिर एक दरबारी भाण्ड की तरह अपने नये मालिक चरणसिंह की तस्वीर उभारने में लगे रहते हैं। संसद में उनके मालिक पर हमला हो तो बचाव के लिए राजनारायण तैयार हैं और उनके प्रतिद्वंद्वियों तथा निंदकों पर प्रहार करना हो तो राजनारायण आगे-आगे हैं। गृहमंत्री के ख़िलाफ़ भाई-भतीजावाद का आरोप हो, या हरिजन-विरोधी होने का इलज़ाम, राजनारायण फ़ौरन खड़े हो जाते हैं और एलान कर देते हैं कि "कोई भी चौधरी चरणसिंह पर उँगली नहीं उठा सकता—हरिजनों तथा अन्य पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया। जब भी हरिजनों पर अत्याचार की ख़बर उन्हें मिलती है वह रात में चैन की नींद नहीं सो पाते हैं।"

और अगर जगजीवनराम या हेमवतीनंदन बहुगुणा या चन्द्रशेखर के ख़िलाफ़ हमला करना हो तो स्वामिभक्त राजनारायण तीर-कमान संभाले मौजूद हैं। फिर भी चरणसिंह के दरबार में बेचारे पर विश्वास नहीं किया जाता। शक्ति-शाली गृह-मंत्री और भावी प्रधानमंत्री के क़रीबी लोगों में किसको पहला स्थान मिले, इसके लिए होड़ लगी हुई है। लोहिया के एक और बहुत बड़े भक्त तथा सोशलिस्ट पार्टी के तेज-तर्रार नेता हैं मधु लिमये, जिनका आधा समय चरणसिंह को पटाने में और आधा समय आर० एस० एस० की निंदा करने में बीतता है।

एक शाम अचानक मधु लिमये एक बड़ा-सा पैकेट लेकर चरणसिंह के मकान पर पहुँचे। उस पैकेट को देखकर अपने ठेठ अंदाज़ में संदेह से भरे चरणसिंह ने पूछा, "यह क्या है?"

"कुछ ख़ास नहीं, एक स्टीरियो-प्लेयर," पैकेट खोलते हुए लिमये ने कहा।

चरणसिंह को कभी इतना समय ही नहीं मिल सका कि वह टी० वी० देखने या रेडियो सुनने में दिलचस्पी लेते, लिहाज़ा उन्होंने अपने परिवार के सदस्यों को यह स्टीरियो-प्लेयर देखने के लिए बुलाया।

"इस चीज़ की क़ीमत क्या होगी ?" उन्होंने पूछा, पर लिमये ने कुछ जवाब नहीं दिया।

"कम-से-कम तीन हज़ार का तो होगा ही," परिवार के एक सदस्य ने कहा।

चरणसिंह चौंक उठे। "इतना पैसा तुम्हारे पास कहाँ से आया, जो इस पर खर्च कर सके ?" चरणसिंह ने कहा। फिर मुसकराते हुए वह एक वाक्य और कह उठे, "इसकी जाँच करनी पड़ेगी।"

चरणसिंह ने यह बात मुसकराते हुए कही थी, पर लिमये थोड़ा घबरा गये। उन्होंने यह बताने की ज़रूरत महसूस की कि इतना पैसा कहाँ से आया, "असल में लेख वग़ैरह लिखता रहा हूँ। मैंने उसके पारिश्रमिक के कुछ पैसे बचा रखे थे और...।"

"लेकिन यह तुम मेरे लिए क्यों लाये ?" चरणसिंह ने सवाल किया।

"आज की किसान-रैली देखकर मैं इतना अभिभूत हो गया था कि मैंने सोचा कि आपके जन्म-दिन के अवसर पर मुझे यह एक छोटी-सी भेंट आपको देनी ही चाहिए। राजनीतिक समस्याओं के कारण पैदा तनाव के क्षणों में इससे आपको शायद थोड़ी शांति मिले...," मधुलिमये ने जवाब दिया।

किसी नेता को पटाने के वेशुमार तरीक़े हैं। क्या पता, कौन-सी चीज़ उसे खुश कर दे ! शांत स्वभाव के मृदु-भाषी श्यामनंदन मिश्र ने चौधरी को खुश करने का अपना अलग ही तरीक़ा निकाला होगा। श्यामनंदन मिश्र जो पहले मोरारजी के ख़ेमे में थे, पर अब चरणसिंह का आशीर्वाद पाने के लिए बेचैन हैं, आजकल "क्रांति की चण्डाल चौकड़ी" के पीछे डण्डा लेकर पड़े होने के कारण गृह-मंत्री के ख़ेमे में काफ़ी तारीफ़ पा रहे हैं। पर राजनीतिक क्षेत्रों का बारीक़ी से अध्ययन करने वाले एक व्यक्ति का कहना है कि "मिश्र को अपनी वफ़ादारी का और पक्का सबूत देना होगा।"

कुछ भी नहीं बदला है। वही पुराने चेहरे, वही पुराने तौर-तरीक़े ! अपना उल्लू सीधा करने वालों का वही पुराना जमघट और गुटबाज़ी की वही पुरानी चालें !

'जनता' नाम ही ग़लत है। असल में यह वही पुरानी कांग्रेस है, जो अब नया लिबास पहन कर आ गयी है। मोरारजी देसाई, चरणसिंह, जगजीवनराम, हेमवतीनंदन बहुगुणा, चन्द्रशेखर, मोहन धारिया, बीजू पटनायक—ये सब उसी पुरानी कांग्रेस की थैली के चट्टे-बट्टे हैं। यदि कुछ सोशलिस्टों और जनसंघियों को अनदेखा कर दिया जाये तो ऐसा लगता है कि 1969 की फूट से पहले की कांग्रेस सामने नज़र आती है। इस विशाल नये चिड़ियाघर में नेहरू की छाया ने मतभेद पैदा कर दिया है। कुछ भूतपूर्व कांग्रेसी हैं, जो सोचते हैं कि पिछले 30 साल देश के लिए एकदम व्यर्थ साबित हुए, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो सोते-जागते नेहरू की माला जपते हैं। खुद चरणसिंह आज़ादी के बाद बीस वर्ष तक कांग्रेस में रहे, लेकिन 30 साल की परम्परा की धज्जियाँ उधेड़ने में नहीं झिझकते। लेकिन ऐसे कई लोग भी हैं जो नेहरू पर प्रहार किया जाये तो अलग हट जाते हैं। जनसंघ के भूतपूर्व नेता अटलबिहारी वाजपेयी तो खुद को नेहरू के साँचे ढालने की कोशिश करते हैं और नेहरू के बड़े प्रशंसक हो गये हैं।

विचित्र घालमोल है। कुछ नेहरू की बुराई करने में लगे हैं, तो कुछ तारीफ़ करते नहीं अघाते। कुछ पब्लिक सेक्टर के पक्ष में ज़ोर-शोर से बातें करते हैं, तो कुछ बड़ी बेहयाई के साथ जापान और अमेरिका के पद-चिह्नों पर चलने की हिमायत करते हैं। कुछ लोग हैं जो भारी उद्योगों की ज़रूरत पर बल दे रहे हैं, तो कुछ 'गाँवों की तरफ़ वापस लौटने' का नारा लगा रहे हैं, कुछ इजारेदार उद्योगों के ख़िलाफ़ और कुछ बहुराष्ट्रीय निगमों के ख़िलाफ़ ज़ोर-शोर से बोलते रहते हैं, लेकिन कोई भी पिछले तीस वर्ष में जो हुआ उससे अलग रास्ते पर चलना नहीं चाहता। वही दोमुँही बातें, वही पाखंड !

लेकिन मोरारजी बड़े प्रेम से अपना चर्खा कातते रहते हैं और कहते रहते हैं कि "अगले दस वर्ष में भारत दुनिया का सबसे खुशहाल देश हो जायेगा।"

वेद मेहता[3] ने उनसे पूछा, "क्या आप सचमुच ऐसा सोचते हैं ?"

"बिलकुल, यह मेरी पक्की धारणा है।"

"भारत की ग़रीबी में ज़र्रा बराबर फ़र्क़ लाने की उम्मीद है ?"

"क्यों नहीं ?" देसाई ने बड़ी व्यग्रता से कहा। फिर कुछ सोचते हुए बोले, "मैं प्रति-व्यक्ति आय में दुनिया में अव्वल होना नहीं चाहता। मैं भारत के लिए पश्चिमी देशों की-सी समृद्धि भी नहीं चाहता। गांधी जी की तरह मैं बस यही चाहता हूँ कि सारे भारतीय अच्छा जीवन निर्वाह करें।"

"और क्या आप सचमुच सोचते हैं कि यह अगले दस या कुछ वर्षों में संभव है ?"

"यह निश्चित रूप से अगले दस वर्षों में संभव है, वरना यहाँ मेरे बैठने की ज़रूरत ही क्या ? भारत में हमारे पास साधन हैं, प्रतिभा है, कठिन मेहनत करने की क्षमता है और सबसे बड़ी बात यह है कि हमारे अंदर एक आस्था है। मुमकिन है कि मैं ईश्वर को इस जन्म में देख लूँ, या फिर अगले जन्म में, या कई जन्म बाद देख पाऊँ, पर है सब ईश्वर के हाथ में।"

जब न्यूयार्क में जा बसे वेद मेहता ने देसाई से पूछा कि एकदम अलग-अलग ढंग से सोचने वाले अपने पार्टी-सदस्यों को वह कैसे एक साथ रख सकेंगे, तो उन्होंने तुरंत जवाब दिया, "उन सबने गांधीवादी दर्शन अपना लिया है।"

उन्होंने, कम-से-कम जनता पार्टी के अगली क़तार के नेताओं ने, निश्चय ही, राजघाट पर शपथ लेने के बाद अपना काम संभाला था। उन्होंने शपथ ली थी कि "राष्ट्रीय एकता और शांति को बढ़ाने के लिए निष्ठापूर्वक एक साथ काम करेंगे, उनके (गांधी के) जीवन व कार्यों द्वारा इंगित सुनिश्चित दिशा में चलेंगे, और व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन में ईमानदारी व किफ़ायतशारी से काम करेंगे।"

शपथ लेने के एक घंटे के अन्दर ही जनता पार्टी के नेता कांग्रेसी परंपराओं के अनुसार जमकर आपस में लड़ने लगे। कुछ ही हफ़्तों में जनता-सरकार के मंत्री अपने लिए सुन्दर बँगलों की तलाश में—जो सामने से सुन्दर दीखते हों, जिनके पीछे खूबसूरत लॉन हो और जिनके अग़ल-बग़ल की सड़कें साफ़-सुथरी हों—अपनी गाड़ियों में बैठे नयी दिल्ली का चक्कर लगाने लगे। इसके बाद केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग द्वारा दिये जाने वाले फ़र्नीचर, एयरकंडीशनरों, गीज़रों तथा सुख-सुविधा की विभिन्न चीज़ों में से अपना मनपसंद सामान चुनने की होड़ में मंत्री-लोग अपने परिवारों के साथ जुट गये। फ़र्राशों को बुलाकर ख़ास तौर पर ताक़ीद दी गयी कि फ़र्श का एक भी हिस्सा बिना क़ालीन न रहे और दर्जियों को

हिदायतें दी गयीं कि पर्दे ऐसे लगाये जायें, जिनमें सही ढंग से 'फ़ाल' पड़े हों। सोशलिस्ट और भूतपूर्व 'युवा-तुर्क' मंत्रियों की पत्नियाँ अपने बँगलों की सजावट की ओर विशेष रूप से ध्यान दे रही थीं। कई महीनों तक इस बात का बड़ा हंगामा था कि राष्ट्रपति महोदय किसी कम ख़र्चीले स्थान को अपना निवास बनायेंगे, पर साल ख़त्म होते-होते राष्ट्रपति भवन को ही निवास बनाना तय कर लिया गया और कम ख़र्चीले स्थान पर जाने वाली सारी बातें भुला दी गयीं।

राज्यों में नये जनता-मंत्री भी इस होड़ में पीछे रहने वाले नहीं थे। वे भी सुन्दर-से-सुन्दर बँगलों पर क़ब्ज़ा करने के लिए पागल हो गये और 'संपूर्ण क्रांति' की भूमि विहार में तो एक ही बँगले पर क़ब्ज़ा करने के लिए विभिन्न मंत्रियों में लड़ाई भी हो गयी। 'छत्तीसगढ़ के भूतपूर्व राजाओं' यानी शुक्ला-परिवार के हेडक्वार्टर भोपाल में एक दिलचस्प कहानी सुनने में आयी। जनता पार्टी के मंत्री पुरानी परंपराओं को क़ायम रखने के लिए बेताब थे। भोपाल के एक वरिष्ठ पत्रकार ने अपनी रिपोर्ट में बताया—"...नये नेताओं में से कुछ तो उसी तरह की सनक और शौक के शिकार हैं जो पिछली सरकार के मंत्रियों में थी। इस प्रवृत्ति का उदाहरण है, जिसे राजधानी में 'दो मकानों की कहानी' नाम से जाना जाता है। इस कहानी का ताल्लुक़ सर्किट हाउस और मुख्यमंत्री के सरकारी निवास-स्थान से है, जिसे अतीत में अलग-अलग मुख्यमंत्रियों ने बारी-बारी से अपना निवास-स्थान बनाया था।...दोनों इमारतों को नया रूप देने के लिए भारी धनराशि ख़र्च की जा चुकी थी। विश्वस्त सूत्रों का अनुमान है कि इस कार्य में कम-से-कम 5 लाख रुपये ख़र्च हो चुके थे।...मध्यप्रदेश के नये मुख्यमंत्री श्री सकलेचा ने सर्किट हाउस को अपना निवास-स्थान बनाना पसंद किया, जिसमें पुराने मुख्यमंत्री पी० सी० सेठी रहते थे। उन्होंने इस बँगले को फिर से सजाने का आदेश दिया...।"

वी० सी० शुक्ला की ही तरह सोशलिस्ट पार्टी के भूतपूर्व सदस्य और जनता-सरकार के नागरिक उड्डयन तथा पर्यटन-मंत्री पुरुषोत्तम कौशिक ने (जिन्होंने शुक्ला को हराया था) अपने निर्वाचन-क्षेत्र रायपुर में इंडियन एयरलाइंस की सेवाएँ शुरू करने के काम को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। अपना पद संभालने के एक ही महीने के अन्दर वरिष्ठ अधिकारियों ने दिल्ली से रायपुर तक का चक्कर लगाना शुरू कर दिया, ताकि वे नयी विमान-सेवा की संभावनाओं पर अपनी रिपोर्ट दे सकें। जो काम शुक्ला नहीं कर सके, उसे कौशिक ने कर दिखाया।

कुछ ही हफ़्तों के अन्दर जनता सरकार के मंत्री महान "जनता संदेश" के प्रचार-प्रसार के लिए दुनिया के हर हिस्से का चक्कर लगाने लगे। एक ऐसा भी समय आया जब केंद्रीय मंत्रिमंडल के लगभग एक दर्जन मंत्री तो विदेश-यात्रा पर थे, या विदेश-यात्रा पर रवाना होने वाले थे। जैसा कि हाल में ही संसद में बताया गया, चार महीनों के अंदर (नवम्बर 1977 से फ़रवरी 1978) 11 जनता-मंत्रियों की विदेश-यात्रा पर 12 लाख रुपये ख़र्च किये गये और 25 देशों की यात्रा की गयी। इसमें 5 यात्राओं के ख़र्च को शामिल नहीं किया गया है।

एक जनता संसद-सदस्य ने बताया कि इन यात्राओं के बारे में सबसे दिलचस्प बात यह है कि अधिकतर मंत्री यूरोप गये, जबकि सरकार एशियाई तथा अफ़्रीकी-एशियाई देशों के साथ अपने संबंधों के बारे में ज़्यादा चिंतित है। एक मंत्री चाँदराम ने 'जहाज़ निर्माण के कार्यों का जायज़ा खुद लेने के लिए' ब्रिटेन, पोलैंड और हालैंड की यात्रा में 27,000 रुपये ख़र्च, किये। जहाज़रानी और परिवहन-

मंत्री ने इसका कारण बताया—"मैं वहाँ की सड़क-व्यवस्था भी देखना चाहता था। उनके ट्रक हमारे ट्रकों की तुलना में बहुत ज़्यादा माल ढोते हैं। इतना वज़न ढोने में हमारी सड़कें बोल जाती हैं। मैं देखना चाहता था कि यह कैसे संभव हो पाता है।"

राजनारायण ब्रिटिश सरकार के ख़र्च पर इंग्लैंड गये—अपने भाण्डपन का प्रदर्शन करने। साथ में चंद्रास्वामी को भी लेते गये, शायद अपने ख़र्च पर। एक अन्य मंत्री हैं, जो कांग्रेस में थे तो उग्र सुधारवादी कहे जाते थे। वह पेरिस गये तो वहाँ के रहने वाले भारतीयों में उनकी यात्रा चर्चा का विषय बन गयी। उन्होंने दूतावास की गाड़ी पर आमोद-प्रमोद के अड्डों का चक्कर लगाया। दूतावास के एक कर्मचारी ने कहा "जाना था तो जाते, पर गांधी टोपी पहने हुए जाने की क्या ज़रूरत थी!"

शायद ही कोई ऐसा हफ़्ता बीतता हो, जब किसी-न-किसी राज्य से गांधी के हरिजनों पर अत्याचार की दर्दनाक ख़बरें सुनने में न आती हों। भोपाल की एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, "मार्च-नवम्बर 1977 में मध्यप्रदेश में 105 हरिजन मारे गये।" लेकिन गृह-मंत्री पर इसका कोई असर नहीं हुआ और यह साबित करने के लिए कि जनता-सरकार के शासन संभालने के बाद से हरिजनों पर अत्याचार की घटनाओं में "कोई वृद्धि" नहीं हुई, गृह-मंत्री ने दुनिया-भर की रामायण गा दी। जब बिहार में हरिजनों पर बढ़ते हुए अत्याचार के मसलों को लोक-सभा में उठाया गया तो गृह-मंत्री ने बड़े शांत भाव से सदन को बताया कि राज्य सरकार ने खबर दी है कि ये घटनाएँ दरअसल "अपराधियों के दो गुटों की आपसी दुश्मनी" का परिणाम हैं और फिर वह बिहार के मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर की "ईमानदारी और क्षमता" के गुणगान में जुट गये। यहाँ तक कि बेलछी में हुए अत्याचारों के बारे में भी—जिसका इन्दिरा गांधी ने अपने हक़ में पूरा-पूरा इस्तेमाल किया—चरणसिंह ने वही पुराना रवैया अख़्तियार किया और कहा—"यह दो हथियारबंद गिरोहों का आपसी झगड़ा है और कुछ नहीं।" जनता पार्टी के नेता रामधन के नेतृत्व में संसद-सदस्यों के एक दल ने घटना की जाँच की और उसे हरिजनों पर आक्रमण बताते हुए इसकी निंदा की। रामधन की रिपोर्ट के बारे में चरणसिंह के दरबारियों ने कहा, "रामधन गृह-मंत्री पर प्रहार कर रहे हैं, क्योंकि वह जगजीवनराम के आदमी हैं।"

हरिजनों के महान नेता जगजीवनराम बौखलाते रहे, पर 'कुलक लॉबी' के खिलाफ़ तीखी टिप्पणियों के अलावा उन्होंने कुछ नहीं किया। पिछले तीस वर्षों के कांग्रेस-शासन में भी हरिजनों पर लगातार अत्याचार और उत्पीड़न होते रहे हैं और जगजीवनराम तीखे वक्तव्यों से काम चलाते रहे हैं। वह बराबर मंत्रिमंडल में बने रहे। उनके आलोचकों का सवाल है, "क्या हरिजनों पर अत्याचार के मसले को लेकर उन्होंने कभी इस्तीफ़ा दिया? दरअसल उन्हें केवल अपने सम्मान और इज़्ज़त से मतलब है। वाराणसी की घटना पर हुए हंगामे को देखिये। यदि किसी बदमाश ने उस मूर्ति को गंगा-जल से धो ही दिया, जिसका उन्होंने उद्घाटन किया था तो क्या हो गया? हरिजनों को दिन-रात जिस तरह के अत्याचार का सामना करना पड़ता है उसकी भला इससे तुलना की जा सकती हैं! लेकिन क्या उनको सचमुच इसकी चिंता है!"

जनता पार्टी में दो मुख्य गुट हैं—एक मोरारजी देसाई का, दूसरा चरणसिंह

का। दोनों गुटों के बीच खींच-तान रहती है। इसे कल्पना की उड़ान नहीं कहा जा सकता, जैसाकि बहुधा जनता पार्टी के कुछ नेता कह देते हैं। कांति देसाई के ख़िलाफ़ जो सुनियोजित हमले चल रहे हैं, वह गृह-मंत्री के निवास-स्थान से ही संचालित हो रहे हैं और भारत के इस नये लौह पुरुष की जी-हुजूरी में एक-से-एक बड़े पत्रकार देखे जा रहे हैं। चरणसिंह के दरबारियों ने उनको समझा रखा है कि गृह-मंत्रालय से उन्हें हटाने या कम-से-कम खुफ़िया एजेंसियों को उनके हाथ से छीन लेने के लिए बहुत बड़ी साज़िश की गयी है। "आपको निकाल बाहर करने के लिए जगजीवनराम और बहुगुणा भी मोरारजी देसाई से मिल गये हैं।" इस तरह की बातें अक्सर चरणसिंह को बतायी जातीं और नतीजा यह हुआ कि उनकी तरफ़ से भी जवाबी हमला शुरू हो गया।

दक्षिण भारत में जनता पार्टी की हार से चरणसिंह और उनके आदमियों को एक नया अवसर मिल गया। जो लोग पार्टी-अध्यक्षता के लिए बेताब थे, वे सभी काफ़ी शोरगुल मचाने लगे। बेशक कुछ लोग इतने होशियार हैं कि सीधा-सीधा हमला नहीं करते थे, लेकिन राजनारायण जैसे लोग तो साफ़-साफ़ 'दुश्मनों' का नाम लेते हैं। लेकिन राजनारायण भी इस बात का ध्यान रखते थे कि किस पर हमला करना चाहिए। वह जगजीवनराम, बहुगुणा, चन्द्रशेखर को तो निशाना बनाते हैं, लेकिन उन्होंने कभी मोरारजी देसाई पर हमला नहीं किया। राजनारायण के बारे में जो लोग जानते हैं उन्हें अच्छी तरह पता है कि वह मोरारजी के आदमी हैं। वह उत्तर प्रदेश के सरदार चरणसिंह के पद और शान का इस्तेमाल तब तक कर रहे हैं जब तक इससे उन्हें फ़ायदा है—ठीक वैसे ही जैसे जन संघ अपने मक़सद के लिए उनका इस्तेमाल कर रहा है।

1 जनवरी 1978 को कांग्रेस के दूसरी बार टूटने के फ़ौरन बाद चन्द्रभानु गुप्त ने अपने कुछ राजनीतिक साथियों से कहा कि "बी० एल० डी० के बोझ को अब और अधिक समय तक ढोने की ज़रूरत नहीं है।" वह चरणसिंह को "निकाल बाहर" करने के पक्ष में थे और रेड्डी कांग्रेस के साथ तालमेल करना चाहते थे, लेकिन समझा जाता है कि चन्द्रशेखर ने इस मसले पर गुप्ता से विचार-विमर्श किया और कहा कि कोई काम जल्दबाज़ी में करने की ज़रूरत नहीं है। वे लोग खुद ही किसी नये जोड़-तोड़ के बारे में सोच रहे थे—उन्होंने गुप्ता को बताया और कहा, "थोड़ा धीरज रखिये, दक्षिण में चुनाव हो जाने दीजिये, फिर हम लोग देखेंगे।"

लेकिन उन लोगों ने जैसा सोचा था वैसा नहीं हुआ। रेड्डी कांग्रेस को करारी हार मिली और खुद रेड्डी ने इस्तीफ़ा दे दिया। नयी शक्तियों के तालमेल की योजना धरी-की-धरी रह गयी। लेकिन दक्षिण में एक शक्ति के रूप में इन्दिरा गांधी के फिर से उभरने से जनता पार्टी के युद्धरत नेताओं में कम-से-कम, अस्थायी तौर पर ही सही, एकता आ गयी।

इन्दिरा गांधी के प्रति उनका रुख़ एक तरह से बीमारी की हद तक पहुंच चुका है। नये शासकों ने पूरे साल इन्दिरा गांधी और उनकी चौकड़ी के ख़िलाफ़ बोलने के सिवा और कुछ नहीं किया। किसी टिप्पणीकार ने ठीक ही कहा, "दिल्ली के लालक़िले के बाहर टाइम कैप्सूल (काल-पात्र) को खोद कर निकाला जाना जनता पार्टी के कार्य-काल का एक प्रतीक है...अतीत को खोदना अपने-आप में एक आकर्षण बन चुका है।"

जनता के नेता देवीजी के बारे में बात करते तो दो-तीन नहीं, भाँति-भाँति

की वोलियाँ सुनायी देतीं, असंख्य आवाज़ें सुनायी देतीं—कोई कहता, फाँसी दे दो; किसी का ख़याल था, जनता की अदालत में, शायद विजय चौक में, ला खड़ा करना चाहिए; कुछ लोग चाहते थे कि न्यूरेमबर्ग-जैसी अदालत में उन पर मुक़दमा चलाया जाये; कुछ का ख़याल था कि उन्हें घसीटते हुए तिहाड़ जेल तक पहुँचाया जाये और उसी कोठरी में रखा जाये, जिसमें इमरजेंसी के दौरान चरणसिंह को रखा गया था; चन्द्रशेखर-जैसे कुछ लोगों का कहना था कि उन्हें "राजनीतिक मौत" पाने के लिए चुपचाप छोड़ ही दिया जाये। जनता पार्टी के अध्यक्ष, जो किसी समय इस वहादुर औरत के वड़े मुखर प्रशंसक थे, यह सोचते थे कि देश को आज मतभेद की नहीं वल्कि मतैक्यता की राजनीति चाहिए—उनके इस कथन का अर्थ कुछ भी हो। राजनीतिक जन्तुओं का सूक्ष्म निरीक्षण करने वालों में से अनेक लोगों ने, जिनमें कम-से-कम एक अत्यंत बुद्धिमान व्यंग्यकार भी शामिल है, चन्द्रशेखर के खून में रेंगते "इन्दिरा कीटाणुओं" को महसूस किया !

सोने पर सुहागा यह कि जिस अनाड़ीपन से इन्दिरा गांधी को गिरफ़्तार किया गया और फिर रिहा किया गया, उससे उनको इतनी ताक़त मिली जितनी शायद वर्षों में भी नहीं मिल पाती।

पार्टी के भीतर से अपने ऊपर होने वाले नये हमलों का ख़याल करके चरण-सिंह इन्दिरा गांधी के बारे में कुछ भी कहते समय विशेष सतर्कता वरतते हैं। उनके घनिष्ठ समर्थकों ने संभवत: उनको यह समझा रखा है कि इन्दिरा गांधी के ख़िलाफ़ लड़ाई इतनी दूर तक चलाने की ज़रूरत नहीं है कि कभी समझौता करना भी मुश्किल हो जाये, क्योंकि हो सकता है कि एक दिन दूसरे लोगों के ख़िलाफ़ उन्हें इन्दिरा गांधी के साथ हाथ मिलाने के लिए मजबूर होना पड़े। प्रधानमंत्री वनने का यह भी एक तरीक़ा हो सकता है। हालांकि यह संभावना बहुत क्षीण है, लेकिन, जैसा कि डिज़रायली ने कहा है, राजनीति में "कभी नहीं" शब्द का भूल-कर भी इस्तेमाल नहीं करना चाहिए।

जनता पार्टी नकारात्मक वोट के आधार पर सत्ता में आयी, लेकिन अकस्मात जीतकर भी जनता वाले यह नहीं समझ पाये कि अपनी जीत से फ़ायदा कैसे उठायें। वस इसी नकारात्मक रवैये पर वह अपना अस्तित्व क़ायम रखने में लगे हैं। गड़े मुर्दे उखाड़ने में कोई एतराज़ नहीं है, वशर्ते इसके पीछे कुछ सार्थक काम करने की मंशा हो। इसमें कोई शक नहीं कि जनता पार्टी के पास जॉर्ज फ़र्नांडीज़ जैसे उग्रवादी नेता हैं और उनके पास जनता को उत्तेजित करने वाले लुभावने नारों की कोई कमी नहीं है। सरकार में शामिल होने में उन्होंने काफ़ी हिचकिचाहट दिखायी और कई दिन तक वह दूर-दूर भागते रहे। लेकिन वाद में यह हुआ कि उन्होंने अपने को "वंधन" में वँध जाने दिया और मंत्री-पद स्वीकार करते समय उन्होंने कहा कि अव मैं "एक जेल से निकल कर दूसरी जेल में जा रहा हूँ।"

स्वघोषित भूतपूर्व विध्वंसक और वर्तमान मंत्री जॉर्ज फ़र्नांडीज़ ने एक धमाके के साथ अपना मंत्रालय संभाला और उन सभी लोगों को हैरानी में डाल दिया जो सोचते थे कि निचले तवक़े का आंदोलन करने वाला यह नेता मंत्रालय का काम-काज कैसे चला सकेगा। मंत्री वनने के कुछ ही दिन के अन्दर वह "पतनशील दशक" की ख़ामियों को सामने ला रहे थे, क्योंकि इस दशक को इन्दिरा गांधी के प्रचार-तंत्र ने "प्रगति का महान दशक" घोषित किया था। और उद्योग-मंत्री का

पद संभालने के कुछ ही दिन के अन्दर जॉर्ज फ़र्नांडीज़ भारतीय उद्योग के बड़े-बड़े नेताओं को नैतिकता की नसीहतें देकर अपने मन को शांति पहुँचा रहे थे। बड़े-बड़े उद्योगपतियों को वह इस बात के लिए डाँट रहे थे कि इमरजेंसी के दौरान सत्ताधारी वर्ग की खुशामद में उन्होंने सारे नैतिक मूल्यों को उठाकर फेंक दिया। एक भाषण में उन्होंने कहा, "क्या वजह है कि उन लोगों ने, जिन्हें उद्योगों का सिरमौर कहा जाता है और जो अपने क्षेत्र में अग्रणी माने जाते हैं, सत्ता के सामने इस तरह घुटने टेक दिये ? वह कौन-सी चीज़ है जो इंसान के पास न रहे तो वह चूहों की तरह व्यवहार करने लगता है ?"

संसद के बाहर और भीतर उनके भाषणों का बड़ा विध्वंसक प्रभाव हुआ। देश के उद्योगपतियों को उस समय पसीना छूट गया जब उन्होंने कहा, "आपकी बिरादरी के एक व्यक्ति ने एक दिन बताया कि चुनाव के लिए चालीस करोड़ रुपये भूतपूर्व डिक्टेटर की पार्टी को दिये गये। मैं यह जानना चाहूँगा कि इतने रुपये पाने के लिए आपने कौन-कौन से तरीक़े अख्तियार किये ?"

मंगलौर का यह जोशीला आदमी एक रोमन कैथोलिक पादरी बनने वाला था, लेकिन आग उगलने वाला राजनीतिज्ञ बन गया। उसका अब इस नये मंच से प्रवचन जारी था, "मैं जानता हूँ कि बड़े-बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठान और बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ बहुत शक्तिशाली हैं, लेकिन हमें इससे कोई मतलब नहीं। हम दूसरी धातु के बने हैं। अगर वे यह सोचते हैं कि पहले की तरह उनके दाव-पेंच अब भी जारी रहेंगे तो वे एक मुग़ालते में हैं और उन्हें बहुत बुरा तजुर्बा होगा।" उन्होंने गरजते हुए कहा कि बड़े व्यापारिक और बहुराष्ट्रीय प्रतिष्ठानों और बहु-राष्ट्रीय कंपनियों के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। लेकिन कुछ ही महीनों के अन्दर वह बड़े व्यापारियों के भय को शांत करने में लगे थे और उनको बता रहे थे कि जनता सरकार औद्योगिक विकास की दिशा में एक "बहुआयामीय" दृष्टि-कोण अपना रही है, जिसके अंतर्गत बड़े उद्योगों के साथ-साथ छोटे और कुटीर उद्योगों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। जनता सरकार ने बहुराष्ट्रीय कंपनियों के एक प्रतिनिधिमंडल को बताया, "मल्टीनेशनल कंपनियाँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।"

कोकाकोला और आई० बी० एम० को भारत से विदा करने के बाद फ़र्नांडीज़ अपने मन-चाहे देशों अर्थात इंग्लैंड और पश्चिम जर्मनी की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के ज़बर्दस्त समर्थक बन गये। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं कि बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ अमेरिका की हों या अमेरिका के पिछलग्गू यूरोप की, उनमें कोई फ़र्क नहीं। इस महान ट्रेड यूनियन नेता ने ग्रेट ब्रिटेन के बड़े-बड़े मज़दूर-नेताओं जैसा जीवन बिताने का वर्षों तक अभ्यास किया है और शायद खुद को वह एक दूसरा बेवन समझता है। वह बहुत मेहनती ट्रेड यूनियन नेता है और औद्योगिक क्षेत्रों के सामंतों के सामने चुनौतियाँ देने में उसे मज़ा आता है, लेकिन उसके कुछ पुराने साथियों का कहना है कि वह दुश्मन के ख़ेमे के सामंतों से ताल-मेल भी बैठा सकता है।

कांग्रेस के तीस वर्ष के भ्रष्ट प्रसासन का मलवा साफ़ करने का प्रण करके जॉर्ज फ़र्नांडीज़ मंत्रिमंडल में शामिल हुए थे और इतने महीनों में उन्होंने और उनके मंत्रालय ने जो कुछ किया उसे आर्थिक विषयों पर लिखने वाले एक लेखक ने "मरे हुए चूहे" की संज्ञा दी।

उसने लिखा, "पुरानी सरकार की तरह जनता सरकार को भी यह नहीं पता

है कि बड़े उद्योग-समूहों से वह दरअसल क्या चाहती है। बस फ़र्क़ केवल इतना है कि इसने बड़े उद्योग-समूहों के लिए भी अब ग़ैर-उपभोक्ता उद्योगों को खोल दिया है। अब वे सभी उद्योगों में प्रवेश कर सकते हैं...।"[4]

इन्दिरा गांधी की सरकार ने उनकी ट्रेड यूनियन गतिविधियों के सिलसिले में अनेक आरोप लगाये थे, जिनमें कहा गया था कि फ़र्नांडीज़ एक भ्रष्ट व्यक्ति हैं, उनके भूमिगत आंदोलन को विदेशों से सहायता मिल रही है। एक भेंट-वार्ता में जब किसी ने उनसे इन आरोपों के बारे में पूछा तो उन्होंने अपनी लाजवाब शैली में जवाब दिया, "मेरे ख़िलाफ़ फैलाया गया वह सबसे बड़ा दुष्प्रचार है और मैंने इस दुष्प्रचार का जवाब संसद में दे दिया है। दरअसल जब मैं भूमिगत था उस समय भी मैंने मैडम डिक्टेटर के नाम एक ख़त लिखकर विदेशों से मिले पैसे के बारे में उनके सारे झूठों का पर्दाफ़ाश किया था और यह भी कहा था कि मैडम डिक्टेटर, वह दिन दूर नहीं जब मैं अपनी इस बेइज़्ज़ती का बदला लेकर रहूँगा। मैडम डिक्टेटर, तब तुम क्या करोगी, तुम दुनिया को क्या बताओगी? यही कहोगी न कि झूठ बोले बिना तुम रह नहीं सकतीं, क्योंकि यह तुम्हारे स्वभाव की विशेषता है। और मैंने अपना बदला ले लिया और मैडम डिक्टेटर अब केवल यही कह सकती हैं कि वह जन्मजात झूठी हैं...जिन पैसों के लेने का आरोप मुझ पर लगाया गया था उन्हें मैंने 26 या 27 मई 1975 को जोधपुर में देश-भर के अख़बारों के प्रेस-फ़ोटोग्राफ़रों के कैमरों के सामने लिया था। मेरे साथ जयप्रकाश नारायण थे, जो आल-इंडिया रेलवेमैन फ़ैडरेशन के स्वर्ण-जयन्ती समारोह का उद्घाटन करने गये थे और जापान से आये रेल-कर्मचारियों का एक प्रतिनिधि-मंडल भी वहाँ मौजूद था। उन लोगों ने जब मुझे दो चैक भेंट किये तो सारे अख़बारों के कैमरों की रोशनी फैल गयी...।"[5]

जॉर्ज ने बंबई में 'प्रासपेक्ट चेम्बर्स के बाहर फुटपाथ पर' जब अपनी ज़िंदगी शुरू की थी तब से आज तक काफ़ी समय गुज़र चुका है। वहाँ यह नौजवान मज़दूर-नेता, जो अपना पादरियों वाला सफ़ेद चोगा फ़ेंक कर ज़िंदगी के कठिन रास्तों पर चल पड़ा था, मंगलौर के एक दूसरे व्यक्ति पीटर डिमेलो के संपर्क में आया। डिमेलो ने भी बंबई में बड़ी कठिनाई के बीच अपनी ज़िंदगी शुरू की थी और शहर के अत्यंत शक्तिशाली ट्रेड यूनियन नेता का दर्जा पाया था। डिमेलो की असामयिक मृत्यु के बाद ही जॉर्ज फ़र्नांडीज़ रोशनी में आये और अपने-आप में एक शक्तिशाली नेता बन सके। वर्षों तक उनका उद्योग के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र अर्थात् मज़दूरों पर दबदबा रहा। 1967 में लोक-सभा के चुनाव में उन्होंने बंबई के एक बहुत ही शक्तिशाली राजनेता एस० के० पाटिल को जब हराया तो उस समय उनकी उम्र महज़ 38 साल थी। फ़र्नांडीज़ ने इस लड़ाई को साधन-सम्पन्नों के विरुद्ध साधनहीनों की लड़ाई कहा था और इसमें साधनहीनों को कामयाबी मिली थी।

लेकिन आज वह जिस स्थिति में हैं उसमें रहते हुए साधनहीनों के लिए क्या कर रहे हैं—यह एक अलग बात है। यह उग्र मज़दूर नेता, जिसका दावा है कि उसने "बावन ट्रेनों को पटरी से उतार दिया," जनता पार्टी के इस चिड़ियाघर में मंत्री तो है ही, साथ ही, वह ऐसा व्यक्ति भी है जिसके बारे में इंतज़ार किया जाता है कि वह कब मंत्री-पद पर लात मार दे!

जनता पार्टी के इस रंग-बिरंगे चिड़ियाघर के दूसरे सिरे पर इमरजेंसी की एक दूसरी विभूति सुब्रह्मण्यम स्वामी हैं, जो दावा करते हैं कि अगले दस वर्षों में

जनता पार्टी भी "मेरे ही विचारधारा के ढाँचे में सोचने लगेगी।"[6]

वह कहते हैं, "मेरी विचारधारा भारतीय है। मेरी धारणा है कि भारत एक केन्द्र है, अपने-आप में एक ध्रुव है। उसकी संस्कृति का व्यापक क्षेत्र हिंदूवाद से उद्भूत होता हैं। मेरा मतलब हिंदू धर्म स्वीकारने या इस तरह की किसी बात से नहीं है...खुद मेरी पत्नी पारसी हैं। मैं भारत, पाकिस्तान, बांगलादेश और श्रीलंका को एक देश के रूप में देखता हूँ। नेहरू और जिन्ना का सारा पागलपन समाप्त कर दिया जायेगा। जहाँ तक अर्थव्यवस्था का सवाल है, मैं समझता हूँ कि वही प्रणाली सफल होगी जो देश की प्रतिभा के अनुकूल हो। हमारी प्रतिभा के प्रतीक हैं छोटे व्यापारी और छोटे उद्यमी। मैं सरकार की भूमिका को नामंजूर नहीं करता, लेकिन मेरी योजना के अंतर्गत सरकार उपभोक्ता और उत्पादक के वीच एक मध्यस्थ की भूमिका अदा करेगी, न कि कोई प्रभुत्व वाली भूमिका। मैं ऐसी प्रणाली को देख रहा हूँ जिसमें बड़े आसान नियमों का पालन किया जायेगा, जहाँ असमानता की चुनौती का सामना कर लगाकर नहीं, बल्कि उत्पादन बढ़ाकर किया जायेगा...अंततः मेरे इन विचारों को ही देश में स्थान मिलेगा।"

जनता सरकार के पहले महीने के दौरान सुब्रह्मण्यम स्वामी ने एक ब्रिटिश पत्रकार को बताया कि वह अपनी पुरानी पार्टी जन संघ को फिर से उभरता हुआ देख रहे हैं, लेकिन उन्होंने अपना विचार वदल दिया है। "मैंने अपना विचार वदल दिया, क्योंकि मुझ पहले यह नहीं दिखायी दिया था कि हमारे तीनों नेता—वाजपेयी, नानाजी और आडवाणी—ऐसा व्यवहार करेंगे जैसा कर रहे हैं। जन संघ का काम नेतृत्व प्रदान करना था—वह इन तीनों ने छोड़ दिया है।" ज़ाहिर है कि इन नेताओं के प्रति यह उनकी व्यक्तिगत शिकायत है। उनका कहना है, "वाजपेयी की विदेश-नीति के बारे में संडे पत्रिका में मैंने जो कुछ भी कहा उसे अब भी सही मानता हूँ।"

वाजपेयी का गुस्सा 4 अप्रैल 1978 को पार्टी के केन्द्रीय संसदीय वोर्ड की बैठक में उबल कर बाहर आ गया। वाजपेयी और चरणसिंह, दोनों ने अपनी पार्टी के कुछ लोगों द्वारा उन पर किये जा रहे हमलों की चर्चा की और कहा कि इन्हें कुछ नेताओं से शह मिलती है। ज़ाहिर तौर पर वाजपेयी ने स्वामी के संडे वाले लेख की चर्चा की और चरणसिंह ने बंबई की एक पत्रिका को जगजीवनराम द्वारा दिये साक्षात्कार का ज़िक्र किया। इसमें जगजीवनराम ने "कुलक लॉबी" पर हमला किया था। दोनों नेताओं ने पार्टी-नेतृत्व पर यह आरोप लगाया कि उनकी तरफ़ से कुछ भी नहीं कहा जा रहा है। मोरार देसाई को भी अपने लड़के पर किये जा रहे प्रहारों से काफ़ी शिकायत रही होगी, लेकिन वह "निर्णायक" के पद पर थे, इसलिए अपने को विवाद में नहीं डाल सकते थे।

सत्ता में एक साल तक रहने के बाद भी जनता पार्टी का न तो कोई चेहरा बन सका है और न उसकी कोई अपनी पहचान है। अपने तमाम घोषित आदर्शवादी नारों के बावजूद उसने हर तरह के दल-बदलुओं के लिए अपना दरवाज़ा खोल रखा है और चिमनभाई पटेल से लेकर राजा दिनेशसिंह तक कोई भी अंदर आ सकता है। जितनी आसानी और प्रसन्नता के साथ वह टहलते हुए जनता पार्टी में शामिल हो गये, उससे इस पार्टी के नेताओं का असली रंग दिखायी देने लगता है। कोई भी व्यक्ति पार्टी में इन तत्वों के प्रवेश के लिए अपनी ज़िम्मेदारी नहीं लेता। यहाँ तक कि दिनेशसिंह के पुराने दोस्त चन्द्रशेखर ने कहा, "मोरारजी ने

उन्हें (दिनेशसिंह को) पार्टी में शामिल होने की अनुमति दी।" लेकिन चन्द्र-शेखर ने बताया कि उनके शामिल होने के साथ एक शर्त यह भी जुड़ी थी कि उन्हें पार्टी में किसी पद पर नहीं रखा जायेगा। राज्य-सभा की सदस्यता फ़िलहाल राजा दिनेशसिंह के लिए काफ़ी है। उन्होंने त्यागराज मार्ग पर स्थित अपने शानदार बँगले को हाथ से निकलने से बचा लिया। जनता पार्टी में शामिल होने के बाद उन्होंने चौधरी चरणसिंह के साथ तत्काल संबंध जोड़ लिये और इस काम में मदद पहुँचायी उनके दोस्त श्यामनंदन मिश्र ने। गृह-मंत्री से उनके नये समर्थक ने बताया, "दिनेशसिंह का उत्तर प्रदेश के राजपूतों में अच्छा स्थान है और उन्हें लेकर चन्द्रशेखर का मुक़ाबला करना आसान होगा।" भूतपूर्व "अजगर"-अध्यक्ष को यह विचार बहुत पसंद आया।

अब यह तो सभी को पता है कि आंध्र प्रदेश में कितने दल-बदलुओं को जनता पार्टी के टिकट दिये गये? एक अनुमान के अनुसार यह संख्या 150 से भी अधिक है। यह संख्या जितनी ही अधिक हो अच्छा है!

जनता-सरकार के एक वर्ष के शासन की "सरकारी समीक्षा" में यह दावा किया गया है कि इस सरकार को "सरकारी तंत्र की समूची कार्य-प्रणाली को निर्णायक नयी दिशा देने और केन्द्र सरकार के प्रत्येक मंत्रालय की कार्य-प्रणाली में प्रभावशाली सुधार करने में अभूतपूर्व सफलता मिली है।" इस समीक्षा में यह नहीं बताया गया है कि क़ानून और व्यवस्था के विशेषज्ञ चौधरी चरणसिंह की नाक के ठीक नीचे दिन-दहाड़े बैंक लूटे जा रहे हैं, दिल्ली शहर के बीचोंबीच बसों में छुरे की नोंक पर गुंडे यात्रियों को लूट रहे हैं, उत्तर प्रदेश और बिहार में, जहाँ ईमानदारी, निष्ठा और क्षमता के मामले में उनके सबसे प्रिय लोग शासन कर रहे थे, जंगल का क़ानून चल रहा है।

लेकिन ईश्वर की महिमा में भरोसा रखने वाले मोरारजी देसाई को पक्का विश्वास है कि अगले "दस वर्षों में" देश में दूध-दही की नदियाँ बहने लगेंगी! जनता के सामने वह अपनी यह शपथ दोहराना नहीं भूलते कि जनता के अन्दर से वह "भय और अभाव" दूर कर देंगे। अपनी सूखी और मरी हुई आवाज़ में उन्होंने जनता-शासन के एक वर्ष समाप्त होने पर एक संदेश में कहा, "हमारी नयी प्राथमिकताएँ बहुत स्पष्ट और यथार्थपरक हैं। हम ऊँची उड़ानों में नहीं, बल्कि ठोस तथ्यों और प्रगति में विश्वास करते हैं, जिसे अपनी क्षमता के अनुसार हम प्राप्त कर सकें और बनाये रख सकें...!"

उधर पटना में कदमकुआँ-स्थित अपने निवास-स्थान में जयप्रकाश नारायण ने बड़ी सावधानी से तैयार किया गया अपना वक्तव्य जारी किया, "लेकिन सामाजिक, आर्थिक सुधारों के क्षेत्र में जनता पार्टी को बहुत-कुछ करने में सफलता नहीं मिली है। पार्टी के घोषणा-पत्र में जो वायदे और ख़ास तौर से आमूल सुधारों के बारे में जो वायदे किये गये हैं, उनमें से अधिकांश पवित्र इच्छाएँ बनकर रह गये...।" यह बूढ़ा व्यक्ति, जिसे कई लोग "गिद्धों के बीच एक असहाय चिड़िया" कहते हैं, एक अजीब-सी दुविधा में फँसा है। यह धर्मपिता अपने ही बच्चों के प्रति कैसे कठोर रवैया अख़्तियार करे! वह अपने साथियों से कहते हैं, "यह भी तो मेरा एक अंग है।"

लेकिन बहुधा वह पराजय और निराशा के भाव को छिपा नहीं पाते। यह सामने आ ही जाता है, जैसाकि हाल ही में दिल्ली की एक पत्रिका को दिये गये

इंटरव्यू में देखने को मिला। यह पूछे जाने पर कि पिछले साल राजनीतिक घट-नाओं को देखने के बाद उन्होंने क्या महसूस किया, जे० पी० ने जवाब दिया, "मुझे बहुत अफ़सोस होता है, लेकिन मेरा स्वास्थ्य ऐसा है कि मैं असहाय हूँ... स्वास्थ्य ठीक होता तो मैं ज़रूर कुछ करता।"[7]

सबसे दुखद घटना उनके 75 वें जन्मदिवस पर घटी, जब उसी गांधी मैदान में, जहाँ महज एक साल पहले "लोकनायक ज़िंदाबाद" के नारों से आसमान गूँज उठता था, उन्हें पत्थरों और चप्पलों की वर्षा के बीच 90 लाख रुपये की थैली भेंट की गयी।

आख़िरकार हमने चक्कर पूरा कर ही लिया!

टिप्पणियाँ

1. टाइम्स ऑफ़ इंडिया में शामलाल का लेख, 17 मई 1977
2. इंडियन एक्सप्रेस, 23 मार्च 1978
3. द न्यूयार्कर, 17 अक्तूबर 1977
4. बिजनैस स्टैंडर्ड में केवल वर्मा का लेख, 31 दिसम्बर 1977
5. संडे, कलकत्ता।
6. सुब्रह्मण्यम स्वामी से लेखक की बातचीत।
7. इंडिया टुडे, 16-31 मार्च 1978

10

मोरारजी के बाद कौन ?

मैदान में कई लोग होंगे ! चौधरी चरणसिंह, जगजीवनराम, हेमवतीनंदन वहुगुणा, अटलविहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर, जॉर्ज फ़र्नांडीज़, और न जाने कौन-कौन ? हाँ, यह एक वड़ी अच्छी वात है कि इस होड़ में राजनारायण को स्थान नहीं मिल सकेगा—इसका सीधा-सादा कारण यह है कि उनके आदर्श हनुमान और लक्ष्मण हैं।

कई लोगों की आँखें राजसिंहासन पर टिकी हुई हैं, लेकिन किसे कामयावी मिलेगी ? कव, कैसे ?

तांत्रिकों और ज्योतिषियों ने चरणसिंह से वायदा किया है कि कुर्सी उनको ही मिलेगी। लेकिन यही वायदा वे इन्दिरा गांधी से भी कर चुके थे। शायद दोनों तरफ़ वही ज्योतिषी थे। एक ज्योतिषी ने पूरे विश्वास के साथ कहा, "चुपचाप देखते रहिये, इन्दिरा गांधी वापस आयेंगी।" लेकिन यदि उनकी वातों पर विश्वास किया जाये तो इन्दिरा गांधी को आज भी प्रधानमंत्री होना चाहिए था, या अक्तूवर 1977 में चरणसिंह को प्रधानमंत्री की कुर्सी मिल जानी चाहिए थी। भविष्यवाणी ग़लत होने पर उन्होंने कह दिया, "मोरारजी एक मारकेश झेल गये।"

मोरारजी देसाई का जीवन जादुई लगता है। 82 साल की उम्र में भी वह अपने तमाम नौजवान साथियों की तुलना में ज़्यादा मज़वूत और ज़िंदादिल हैं। अपने जीवन के अमृत के कारण या अपनी जीवन-सरिता को निरंतर प्रवाहमान वनाने वाली किसी रहस्यमय शक्ति के कारण, वह अन्य सभी लोगों की तुलना में अधिक समय तक जीवित रहेंगे। इसलिए उनके न रहने के वारे में तो ज़्यादा सोचने की ज़रूरत ही नहीं है।

फिर औरों के लिए प्रधानमंत्री होने का एक ही रास्ता वच रहता है—मोरारजी को निकाल वाहर करने का। लेकिन इसे कौन कर सकता है ? चरणसिंह के समर्थक पहले से ही इस संवंध में सोच-विचार कर रहे हैं। महीनों से वे गिनती कर रहे हैं, आँकड़े वना रहे हैं और हर तरह से जमा-वाक़ी करके देख रहे हैं।

बी० एल० डी० के भूतपूर्व अध्यक्ष के एक साथी ने डींग हाँकी, "यदि चरणसिंह चाहें तो जनता पार्टी को तोड़ सकते हैं। उन्होंने ही इसे बनाया है और वही इसे तोड़ भी सकते हैं।" शायद आज भी संसद-सदस्यों में चरणसिंह के समर्थकों की संख्या सबसे अधिक है। लेकिन क्या वह विद्रोह करने की स्थिति में हैं?

मार्च 1977 में लोक-सभा में जनता पार्टी के अन्दर अलग-अलग दलों के सदस्यों की संख्या इस प्रकार थी : जनसंघ—93, बी० एल० डी०—71, संगठन कांग्रेस—51, सोशलिस्ट—28, चन्द्रशेखर-गुट—6, सी० एफ़० डी०—28, असंबद्ध या क्षेत्रीय दल—25। उस समय भी बी० एल० डी० कोई ठोस दल नहीं था। उसके कुल 71 संसद-सदस्यों में से 26 राजनारायण के अनुयायी थे, लगभग 14 बीजू पटनायक के और बाक़ी पूरी तरह चरणसिंह के प्रति वफ़ादार थे।

तब से आज तक जन संघ को छोड़कर सभी दलों के अंदर परिवर्तन हो चुके हैं। गिनती गिनने का मौक़ा आने पर मालूम होगा कि जनसंघियों की संख्या में नाम को ही तबदीली हुई है। इसमें कोई शक नहीं कि चौधरी चरणसिंह को संगठन कांग्रेस से कुछ संसद-सदस्य मिल गये हैं, जो श्यामनंदन मिश्र और सी० बी० गुप्ता के भूतपूर्व सिपहसालार बनारसीदास के साथ उनके पास आ गये हैं। लेकिन इनकी संख्या आधा दर्जन से अधिक नहीं हो सकती। दूसरी तरफ़ बी० एल० डी० से निकल कर बाहर जाने वालों की संख्या भी काफ़ी है। चरणसिंह अब बीजू पटनायक के आदमियों पर भरोसा नहीं कर सकते और न अब बी० एल० डी० के पुराने सदस्य एच० एम० पटेल उनके साथ हैं। यह लोग अब देसाई के साथ हो गये हैं। और अगर मोरारजी देसाई को नीचे खींचने की कोशिश की गयी तो चरणसिंह देखेंगे कि उनके प्रिय हनुमान भी देसाई की चाकरी में लगे हैं।

राजनारायण ने मोरारजी देसाई के साथ अंदर-ही-अंदर बराबर संबंध बनाये रखा है। प्रधानमंत्री-पद की दौड़ में देसाई का समर्थन करने की वजह तो समझ में आती है। तब वह अपने महान संरक्षक चन्द्रभानु गुप्ता के इशारे पर काम कर थे। लेकिन बात इतनी ही नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि इस समर्थन के पीछे राजनारायण की अपनी 'जाति के प्रति वफ़ादारी' भी है। यह आरोप हर लोहिया-भक्त की तरह राजनारायण कभी स्वीकार नहीं करेंगे। लेकिन कहा जाता है कि राजनारायण सिंह (लोहिया ने उनके नाम से 'सिंह' शब्द हटा दिया था) आज भी भूमिहार बने हुए हैं। उनके मकान पर बहुधा लोग उनका 'भूमिहार शिरोमणि' कहकर अभिवादन करते हैं—और केवल मज़ाक में ही नहीं। उनके निवास—7 रेसकोर्स रोड (क्षमा करेंगे, राजनारायण ने अपने तांत्रिकों की सलाह पर यह नम्बर बदलकर 8 कर दिया है) पर भूमिहारों की भीड़ देखने को मिल सकती है। लेकिन मोरारजी देसाई के समर्थन से राजनारायण के 'भूमिहार' होने का क्या संबंध?

बिहार जाने पर इस सवाल का जवाब मिल सकता है, क्योंकि पिछले लगभग एक दशक से बिहार के भूमिहार मोरारजी देसाई को केन्द्र में "अपना नेता" समझते हैं। इसके पीछे बिहार के भूमिहार नेता महेशप्रसाद सिन्हा के साथ देसाई के घनिष्ठ संबंधों का हाथ है, या तारकेश्वरी सिन्हा (वह भी भूमिहार हैं) और देसाई के लम्बे व्यक्तिगत संबंधों का—कहना कठिन है। स्वयं मोरारजी देसाई गुजरात के अनाविल ब्राह्मण हैं, लेकिन संभव है कि भूमिहार लोगों ने जो हमेशा ब्राह्मणों का दर्जा पाने के इच्छुक रहे हैं, मोरारजी को सजातीय मानकर अपना नेता बनाया हो।

बात चाहे जो हो, मोरारजी के ख़ेमे के साथ राजनारायण के संबंध बराबर बड़े मज़बूत, पर गुप्त रहे हैं। और इसलिए राजनारायण के आदमी सत्ता-संघर्ष में मोरारजी का साथ देंगे। नतीजा यह होगा कि प्रधानमंत्री-पद की होड़ में सबसे आगे रहने वाले नेता चरणसिंह के पास चालीस से अधिक आदमी नहीं बच रहेंगे।

लेकिन चरणसिंह ने अपनी आशाएँ शक्तिशाली जन संघ गुट पर केन्द्रित कर रखी हैं। उन्हें आशा है कि जन संघ के साथ मिलकर वह एक ऐसा सुदृढ़ आकर्षण-केन्द्र बना सकेंगे जो द्विविधा में फँसे या ढुलमुल-यक़ीन जनता-सांसदों को उनकी तरफ़ खींच लेगा। लेकिन क्या जन संघ चौधरी चरणसिंह का साथ देगा? आम तौर पर महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर जन संघ ने चरणसिंह का साथ दिया है। मिसाल के तौर पर, राज्यों में चुनाव कराने का सवाल लिया जा सकता है। बी० एल० डी० और जन संघ के सम्मिलन से ही जून 1977 में विधान-सभा-चुनावों में सबसे अधिक सीटें इन दोनों दलों को मिलीं और इन्हीं दोनों दलों को सत्ता का सबसे बड़ा हिस्सा भी प्राप्त हुआ। जन संघ के नेता आपसे बड़े ज़ोरदार शब्दों में कहेंगे, "यह तो हमारी शक्ति के अनुपात से हुआ। आप कोई भी ऐसा राज्य दिखा दीजिये, जहाँ हमें सीटें ज़्यादा मिली हों या हमारे मंत्री ज़्यादा हों और हमारी शक्ति कम हो। दरअसल हर जगह हमारी शक्ति की तुलना में हमें कम ही फ़ायदा हुआ है। उत्तर प्रदेश और बिहार में बी० एल० डी० के आदमी मुख्यमंत्री बने, क्योंकि इन राज्यों में हमारी ताक़त ज़्यादा थी। फिर इसमें क्या अनुचित है?"

जनता पार्टी के सभी चालाक रणनीतिज्ञ जन संघ के नेता हैं। शुरू से ही उनको सबसे ज़्यादा फ़ायदा मिला है। उनके उद्देश्य बड़े साफ़ और पहले से ही निर्धारित हैं। जब उन्होंने यह फ़ैसला कर लिया कि विलय करना है तो अपने इस फ़ैसले पर वे दृढ़ और स्पष्ट रहे। उन्होंने तय कर लिया है कि जल्दबाज़ी नहीं करनी है और कभी ऐसा संकट नहीं पैदा करना है जिससे जनता पार्टी का अस्तित्व ख़तरे में पड़ जाये। उन्हें पता है कि जनता पार्टी बनी रही तो सबसे ज़्यादा फ़ायदा उनको ही मिलना है। शुरू में उन्होंने प्रधानमंत्री-पद के लिए जगजीवनराम को समर्थन देने का निश्चय किया, लेकिन जैसे ही उन्हें पता चला कि इससे सारा मामला बेसुरा हो जायेगा तो बहुत धीरे से वे देसाई के पक्ष में हो गये। जब चरणसिंह ने उत्तर भारत के चुनावों का दायित्व अपने हाथों में ले लिया तो वे चरणसिंह के साथ चले गये, ताकि लाभ में हिस्सा बाँट सकें। इसके अलावा उन्होंने यह भी देखा कि बी० एल० डी० का मतलब है चरणसिंह। चरणसिंह के मर जाने के साथ ही बी० एल० डी० भी मर जायेगी। इसलिए क्यों न बी०एल० डी० का ज़्यादा-से-ज़्यादा इस्तेमाल किया जाये और ग्रामीण इलाक़ों में भी अपने पैर जमा लिये जायें, जहाँ जन संघ की स्थिति अभी कमज़ोर है? इस रणनीति से उन्हें फ़ायदा हुआ है और आज जन संघ और आर० एस० एस० के कार्यकर्ता उन इलाक़ों में भी देखे जा सकते हैं जहाँ पहले नहीं थे।

अन्य गुटों के विपरीत जन संघ वालों ने यह नहीं किया कि जिसके साथ हो गये उसी में रम गये। चरणसिंह की तरफ़दारी करते हुए उन्होंने मोरारजी या जगजीवनराम के लिए अपने दरवाज़े बंद नहीं किये। दरअसल मोरारजी के समर्थन में सबसे सशक्त वक्तव्य तो अधिकतर अटलबिहारी वाजपेयी के ही हैं, जिन्होंने मोरारजी देसाई को अपना 'निर्विवाद नेता' कहा है।

जन संघ को कोई जल्दी नहीं है। वह जनता पार्टी का अधिक-से-अधिक

इस्तेमाल करेगा और अपना नेतृत्व तभी जतायेगा जब उसे विश्वास हो जाये कि वह इतना शक्तिशाली हो गया है कि दूसरों से अपना नेतृत्व मनवा सके। जब तक ऐसा नहीं होता, वह अन्य लोगों की सद्भावना और शुभाकांक्षा प्राप्त करने में लगा रहेगा। जन संघ-गुट इस बात की जी-जान से कोशिश कर रहा है कि उसके और आर० एस० एस० के नाम से जो कालिमा संबद्ध है, उसे धो दे। जनता-सरकार में जन संघ के ही मंत्री ऐसे हैं, जिन्होंने अपने क्षेत्रों में उल्लेखनीय सफलताएँ पायी हैं। यही ऐसा गुट है जिसने कभी कोई ग़ैर-ज़िम्मेदाराना वक्तव्य नहीं दिया। इसके एक नेता का कहना है कि हम जनता पार्टी के सुचारु कार्य-संचालन में दिलचस्पी रखते हैं।

और इसीलिए यदि चरणसिंह लड़ाई मोल लेना चाहेंगे तो वह जन संघ को एकदम उदासीन पायेंगे। इस गुट को मोरारजी के पक्ष में जाने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होगी और चौधरी चरणसिंह को अकेला छोड़ने में ज़रा भी संकोच नहीं होगा।

दरअसल यही बात है, जिसके कारण चरणसिंह की सेना अभी तक कोई कार्रवाई नहीं कर सकी। चरणसिंह भारत का प्रधानमंत्री होने के लिए चाहे जितनी जल्दबाज़ी करें, वह मोरारजी देसाई को सत्ता से हटाने की स्थिति में नहीं हैं और जब तक उन्हें यह विश्वास नहीं हो जाता कि वह मोरारजी को हटा सकते हैं वह बना-बनाया खेल खराब करना नहीं चाहेंगे। कुर्सी छोड़ गुमनामी के अँधेरे में जाने के बजाय, मोरारजी चाहें तो, चरणसिंह वन-विभाग का मंत्री होना भी क़बूल कर लेंगे।

केवल देसाई के अचानक निधन पर ही उत्तराधिकार का सवाल पैदा हो सकता है। और उस समय भी असली सवाल यह नहीं होगा कि "मोरारजी के बाद कौन ?" बल्कि यह होगा कि "मोरारजी के उत्तराधिकारी के बाद कौन ?" क्योंकि यदि चरणसिंह या जगजीवनराम में से कोई व्यक्ति प्रधानमंत्री की कुर्सी पाने का जुगाड़ कर भी ले तो उम्र और शारीरिक हालत अधिक दिन तक साथ नहीं देगी। 76-वर्षीय चरणसिंह प्राय. अपने दोस्तों से कहते रहे हैं कि काश, उनकी उम्र 10 साल कम होती। जगजीवनराम अपने इस प्रतिद्वंद्वी से 6 वर्ष छोटे हैं, पर एकाधिक बार वह मौत से बाल-बाल बच चुके हैं। यदि दोनों में से कोई प्रधानमंत्री बन भी गया तो ज़्यादा दिन नहीं चल पायेगा।

अंततः युवा-टोली में से ही चुनाव करना होगा। और उम्मीद यह की जाती है कि लोक-सभा के अगले चुनावों के ख़त्म होते-होते जन संघ भी इस योग्य हो जायेगा कि मैदान में आ जाये। जनसंघ बाजपेयी को ही प्रधानमंत्री बनाना चाहेगा। आडवाणी ज़्यादा अच्छे हैं, लेकिन दुर्भाग्यवश इस देश में सीधे-सादे और व्यावहारिक लोग घाटे में ही रहते हैं—फ़ायदा केवल उनको होता है जिनके अन्दर तड़क-भड़क और दिखावा हो और साथ ही कोई 'करिश्मा' दिखाने वाला व्यक्तित्व हो। इसलिए सबसे ज़्यादा संभावना यही है कि बाजपेयी को ही उम्मीदवार बनाया जाये। यह माना जाता है कि उनके अंदर नेहरू के कुछ गुण हैं और देश के विभिन्न राजनीतिक मत वाले लोग व्यापक स्तर पर उन्हें स्वीकार कर लेंगे। उनका व्यक्तित्व आकर्षक है, तड़क-भड़क है और वह बहुत अच्छे वक्ता हैं। यह कौन कह सकता है कि देश को दलदल से बाहर निकालने की क्षमता उनके अन्दर है या नहीं ?

कुछ लोगों ने यह ज़ाहिर करने की बहुत कोशिश की है कि आर० एस०

एस० के दिग्गजों के साथ वाजपेयी की तनातनी चलती है, लेकिन सच्चाई यह है न तो वाजपेयी आर० एस० एस० का पगहा तुड़ाने को तैयार हैं और न आर० एस० एस० ही वाजपेयी को छोड़ने को तैयार है। वाजपेयी की उदार तस्वीर से जन संघ और आर० एस० एस० दोनों को फ़ायदा है। आर० एस० एस० के कट्टरपंथी तत्व वाजपेयी की जितनी ही निंदा करते हैं उतना ही उन्हें और उनके ज़रिये जन संघ को फ़ायदा होता है। मुमकिन है कि किसी बड़े फ़ायदे के लिए आर० एस० एस० की यह एक चाल हो।

अटलबिहारी वाजपेयी अपने को एक ऐसे उदार राष्ट्रवादी नेता के रूप में स्थापित करने में लगे हैं, जिसकी अपील पर जन संघ और आर० एस० एस० के दायरे से बाहर के लोग भी कान दे सकें। संयुक्त राष्ट्र महासभा में वह हिंदी में भाषण करते हैं, क्योंकि उसका प्रभाव नाटकीय होता है और तत्काल ही वह भारत की जनता, ख़ास तौर से हिंदी-भाषी जनता, के दिमाग़ में अपनी एक राष्ट्रवादी तस्वीर स्थापित कर देते हैं। लेकिन लोहिया के अदूरदर्शी चेलों की तरह वह कट्टरपंथी हिंदी वाले के रूप में भी सामने नहीं आना चाहते। भाषा के बारे में वाजपेयी ने अपने सारे पूर्वाग्रहों को ताक पर रख दिया है और ज़रूरत पड़ने पर उन्हें अँग्रेज़ी में बोलने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं होती है।

वाजपेयी ने अमेरिका से भारत आने वालों की अपेक्षा मास्को व कीव में सोवियत नेताओं के साथ ज़्यादा दोस्ताना व्यवहार किया और खुलकर बातचीत की। सोवियत संघ में उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा कि "भारत-सोवियत मैत्री उतनी ही मज़बूत है जितना बोकारो का इस्पात।" उनके इस वक्तव्य को **प्रावदा** और **इज़वेस्तिया** अख़बारों ने बार-बार अपने लेखों में उद्धृत किया। वाजपेयी ने इस बात का हमेशा ध्यान रखा कि अमेरिका के साथ भारत की मैत्री के बारे में वह इस तरह का कोई बयान न दें।

सबसे बड़ी बात यह है कि जन संघ के नेताओं ने अब अच्छी तरह महसूस कर लिया है कि जब तक समाजवाद का मुलम्मा नहीं होगा तब तक भारत में कोई राजनीतिक दल या गुट ज़िंदा नहीं रह सकता और इसीलिए वे अब ग़रीबों और समाज के दलित वर्गों का उत्थान करने की आवश्यकता के बारे में लगातार बातें कर रहे हैं। राजघाट पर जिन लोगों ने शपथ ली उनमें जन संघ का ही गुट ऐसा था, जिसके अन्दर काफ़ी उत्साह था और पिछले वर्ष गांधी पर लिखे गये लेखों में सबसे ज़्यादा ईमानदारी अटलबिहारी वाजपेयी के लेखों में ही नज़र आती है—वह अब गांधी को पहले की अपेक्षा ज़्यादा अच्छे ढंग से समझ रहे हैं।

चन्द्रशेखर के दोस्तों को इस बात का पूरा यक़ीन है कि चन्द्रशेखर के अन्दर प्रधानमंत्री बनने के सारे गुण हैं। इसमें कोई शक नहीं कि उन्होंने काफ़ी तेज़ी से तरक्क़ी की है। अभी कुछ वर्ष पहले तक वह महज "कॉफ़ी हाउस के उग्र सुधारवादी नेता" थे, लेकिन आज सत्तारूढ़ जनता पार्टी के पाँच दिग्गजों में उनकी गिनती की जाती है। हर लिहाज़ से यह लंबी छलाँग है। लेकिन जनता पार्टी के अध्यक्ष के रूप में उनके कार्य उनके भविष्य के लिए रोड़ा बन गये हैं। उनकी तस्वीर हैमलेट जैसी है, जो कभी यह तय नहीं कर सका कि वह "क़िस्मत की ठोकरों को झेलता रहे या संकट से उबरने के लिए संघर्ष करे।" चन्द्रशेखर का एक 'प्रिय शौक' दोस्तों से गप्प करना रहा है और ऐसा लगता है कि आज भी उनकी यह आदत बनी हुई है। साल बीत गया, लेकिन पार्टी के संगठन के लिए बुनियादी काम नहीं हो सके। जनता पार्टी के एक भूतपूर्व महासचिव ने ठीक ही

कहा है कि "सच्चाई यह है कि पार्टी को भावनात्मक रूप से एक बनाने में चन्द्रशेखर असफल रहे हैं।"

उनके दोस्तों का कहना है कि चन्द्रशेखर को इस बात का फ़ायदा है कि लोग उन्हें उग्र सुधारवादी समझते हैं और यह जानते हैं कि उनको भ्रष्ट नहीं किया जा सकता। लेकिन यह तो मूल्यों का प्रश्न है और मूल्य नापने के लिए हर व्यक्ति अपनी तराज़ू का प्रयोग करता है। यह भूल जाना ज़्यादा अच्छा होगा कि आज की राजनीति में नैतिकता का कोई स्थान है। सवाल महज़ एक है कि इस धक्का-मुक्की में किसके अन्दर सबसे आगे निकल जाने का दम है, और इस लिहाज़ से ऐसा लगता है कि चन्द्रशेखर को ज़्यादा उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। उनके न तो समर्थक बहुत हैं, न उनके पास कोई संदेश है जो वह देश को दे सकें।

जॉर्ज फ़र्नांडीज़ के अन्दर ज्वालामुखी जैसी तेज़ी है। वह एक ऐसे आदमी हैं जो हमेशा वहाँ रहना पसन्द करते हैं जहाँ कुछ हो रहा हो और उनके सामने लंबी उम्र पड़ी है—उनकी उम्र महज़ 49 साल है। उनके अन्दर कठिन मेहनत करने की क्षमता है। राजनीतिक विवादों में पड़ने की बजाय उन्होंने अपने काम में मुस्तैद मंत्री जैसी अपनी तस्वीर बनाने को प्राथमिकता दी। लेकिन वह साधनों और उद्देश्यों के बारे में कभी कुछ कहते हैं और कभी कुछ, जिसकी वजह से उनके वक्तव्यों में अंतर्विरोध होते हैं। इसका कारण वह यह बताते हैं कि जनता पार्टी की मिली-जुली सरकार के अन्दर कई तरह के दबाव काम करते हैं।

फ़र्नांडीज़ के अन्दर एक नेता वाली चमक और तड़क-भड़क है। उनके भाषण में जादू होता है। सफल होने के लिए ये सारे गुण ज़रूरी हैं। लेकिन देखना यह है कि अंततः उनके कितने समर्थक हैं।

दरअसल उत्तराधिकार के सवाल के कई ऐसे पहलू हैं, जिनके बारे में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। कौन जानता है कि अगले चुनाव तक देश का राजनीतिक नक़्शा क्या होगा? कई राजनीतिक प्रेक्षकों का अनुमान यह भी है कि अगले चुनाव में सभी दलों की ऐसी मिली-जुली खिचड़ी बनेगी कि देश को अराजकता के विकल्प के रूप में एक राष्ट्रीय सरकार का गठन करना पड़ेगा और उस स्थिति में किसी अचर्चित व्यक्ति को प्रधानमंत्री बनाने पर भी सब सहमत हो सकते हैं। कुछ लोगों का ख़याल है कि हो सकता है ज्योति बसु प्रधानमंत्री बनें, लेकिन इसकी संभावना बहुत ही कम है—यद्यपि राजनीति में 'कभी नहीं' शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए!

हाँ, एक बात की बेहिचक शर्त लगायी जा सकती है—अगले चार वर्षों के बाद चाहे जो भी प्रधानमंत्री बने, उसे विपक्ष में उस देवी का सामना करना पड़ेगा जो रायबरेली से चुनी जाकर विरोधी पक्ष का नेतृत्व करेगी!

परिशिष्ट

जीवन-परिचय

मोरारजी देसाई, बी० ए०; वल्द—रणछोड़जी देसाई; जन्म—भदेली, बुलसार ज़िला, 29 फ़रवरी, 1896; शिक्षा—विल्सन कॉलेज, बंबई; विवाह—गजराबेन से 1911 में; एक पुत्र और एक पुत्री; 1918 में बंबई सरकार की प्रॉविन्शियल सिविल सर्विस में प्रवेश और 1930 में इस्तीफ़ा; सिविल नाफ़रमानी आंदोलन में भाग लिया, 1930-34 और 1940-41 में जेल-यात्रा, 1942-45 में गिरफ़्तारी, इमरजसी के दौरान 19 महीने तक जेल में, 1975-77;. 1931-37 तक गुजरात प्रदेश कांग्रस कमेटी के मंत्री और फिर 1939-46 में इसी पद पर; 1950-58 तक अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के कोषाध्यक्ष; चांसलर, गुजरात विद्यापीठ; सदस्य, बंबई विधान-सभा, 1937-39 और 1946-56; राजस्व, सहकारिता कृषि और वन-मंत्री बंबई, 1937-39; गृह और राजस्व-मंत्री बंबई, 1946-52; बंबई के मुख्यमंत्री 1952-56; सदस्य लोक-सभा 1957 से; वाणिज्य और उद्योग-मंत्री, भारत सरकार 1956-58; वित्त-मंत्री 1958-63; कामराज योजना के अंतर्गत सरकार से त्यागपत्र 1963; अध्यक्ष, प्रशासनिक सुधार आयोग, भारत सरकार 1966-67; उप-प्रधानमंत्री और वित्त-मंत्री 1967-69; राष्ट्रमंडल के वित्तमंत्रियों के सम्मेलनों में इन स्थानों पर भाग लिया—मांट्रियल, 1958; लंदन, 1959, 1960, 1962 और 1968; अकरा, 1961 और त्रिनिडाड, 1967; विश्व बैंक की बैठकों में भी भाग लिया—वाशिंगटन, 1958, 1959, 1960, 1962 और 1968; वियना, 1961 और ब्राज़ील, 1967।

प्रिय शौक—शास्त्रीय और भक्ति संगीत तथा भारतीय शास्त्रीय नृत्य।

विशेष रुचि—शिक्षा, कृषि, बागवानी, डेरी उद्योग, पशुपालन, सहकारिता, कताई तथा सभी गांधीवादी कार्य।

प्रकाशन—डिसकोर्सेज़ ऑन द गीता, द स्टोरी ऑफ़ माइ लाइफ़ और प्राकृतिक चिकित्सा पर एक पुस्तक।

खेलकूद—ब्रिज, क्रिकेट, टेनिस, हाकी तथा अन्य अनेक भारतीय खेल।

स्थायी पता—"ओसना", मेरिन ड्राइव, बंबई।

चरणसिंह, बी० एस-सी०; एम० ए०; एल-एल० बी०; वल्द—चौधरी मीर-सिंह; जन्म—नूरपुर गाँव, ज़िला गाज़ियाबाद, 23 दिसम्बर, 1902; शिक्षा—गवर्नमेंट हाई स्कूल मेरठ और आगरा कॉलेज, आगरा; विवाह—गायत्री देवी से 5 जून, 1925 को, एक पुत्र और पाँच पुत्रियाँ; कांग्रेस से सम्बद्ध 1929-67; संस्थापक—भारतीय क्रांति दल 1967, भारतीय लोक दल 1974 और जनता पार्टी 1977; उपाध्यक्ष, ज़िला परिषद, मेरठ 1930-35; सदस्य उत्तर प्रदेश विधान-सभा 1937-47 और 1946-77, संसदीय सचिव उत्तर प्रदेश 1946-51; उत्तर प्रदेश में मंत्री 1951-67 (बीच में 17 महीनों का अंतराल), मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश, अप्रैल 1967 से फ़रवरी 1968 तक; उत्तर प्रदेश विधान-सभा में विरोधी दल के नेता 1971-77; मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश, फ़रवरी 1970 से अक्तूबर 1970।

प्रिय शौक—पढ़ना।

विशेष रुचि—आर्थिक समस्याएँ, ख़ासतौर से कृषि से संबंधित समस्याएँ।

प्रकाशन—एबालीशन ऑफ़ ज़मींदारी, कोआपरेटिव फ़ार्मिंग एक्सरेड, ऐग्रेरियन रिवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश, टूअर्ड्स गांधी और इंडियाज़ इकोनॉमिक पॉलिसी—ए गांधियन ब्लूप्रिंट।

स्थायी पता—5 रेसकोर्स रोड, नयी दिल्ली।

जगजीवनराम, बी० एस-सी०; वल्द—शोभी राम; जन्म—चँदवा, भोजपुर ज़िला, 5 अप्रैल 1908; शिक्षा—बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय और कलकत्ता विश्वविद्यालय; विवाह—इन्द्राणी देवी से 2 जून, 1935 को, एक पुत्र और एक पुत्री; हैमंड आयोग के सामने उपस्थित हुए, 1936; बिहार में खेतिहर मज़दूरों का आंदोलन शुरू किया और बिहार प्रांतीय खेत मज़दूर सभा का गठन किया, 1937; सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी 1940 से; 1940 और 1942 में जेल-यात्रा और स्वास्थ्य के आधार पर 1943 में रिहाई; उपाध्यक्ष—अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की बिहार शाखा, 1940-46; सचिव—बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमेटी 1940-46; सदस्य—(1) कार्य समिति हिन्दुस्तान मज़दूर सेवक संघ, 1947 से (2) अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति 1948 से (3) कांग्रेस आर्थिक नियोजन उप-समिति (4) केन्द्रीय संसदीय बोर्ड, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, 1950 से (5) केन्द्रीय चुनाव समिति 1951-56 और 1961; अध्यक्ष—अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, 1969-71; कांग्रेस से त्यागपत्र और कांग्रेस फ़ॉर डेमोक्रेसी की सदस्यता फ़रवरी, 1977; सदस्य (1) बिहार विधान परिषद, 1936 (नामज़द) (2) बिहार विधान सभा 1937-46, संसदीय सचिव, बिहार सरकार 1937-39; सदस्य—(1) केन्द्रीय विधान-सभा और संविधान-सभा 1946-50 (2) अस्थायी संसद 1950-52 (3) 1952 से लगातार लोक-सभा के सदस्य; भारत सरकार के श्रम-मंत्री 1946-52, संचार-मंत्री 1952-56, परिवहन और रेल-मंत्री 1956-57, रेल-मंत्री 1957-62 और परिवहन और संचार-मंत्री 1962-63। कामराज-योजना के तहत त्यागपत्र दिया और फिर जनवरी 1966 में श्रम रोज़गार और पुनर्वास-मंत्री बने। खाद्य और कृषि सामुदायिक विकास, और सहकारिता-मंत्री 1967-70, रक्षा-मंत्री 1970-74, कृषि और सिंचाई-मंत्री 1974-77, रक्षा-मंत्री मार्च 1977 से।

प्रिय शौक—बागबानी, पढ़ना, तैरना, नाच, नाटक, संगीत और कला।
विशेष रुचि—अर्थशास्त्र और गणित।
प्रकाशन—ए कलेक्शन ऑफ़ स्पीचिज़ ऑन लेबर प्रॉबलम्स।
खेलकूद—टेनिस।
विदेश-यात्रा—यूरोप, अमेरिका और दक्षिण-पूर्व एशिया।
स्थायी पता—ग्राम और डाकखाना—चँदवा, ज़िला भोजपुर, बिहार।

हेमवतीनंदन बहुगुणा, बी० ए०; वल्द—स्वर्गीय रेवतीनंदन बहुगुणा; जन्म—बुगानी गाँव, गढ़वाल ज़िला, 25 अप्रैल 1919; शिक्षा—डी० ए० वी० कॉलेज देहरादून, गवर्नमेंट कॉलेज इलाहाबाद, इलाहाबाद विश्वविद्यालय; विवाह—कमला बहुगुणा से 1946 में, दो पुत्र और एक पुत्री; 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन में भाग लेने से पढ़ाई में व्यवधान, फ़रार घोषित हुए, गिरफ़्तार किये गये और दिल्ली तथा उत्तर प्रदेश की जेलों में नज़रबंद रखे गये—1943-45; छात्र-आंदोलन में भाग लिया; सदस्य—उत्तर प्रदेश कांग्रेस समिति 1952 से और अखिल भारतीय कांग्रेस समिति 1957 से; महासचिव—उत्तर प्रदेश राज्य कांग्रेस समिति, 1963-69, अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की कार्य-समिति के सदस्य के रूप में नामज़द किये गये और बाद में चुने गये, 1969-71; महासचिव—अखिल भारतीय कांग्रेस समिति; सदस्य—(1) कार्य समिति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय छात्र संघ 1940-41 (2) इंटक की कार्य-समिति, (3) सचिव, उत्तर प्रदेश स्टूडेंट्स फेडरेशन; सदस्य, उत्तर प्रदेश विधान-सभा, 1952-69 और 19[illegible]4-77; संसदीय सचिव उत्तर प्रदेश 1957, उपमंत्री उत्तर प्रदेश 1958 लेकिन 1960 में इस्तीफ़ा, श्रम उप-मंत्री उत्तर प्रदेश 1962, लेकिन फिर 1963 में इस्तीफ़ा दे दिया; वित्त और परिवहन मंत्री उत्तर प्रदेश 1967; मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश 1973, मुख्यमंत्री-पद से इस्तीफ़ा 1975; पाँचवीं लोक-सभा के सदस्य 1971-74, केन्द्रीय संचार-मंत्री 1971, पैट्रोलियम और रसायन तथा उर्वरक-मंत्री, मार्च 1977 से।

सामाजिक गतिविधियाँ—इंटक के अधीन इलाहाबाद में कई मज़दूर यूनियनों को संगठित किया। कई स्कूलों और कॉलेजों की स्थापना की।
प्रिय शौक—बागवानी और पढ़ना।
विशेष रुचि—युवकों का कल्याण और हरिजनों का उत्थान।
प्रकाशन—अनेक लेखों के रचयिता; इंडियेनाइज़ेशन ह्रूम नामक पैम्फ़लेट, जिसे ए० आई० सी० सी० ने 1970 में प्रकाशित किया।
विदेश-यात्रा—ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली और रोमानिया।
स्थायी पता—'2 बी, हेस्टिंग्स रोड, इलाहाबाद।

राजनारायण, बी० ए०, एल-एल० बी०; वल्द—स्वर्गीय अनंतप्रसाद सिंह; जन्म—मोतीकोट गाँव, वाराणसी ज़िला, 15 मार्च, 1917; विवाहित; तीन पुत्र और एक पुत्री। पहले संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी और भारतीय लोक दल से सम्बद्ध, छात्र और समाजवादी आंदोलनों के सिलसिले में कुल 15 वर्षों के अंदर 58 बार जेल गये; अध्यक्ष सोशलिस्ट पार्टी, 1961; सदस्य उत्तर प्रदेश विधान-सभा 1952 और 1957; सदस्य राज्य-सभा 1966-72, और 1974-76; स्वास्थ्य और

परिवार कल्याण-मंत्री मार्च 1977 से।

विशेष रुचि—राजनीतिक और सामाजिक कार्य, योग, भारतीय संस्कृति और दर्शन।

खेलकूद—कुश्ती।

विदेश-यात्रा—कुवत, सोवियत संघ, ईरान, फ्रांस, अफ़ग़ानिस्तान और ब्रिटेन।

स्थायी पता—मोतीकोट गाँव, डाकखाना गगापुर, ज़िला वाराणसी।

चन्द्रशेखर, एम० ए०; वल्द—स्वर्गीय सदानंदसिंह; जन्म—इब्राहीम पट्टी गाँव, ज़िला बलिया, 1 जुलाई, 1927; शिक्षा—डी० ए० वी० कॉलेज, मऊ, आज़मगढ़, जीवनराम हाई स्कूल, मऊ, आज़मगढ़; सतीशचन्द्र कॉलेज बलिया और इलाहाबाद विश्वविद्यालय; विवाहित; एक पुत्र; पहले सोशलिस्ट पार्टी और कांग्रेस से सम्बद्ध थे; अध्यक्ष ज़िला छात्र कांग्रेस बलिया, 1947; सचिव—(1) समाजवादी युवक सभा 1950 (2) शहर सोशलिस्ट पार्टी, इलाहाबाद 1951-52 (3) प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, बलिया 1952-56, (4) राज्य प्रसोपा, उत्तर प्रदेश; संयुक्त सचिव—राज्य प्रसोपा 1955-57; सदस्य, राष्ट्रीय कार्यकारिणी प्रसोपा 1959-62; सदस्य, अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति 1969-75, कांग्रेस की केन्द्रीय चुनाव समिति के लिए निर्वाचित 1971; मीसा के अंतर्गत गिरफ़्तारी, जून 1975, जेल से रिहाई जनवरी 1977; अध्यक्ष—जनता पार्टी मई 1977 से; सदस्य राज्य-सभा 1962-77।

प्रिय शौक—बागबानी, यात्रा और राजनीतिक तथा सामाजिक समस्याओं पर दोस्तों के साथ गपबाज़ी।

विशेष रुचि—प्राथमिक चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा।

स्थायी पता—गाँव इब्राहीम पट्टी, बलिया ज़िला, उत्तर प्रदेश।

अटलबिहारी वाजपेयी, एम० ए०; वल्द—पंडित कृष्णबिहारी वाजपेयी। जन्म—ग्वालियर, 25 दिसम्बर, 1926। शिक्षा—विक्टोरिया कॉलेज ग्वालियर, डी० ए० वी० कॉलेज कानपुर; अविवाहित; सामाजिक कार्यकर्ता और पत्रकार; भारतीय जन संघ के संस्थापक सदस्य और संगठन-सचिव; अध्यक्ष—जन संघ, 1969 और 1971; सचिव—अखिल भारतीय जन संघ 1956-66; सदस्य राष्ट्रीय समन्वय परिषद; अध्यक्ष, दीनदयाल उपाध्याय शोध संस्थान दिल्ली; अध्यक्ष, आल इंडिया स्टेशन मास्टर्स एण्ड असिस्टेंट स्टेशन मास्टर्स ऐसोसिएशन 1965-70; सदस्य—दूसरी लोक-सभा 1957-62, चौथी लोक-सभा 1967-70, पाँचवीं लोक-सभा 1971-77, राज्य-सभा 1962-67; विदेश-मंत्री मार्च 1977 से।

सामाजिक गतिविधियाँ—हिंदू संगठन, छुआछूत और जातिवाद का उन्मूलन तथा महिलाओं का उद्धार।

प्रिय शौक—यात्रा और खाना बनाना।

विशेष रुचि—अंतर्राष्ट्रीय समस्याएँ।

प्रकाशन—लोक-सभा में अटलजी, मृत्यु या हत्या, अमर बलिदान और इमरजेंसी के दौरान जेल में लिखी गयी कविताओं का संकलन।

स्थायी पता—7, सफ़दरजंग रोड, नयी दिल्ली।

लालकृष्ण आडवाणी, क़ानून में स्नातक; वल्द—किशिनचन्द डी० आडवाणी; जन्म—कराची, 8 नवम्बर, 1927; शिक्षा—सेंट पैट्रिक हाई स्कूल कराची, डी० जी० नेशनल कॉलेज, हैदराबाद सिंध और गवर्नमेंट लॉ कॉलेज बंबई; विवाह—कमला पी० जगतियानी से फ़रवरी, 1965 में, एक पुत्र और एक पुत्री; पत्रकार; 1942 से राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सदस्य; सचिव, आर० एस० एस० की कराची शाखा 1947; 1947 से 1951 के बीच संघ के कामों को अलवर, भरतपुर, कोटा, बूंदी और झालवाड़ ज़िलों में संगठित किया। 1951 में जन संघ में शामिल; संयुक्त सचिव राजस्थान राज्य जन संघ, 1952-57; सचिव–दिल्ली राज्य जन संघ, 1958-63; उपाध्यक्ष—दिल्ली राज्य जन संघ 1965-67; और अध्यक्ष—जन संघ 1970-72; 1966 से जन संघ की केन्द्रीय कार्यकारिणी के सदस्य; फ़रवरी 1973 में पार्टी के अखिल भारतीय अध्यक्ष चुने गये; अंतरिम महानगर परिषद में, दिल्ली में जन संघ दल के नेता, 1966-67; अध्यक्ष, महानगर परिषद दिल्ली 1967-70; 1970 में राज्य-सभा के सदस्य निर्वाचित; सूचना और प्रसारण-मंत्री, मार्च 1977 से।

विदेश-यात्रा—चैकोस्लोवाकिया, ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ, यूगोस्लाविया, आस्ट्रिया, स्विटज़रलैंड और इटली।

प्रिय शौक—पुस्तकें, थियेटर, सिनेमा, खेलकूद और संगीत।

विशेष रुचि—चुनाव-प्रणाली में सुधार।

लोक-सभा एण्ड राज्य-सभा हूज़ हू, 1977-78 से उद्धृत।

अनुक्रमणिका

राधाकृष्ण की कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण पुस्तकें